KALIDASA'S KUMARASAMBHAVAM

कुमारसम्भवम्

CANTO V

DEDICATED

TO

The Memory

OF MY REVERED FATHER

THE Late KR. MADHAV SINGHJI

FROM WHOM

I received inspiration to study Sanskrit.

MAHENDRA PRATAP SHASTRI

ALLAHABAD

RAM NARAIN LAL

PUBLISHER AND BOOKSELLER

1957

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

PREFACE

This Edition of the Fifth Canto of the Kumarasambhavam is meant to meet the requirements of the students of the Intermediate classes. In it they will find the text as well as annotations on it and thus they will be saved of the necessity of going for a bigger edition containing the whole of the poem.

The notes contain almost all that is needed for a student and, if read with proper care, they will prove of great advantage to him. Those who are regular students in some college should not neglect the lectures of their teachers, but should regard these notes as a supplement to them. Only then they can make the right use of these notes. As to the private candidates, they can safely depend on these notes for their succeess in the examination.

To acquaint the students with Kalidasa and his poem, an introduction has been added to the notes, which contains general as well as critical remarks.

The book has been brought out in a hurry. so it is quite possible that some mistakes of printing or otherwise may have escaped notice. For the pointing out of them we shall be thankful to the reader and corrections will be made in the next edition.

The author feels grateful to Kale's edition of the Kumarasambhavam, on which is based the text and which he has consulted while writing these notes.

Dehra Dun
August I, 1935

Mahendra Pratap Shastri

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भूमिका

१—कालिदास

यह खेद की बात है कि हमें महान् भारतीय कवि कालिदास के व्यक्तिगत जीवन के विषय में विश्वसनीय सामग्री उपलब्ध नहीं है। अन्य संस्कृत कवियों की भाँति उन्होंने अपने जीवन पर कुछ प्रकाश नहीं डाला है। इनके उदाहरण का अनुसरण करते हुए बाद के कवियों ने इनके व्यक्तिगत जीवन का उल्लेख नहीं किया है। अतः इनके विषय में जानने के जो साधन उपलब्ध हैं उनमें प्रथम वे परम्पराएँ हैं जो बाद के साहित्य में प्रचलित हैं और दूसरे परोक्ष तथा अपरोक्ष उल्लेख जो उनकी पुस्तकों में आते हैं। उनके नाम के सम्बन्ध में परम्परागत अनेक मनोरंजक घटनाएँ प्रचलित हैं। उदाहरण के लिए एक स्थान पर उनको नवयुवावस्था में पूर्ण रूप से मूर्ख कहा जाता है और बाद में देवी काली की कृपा से उन्हें ज्ञान-प्राप्ति हुई। तब से वे कालिदास के नाम से विख्यात हैं। दूसरी कहानी यह है कि अपनी स्त्री द्वारा उन्हें कवित्वशक्ति प्राप्त हुई। तीसरी यह है कि वे जन्म से गड़ेरिया थे और धारा नगरी के राजा भोज (१२०० ई०) के समकालीन थे। एक कहानी इस बात पर जोर देती है कि लंका (वर्तमान सीलोन) में उनकी मृत्यु एक वेश्या के हाथ से हुई। लेकिन यह संशयास्पद है कि ये किंवदंतियाँ अथवा इनसे सम्बन्धित अन्य किंवदंतियाँ कालिदास के अध्ययन में कुछ वास्तविक उपयोगिता रखती हैं। ऐसा सम्भव है कि ये किंवदन्तियाँ अन्य कालिदास की हों और "रघुवंश" तथा "कुमारसम्भव" के रचयिता कालिदास से, जो उस समय सबसे प्रसिद्ध थे, सम्बन्धित कर दी गई हों। कालिदास नाम के अनेक संस्कृत कवि हुए हैं, यह बात 'राजशेखर' की, जो कम से कम तीन कालिदासों को जानते थे, निम्नलिखित पंक्तियों से सिद्ध होती है—

जीवनी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्।
श्रृंगारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु।"

इन आख्यायिकाओं और किंवदन्तियों में केवल एक बात निश्चित है। वह यह कि वे राजा विक्रमादित्य के समकालीन थे। किन्तु इन विक्रमादित्य का पूर्ण परिचय प्राप्त करना किसी प्रकार सरल नहीं है। एक नहीं, अनेक राजाओं का यह नाम था और बहुतों की तो यह उपाधि थी। एक तो वह विक्रमादित्य था जिसने ५७ ई० पूर्व विक्रम-संवत् चलाया किन्तु गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त द्वितीय (४१३ ई०) और समुद्रगुप्त (४८० ई०) ने इस शब्द (विक्रमादित्य) को अपनी उपाधि बनाया था। इन विक्रमादित्यों में से हमारे कवि (कालिदास) का आश्रयदाता कौन था, यह एक पहेली है जो अभी तक हल नहीं हो पाई।

दूसरा साधन अर्थात् वे प्रमाण जो उनकी रचनाओं से एकत्रित किए गए हैं, अधिक विश्वसनीय माने जा सकते हैं यद्यपि वे बिलकुल ठीक नहीं हैं। इन उल्लेखों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वे जाति के ब्राह्मण और शिव के भक्त थे। उनके उज्जयिनी, काश्मीर तथा उत्तरीय भारत के अन्य नगरों के विस्तृत एवं वास्तविक वर्णन से पाठक इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उन्होंने स्वयं इन स्थानों में भ्रमण किया था। राज-दरबार के जीवन से उनको पूरी जानकारी थी और माघ तथा भवभूति के विपरीत उनका जीवन सुखमय एवं समृद्धिशाली रहा और वे सर्वप्रिय थे। यद्यपि वे विनोदप्रिय थे लेकिन वे विषयी न थे। उन्हें स्त्री-जाति के प्रति बड़ी श्रद्धा थी और उनकी पवित्रता के विषय में उनके विचार अच्छे थे। यह बात शकुन्तला के मूल से प्रमाणित होती है। वे उच्चकोटि के विद्वान् थे और उन्हें वैदिक सिद्धान्तों का, उपनिषद्वेदान्त का, पौराणिक-कथाओं का, नाना प्रकार के दार्शनिक सिद्धान्तों का, व्याकरण का, छन्द-शास्त्र का, ज्योतिषशास्त्र तथा वैद्यकशास्त्र का ज्ञान था।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कालिदास के समय का प्रश्न कोई सरल कार्य नहीं है और अधिक से अधिक

उनका समय

अनुमान का ही सहारा लिया जा सकता है। इस विषय पर जो भिन्न-भिन्न मत हैं वे दो मुख्य भागों में बाँटे जा सकते हैं। एक सिद्धान्त वालों का यह कहना है कि वे ई० पूर्व प्रथम शताब्दी में हुए थे और विक्रम-संवत् के चलाने वाले राजा विक्रमादित्य के समकालीन थे। दूसरे सिद्धान्त वाले उन्हें ५वीं या ६वीं शताब्दी का बताते हैं। प्रथम विचार वाले जो तर्क उपस्थित करते हैं उसका सारांश इस प्रकार है :—

१—उत्तराधिकार के नियमों की व्यवस्था और चोरी तथा अन्य अपराधों के लिये दण्ड का उल्लेख जो शकुन्तला में हुआ है ऐसे समाज तथा नियम की ओर संकेत करता है जैसा कि ईसा के पूर्व पाया जाता था।

२—प्रथम शताब्दी के प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक और कवि अश्वघोष तथा कालिदास की रचनाओं में जो समानताएँ पाई जाती हैं उनसे लोग यह निष्कर्ष निकालते हैं कि कालिदास अश्वघोष के पहले हुए थे क्योंकि सम्भावना यह है कि अश्वघोष ने कालिदास के भावों को ग्रहण किया।

३—इलाहाबाद के समीप भीटा ग्राम में एक पदक प्राप्त हुआ है जिसमें दो कुमारियाँ पौधों को सींचती हुई दिखाई गई हैं और एक राजा मृग का पीछा करता हुआ अंकित किया गया है जो प्रथम शताब्दी (ई० पू०) के माने जाते हैं। उसके विषय में विद्वानों का मत है कि वह शकुन्तला के प्रथम अंक का दृश्य है। इसलिए यह नाटक उससे पहिले लिखा गया होगा।

४—मन्दसौर शिलालेख का लेखक 'वत्सभट्टि' (४७२ ई०) कालिदास की कविताओं से प्रेरणा ग्रहण करता है। अतः कालिदास ५वीं शताब्दी के प्रारम्भ के पूर्व ही रहे होंगे।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

५—उनकी शैली मध्यकालीन संस्कृत-लेखकों से बिलकुल भिन्न है, यह प्रमाण कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। कालिदास की शैली सुबोध एवं सरल है। परन्तु बाद के लेखकों ने बड़े-बड़े समासों से परिपूर्ण तथा कठिन श्लेषों आदि से अलंकृत भाषा के प्रयोग में आनन्द प्राप्त किया है।

इसी प्रमाण के आधार पर डा० पेटरसन ऐसे विद्वानों का विश्वास है कि यदि कालिदास पहिले नहीं हुए तो ई० संवत् के प्रारम्भ में अवश्य रहे होंगे।

दूसरे मतवालों का तर्क निम्नलिखित है :—

१—कालिदास की भाषा (विशेष रूप से प्राकृत) और उनकी शैली पहले के दो कवि भास और अश्वघोष की शैलियों तथा भाषा से अधिक परिमार्जित है। ये दोनों क्रमशः प्रथम शताब्दी ई० पू० और ई० प्रथम शताब्दी में हुए थे।

२—कालिदास की रचनाएँ संस्कृत-साहित्य की पूर्ण परिपक्वावस्था की परिचायिका हैं। गुप्तकाल में, जिसे इतिहास में संस्कृत-साहित्य और ब्राह्मण-धर्म का स्वर्णयुग कहते हैं, साहित्य को परिपक्वता प्राप्त हो गई थी।

३—"विक्रमोर्वशीय" के शीर्षक में चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य (४१३ ई०) तथा 'कुमार सम्भवम्' के नाम के उसके पुत्र कुमारगुप्त के विषय में कुछ संकेत है और 'मालविकाग्निमित्रम्' में जो अश्वमेध यज्ञ की चर्चा आयी है वह हमें समुद्रगुप्त के अश्वमेध का स्मरण दिलाती है।

४—कालिदास की रचनाओं में गुप्तकालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा आर्थिक दशाओं का वर्णन किया गया प्रतीत होता है।

५—रघुवंश में हूणों के उल्लेख से यह मालूम पड़ता है कि वे हूणों के पंजाब-आक्रमण (६वीं शताब्दी) के बाद हुए थे।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इन तर्कों से स्पष्ट है कि कोई बात निश्चित नहीं है और दोनों वर्गों के विद्वान् केवल कल्पना पर निर्भर हैं। ऐसी अवस्था में इनके विषय में अधिक से अधिक जो कहा जा सकता है वह यह है कि कालिदास ६२४ ई० के पहले हुए थे, क्योंकि उस समय के ऐहोल के शिलालेख में इनका उल्लेख किया गया है और उसी समय के लिखे हुए बाणभट्ट के 'हर्षचरितम्' में उनका उल्लेख है, या हम यह कह सकते हैं कि वह पाँचवीं शताब्दी में हुए थे। इसके आगे कहना अत्यन्त आपत्तिजनक होगा।

उनकी रचनाएँ

कहा जाता है कि कालिदास ने लगभग ४१ पुस्तकें लिखी हैं। लेकिन यह बात अत्यन्त संदिग्ध है। उनमें बहुत सी तो ऐसी हैं जिनके साथ उनका नाम जोड़ना अनुचित है। ऐसा मालूम पड़ता है कि कुछ निम्नश्रेणी के लेखकों ने अपनी रचनाओं को सर्व-प्रिय बनाने के लिये उनके साथ कालिदास का नाम जोड़ दिया है या वे दूसरे कालिदास द्वारा रचित होंगी। इस प्रकार इस लम्बी सूची में से उनकी लिखी केवल ६ पुस्तकें कही जाती हैं और सातवीं पुस्तक 'ऋतुसंहारम्' के विषय में भी कुछ सन्देह है कि वह उनकी लिखी हुई नहीं है। इन सातों का वर्गीकरण इस प्रकार है--

(क) काव्य :--१. रघुवंशम् २. कुमारसम्भवम्। (ख) मुक्तक-काव्य :--१. मेघदूतम्, २. ऋतुसंहारम्, (ग) नाटक :--१. शाकुन्तलम् २. विक्रमोर्वशीयम् ३. मालविकाग्निमित्रम्।

उनकी कला, शैली आदि

सरस्वती के मकुट में कालिदास सबसे प्रकाशमान रत्न हैं और निस्सन्देह वे संस्कृत साहित्य के सर्वोत्तम कवि हैं। भवभूति संस्कृत नाटक लिखने में तथा भारवि, माघ और श्रीहर्ष संस्कृत काव्य लिखने में उनकी समता के हैं; परन्तु ऐसा कोई कवि नहीं है जो नाटक और काव्य दोनों में अकेला ही इनकी बराबरी कर सकता हो। उनका रघुवंश संस्कृत

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

के उत्तम काव्यों में एक है और उनका शाकुन्तलम् संस्कृत नाटकों में सर्वोत्तम है, यद्यपि परम्परागत श्लोक—

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्,
नैषधे पदलालित्यं माघे संति त्रयो गुणाः।

इनके विषय में प्रचलित है, तथापि वस्तुतः वे केवल उपमा में ही नहीं अपितु काव्य के सम्पूर्ण गुणों में अन्य कवियों से श्रेष्ठ हैं। उपरोक्त श्लोक तो केवल उनकी प्रशंसामात्र है। बाणभट्ट और दण्डी की रचनाओं के विपरीत उनकी रचनाओं में बाह्य अलंकारों से अधिक भाव की प्रधानता है और उनकी भाषा और शैली उनकी सुन्दर कल्पनाओं के अनुकूल है जो कि भास और अश्वघोष के काव्यों में नहीं है। भाषा और कल्पना दोनों पर उनका पूर्ण अधिकार है।

उनकी शैली सरल, शुद्ध और सुन्दर है। यह संक्षिप्त और स्पष्ट है। उनकी भाषा में प्रवाह है और वह दीर्घ सामासिक पदों से रहित है। उसमें सम्मिश्रित पदों तथा कठिन श्लोकों का अभाव है। भाषा सरल है लेकिन उसमें अलंकार की कमी नहीं है। (देखिए—कुमारसम्भव सर्ग ५, श्लोक संख्या ४, १८, १७) उन्होंने श्लोकों की मात्रा को पूर्ण करने के लिए निरर्थक शब्दों और अव्ययों का प्रयोग नहीं किया है जैसा कि अन्य महाकाव्यों में पाया जाता है। उनके काव्यों में ऐसा एक भी शब्द न मिलेगा जो निरर्थक हो अथवा जो कथानक को आगे बढ़ाने में सहायक न हो। इस प्रकार उनके काव्यों में वह रचना-शैथिल्य नहीं है जो महाकाव्यों में पाया जाता है और न वह कृत्रिमता है जो बाद के लेखकों में पाई जाती है। इस विषय में 'कालिदास' एनीड (Aenid) के लेखक वर्जिल (Virgil यूनानी कवि) के समान हैं। उनकी शैली वैदर्भी रीति की है जिसमें दृढ़ता, स्वरों का साम्य, सौन्दर्य, कोमलता, अर्थ की स्पष्टता, विशेषणों की सुन्दरता, ओज, माधुर्य तथा रूपक आदि पाये जाते हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इस शैली के अनुसार उन्होंने विस्तार (विश्लेषण) की अपेक्षा व्यंजना का आश्रय लिया है।

कालिदास के काव्य की एक विशेषता है उनका प्रकृति-प्रेम। उन्होंने प्राकृतिक दृश्यों और प्राकृतिक पदार्थों का—उदाहरणार्थ हिमालय, मान-सरोवर, समुद्र और गङ्गा इत्यादि का जो सजीव और स्पष्ट वर्णन किया है उसके कारण वे "प्रकृति के कवि" कहे जाते हैं।

उनकी वर्णनशक्ति अद्भुत है और प्रकृति का वर्णन करते समय वे हमें ऐसे प्रतीत होते हैं मानो कि वे उसके एक अंग हों। इस सम्बन्ध में एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है। वह यह कि वे प्रकृति के जड़ पदार्थों में भी मानवीय भावनाओं और कार्यों का आरोप करते हैं जिससे कि वह दृश्य अत्यन्त प्रभावोत्पादक हो जाता है—(देखिए कुमार० ५—१७, २५)। इसको अंग्रेजी में "पैथिटिक फैलसी" (Pathetic fallacy) कहते हैं। इस विषय में उनकी तुलना अंग्रेजी के कवि वर्ड्सवर्थ (Words-worth) से की जा सकती है।

कालिदास मानव-हृदय की गहराइयों में प्रवेश करने में समर्थ हुए हैं। उसके कार्यों और भावनाओं का उनका निरीक्षण अद्भुत है और जिस प्रकार से वे उन्हें व्यक्त करते हैं उससे उनकी ख्याति और भी बढ़ गई है। हम्बोल्ड (Hamboldt) के शब्दों में*"—भावाभिव्यक्ति की कोमलता और रचनात्मक कल्पना की उत्कृष्टता ने उनको संसार के कवियों में एक उच्च स्थान प्रदान किया है"† (देखिए—कुमार ५—१, २६, ६७ और ५८)। उनका काव्य सार्वभौम सत्य से परिपूर्ण है। (देखिये कुमार ५—

---

*"Tenderness in the expression of feelings and richness of creative fancy have assigned to him his lofty place among the poets of all nations".

† "भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।" जयदेव

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

४५, ६४, ७५, ८२ और ८६)। इससे प्रतीत होता है कि उन्होंने मानव की चित्तवृत्ति का ठीक-ठीक अध्ययन किया था और उसका उन्हें विशाल अनुभव था।

अलंकारों में उपमा उनको अधिक प्रिय है और उनकी कविता में सुन्दर उपमाओं की भरमार है (देखिये कुमार ५—५२, ६१), परन्तु उन्होंने अन्य अलंकारों का भी प्रयोग किया है। उत्प्रेक्षा (देखिये कुमार ५—२५, २७, ४१), अर्थान्तरन्यास (देखिये कुमार ५—२५-३१-६४) और दृष्टान्त (देखिये कुमार ५, ४) के प्रयोग में भी वे उतने ही सिद्धहस्त हैं। यह देखकर आश्चर्य न करना चाहिये कि जहाँ कहीं उचित मालूम पड़ा है, उन्होंने शब्दालंकार का भी प्रयोग किया है और ऐसा करने में वे बहुत सफल हुए हैं। शब्दालंकारों में यमक और अनुप्रास अधिक प्रचलित हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कालिदास शब्द और अर्थ दोनों के पण्डित हैं।

इन्हीं गुणों के कारण भारतीय तथा विदेशीय समालोचकों और कवियों ने इनकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। भारत में तो उन्हें कविकुलगुरु कहा जाता है और उनकी कविता को 'मधुरसार्द्र मंजरी'* कहा गया है।† वे अनुपम कवि हैं और उनका शाकुन्तल नाटकों में सबसे रम्य है।‡

सर विलियम जोन्स, जिन्होंने शकुन्तला का सर्व-प्रथम अनुवाद अंग्रेजी में किया था उन्हें 'भारतीय शेक्सपिअर' कहते हैं और प्रोफेसर लेसन

---

*"निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसार्द्रासु मंजरीष्विव जायते" । बाणभट्ट ।

†"पुरा कवीनां गणनाप्रसंगे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासा।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव ॥"

‡"काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्टयम् ॥"

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(Lasson) 'भारतीय काव्याकाश का सबसे देदीप्यमान तारा' कह कर उनकी प्रशंसा करते हैं। जर्मनी के प्रसिद्ध कवि गेटे (Gaethe) की शकुन्तला के विषय में लिखी गई प्रशंसा बहुत ही प्रसिद्ध है :—

"Wouldst thou the young year's blossoms and the fruits of its decline,

And all by which the soul is charmed, enraptured, feasted, fed ?

Wouldst thou the earth and heaven itself in one sole name combine ?

I name thee, O Shakuntala, and all at once is said."

२—कुमारसम्भवम् काव्यम्

सामान्य बातें

कुमारसम्भव एक महाकाव्य है। यह सर्गों में विभाजित है। इसका नायक दिव्य पुरुष है और वह धीरोदात्त नायक के सभी गुणों से युक्त है। उसका प्रधान रस श्रृंगार है तथा करुण और शान्त उसके सहायक हैं। इसकी कथा पौराणिक है और इसमें नगरों, ऋतुओं तथा प्रकृति-सौंदर्य आदि का वर्णन है। इस प्रकार महाकाव्य के सारे गुण इसमें वर्तमान हैं। कुमार-संभव का परिमाण विवादास्पद है। किसी पुस्तक के किसी-किसी संस्करण में सत्रह सर्ग हैं और कुछ विद्वानों का कहना है कि इसमें २२ सर्ग हैं। किन्तु साधारणतया लोगों का विश्वास है कि केवल प्रथम ८ सर्गों की ही रचना कालिदास ने की और शेष सर्गों को किसी बाद के लेखक ने उसमें प्रक्षिप्त कर दिया। प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने केवल ८ ही सर्ग तक की टीका की है और काव्य की मुख्य घटना अर्थात् कुमार का जन्म ८ वें सर्ग में हो गया है। इसलिये यह कहा जा सकता है कि इसके बाद कथा पूर्ण हो गई है। बाद के सर्गों की घटनाओं का मुख्य विषय से कोई सम्बन्ध नहीं है

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

और उनकी शैली से भी यही प्रतीत होता है कि ६ से लेकर १७ सर्गों तक का लेखक प्रथम ८ सर्गों के लेखक से भिन्न है।

कुमारसम्भव के विषय के लिए कालिदास ने दैवी प्राणियों को चुना है जिससे उनकी कल्पना-शक्ति को बहुत ऊँचे जाने का अवसर प्राप्त हुआ है। महान् हिमालय में होने वाली घटनाएँ—जहाँ पर सुन्दर उपत्यकायें और अधित्यकाएँ वर्त्तमान हैं—प्राकृतिक सौन्दर्य वर्णन का अवसर प्रदान करती हैं। शिव से व्याह करने की उत्कट इच्छा वाली सुन्दरी युवती पार्वती का वर्णन अत्यन्त कुशलता के साथ किया गया है। कामदेव के पराजय के बाद पार्वती के भय का, और कठोर तपस्या के द्वारा शिव को प्रसन्न करने की पार्वती की इच्छा का, जो वर्णन कालिदास ने किया है उससे प्रकट होता है कि कालिदास को पार्वती के हृदयगत भावों को जानने की शक्ति थी। जिस निष्ठा और सत्यता के साथ पार्वती तपस्या करती हैं उसका वर्णन बड़ी सफलता से किया गया है और ब्रह्मचारी तथा पार्वती का वार्त्तालाप संस्कृत काव्य में अपने ढंग का सबसे उत्तम है। काव्य की अन्य घटनाओं पर विचार करते हुए हम यह कह सकते हैं कि शिव के ऊपर की गई कामदेव की चढ़ाई, कामदेव के ऊपर शिव की विजय तथा पति-वियोग-विधुरा रति के विलाप आदि का काल्पनिक वर्णन अन्य कवि इतनी सफलता से न कर सकते। इन सब गुणों तथा कालिदास के अन्य स्वाभाविक गुणों के कारण संस्कृत महाकाव्य में इस (कुमारसम्भव) को एक बहुत उच्च स्थान मिला है और डा० रीडर (Rayder) के इस कथन से कि "कुमारसम्भव में ऐसे मर्मस्पर्शी सुन्दर पद आए हैं कि जिससे संसार के लोग इसे कभी नष्ट न होने देंगे", सभी लोग सहमत हैं।

कथा-वस्तु का आधार

मेघदूत तथा मालविकाग्निमित्र को छोड़कर कालिदास ने अपने काव्य के वर्ण्य विषयों को प्राचीन कथाओं से लिया है। किन्हीं-किन्हीं में तो उन्होंने ऐतिहासिक कथाओं को लिया है और किन्ही-किन्हीं में पौराणिक कथाओं को।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कुमार-सम्भव पौराणिक कथा है क्योंकि शिव और पार्वती की कथा केवल पौराणिक है। यह बड़ी प्राचीन कथा है और इसका उल्लेख कई पुराणों में है परन्तु जितने विस्तार से यह शिवपुराण में लिखी है उतने विस्तार से अन्य पुराणों में नहीं लिखी गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि कालिदास ने अपनी कथा-वस्तु को इसी पुराण से लिया है। परन्तु उन्होंने केवल विषय को ही लिया है और अपनी काव्य-शक्ति, तथा अलौकिक कल्पना-शक्ति से इस कथा को एक नया रूप दे दिया है।

काव्य

जैसा कहा गया है, इस कथा की मुख्य घटना कुमार का, जो शिव और पार्वती के पुत्र थे, जन्म है। इसी से इस काव्य का नाम "कुमारसम्भवम्" पड़ा। इस नाम की व्याख्या इस प्रकार हो सकती है—कुमारस्य कार्त्तिकेयस्य सम्भवः (उत्पत्तिः) कुमार-सम्भवः, स एव भेदोपचारात् कुमारसंभवम् महाकाव्यम् या कुमारस्य संभवः कुमारसम्भवः कुमारसम्भवः वर्णितः अस्मिन् काव्ये तत् कुमारसंभवम् अर्थात् जिस काव्य में कुमार के जन्म का वर्णन हो वह कुमारसम्भव कहलाता है।

विद्यार्थियों की सुविधा के लिये प्रथम आठ सर्गों की कथा नीचे लिखी जाती है।

प्रथम सर्ग

प्रारम्भ में पाठकों को पर्वतराज हिमालय का उत्तम वर्णन मिलता है। हिमालय और उसकी पत्नी मैना से मैनाक नामक पुत्र और पार्वती नामक कन्या हुई। पार्वती अपने प्रथम जन्म में दक्ष की कन्या और शिव की स्त्री थीं और उनका नाम सती था। तदनन्तर पार्वती के बाल्यकाल का और युवावस्था का वर्णन किया गया है। जब पार्वती विवाह योग्य होती है तो नारदमुनि आकर यह बतलाते हैं कि उसका विवाह शिव के साथ होगा। यह सुनकर हिमालय अपनी कन्या को दो सखियों के साथ शिव की, जो कि अपनी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पत्नी सती के मरने के बाद से ब्रह्म तपस्वी का जीवन व्यतीत कर रहे थे, सेवा के लिए भेजते हैं।

उसी समय देवता लोग स्वर्ग में तारकासुर से पीड़ित थे। उससे मुक्ति पाने के लिये देवता लोग ब्रह्मा के पास जाते हैं।

द्वतीय सर्ग

वे अपनी सारी विपत्ति उनसे कहते हैं। ब्रह्मा उत्तर में यह बतलाते हैं कि शिव का पुत्र ही एक ऐसा व्यक्ति है जो उनको विपत्ति से बचा सकता है। यह सुनकर देवता लोग शिवजी के ब्याह की बात सोचते हैं और ब्रह्मा उनको यह बतलाते हैं कि पार्वती, जो शिव की आराधना कर रही हैं, शिव की पत्नी होने योग्य हैं और उनसे जो पुत्र उत्पन्न होगा उसी से देवताओं की कार्यसिद्धि होगी।

तब शिव के मन में कामोद्दीपन करने के लिये इन्द्र कामदेव को बुलाते हैं और वह भी बसन्त को अपना सहायक बनाकर

तृतीय सर्ग

अपने कार्य के लिये प्रस्थान करता है। यकायक शिव के चारों तरफ बसन्त ऋतु का साम्राज्य हो जाता है। सारे जड़ व चेतन पदार्थ कामार्त हो जाते हैं। शङ्कर जी के मन में भी क्षोभ पैदा हो जाता है, परन्तु शीघ्र ही वे चेत जाते हैं और इन सब का कारण कामदेव को समझ कर उसे अपनी तीसरी आँख के तेज से भस्म कर देते हैं। हिमालय को कुछ विपत्ति की आशंका होती है और वह अपनी कन्या को घर बुला ले जाते हैं। इस पर देवताओं को कुछ देर के लिये निराशा हो जाती है।

काम के निधन पर उसकी स्त्री रति, जो उसके साथ गई थी, बड़ी दुःखी होती है। वह अत्यन्त करुण विलाप करती है

चतुर्थ सर्ग

और अपने पति के साथ सती होकर प्राण त्याग करना चाहती है। परन्तु एक आकाशवाणी होती है कि यह पति-वियोग तो क्षणिक है और दोनों का सम्मिलन फिर होगा। यह सुनकर उसे शांति होती है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पार्वती जी शङ्कर से प्रेम करने लगी थीं और उन्हें अपना पति बनाना चाहती थीं। कामदेव के निधन के बाद भग्नमनो-

पञ्चम सर्ग

रथ होकर तपस्या करके शङ्कर को प्रसन्न करना चाहती हैं। माँ के बहुत मना करने पर भी वह पिता की आज्ञा लेकर हिमालय के एक शिखर पर तपस्या करने चली जाती हैं और अपनी सखियों के साथ जाकर घोर तप करती हैं। वह तपस्विनी का रूप बनाकर शरीर को अति कष्ट देती हुई तप करती हैं। दूर-दूर से मुनि लोग उसे देखने आते हैं। एक दिन ब्रह्मचारी का रूप धारण कर शिव जी उसके पास जाते हैं और पार्वती की तपस्या तथा उसके पवित्र जीवन की प्रशंसा करते हैं। तदनन्तर यह जानकर कि वह शङ्कर को पति बनाने के लिये तपस्या कर रही है, वह शङ्कर की बड़ी निंदा करते हैं। ब्रह्मचारी शङ्कर जी की गरीबी, अज्ञात जन्म, अमङ्गल रूप इत्यादि की चर्चा करके पार्वती को उसके संकल्प से डिगाना चाहता है। परन्तु पार्वती उसकी सब बातों का उत्तर देती हुई शिव के प्रति अपने प्रेम का उत्कट प्रमाण देती हैं। इतने में शिव उसे अपना रूप दिखाकर अपने को उसका दास स्वीकार करते हैं। यह देखकर पार्वती अति प्रसन्न होती हैं।

पार्वती के कहने के अनुसार शङ्कर जी सप्तर्षियों को हिमालय की स्वीकृति लेने के वास्ते उनके पास भेजते हैं। हिमालय

छठा सर्ग

उनका उचित स्वागत व सम्मान करते हैं और उनसे पूछे जाने पर सप्तर्षि लोग अपने आने का कारण बतलाते हैं। हिमालय बड़ी प्रसन्नतापूर्वक अपनी स्वीकृति देते हैं। मुनि लोग विवाह की लग्न निश्चित करके शिव के पास जाते हैं और दोनों ओर विवाह की तैयारियाँ होने लगती हैं।

हिमालय के यहाँ सारी विधियों का प्रारम्भ होता है और विवाह सम्बन्धी प्रारम्भिक कार्य सम्पादन किये जाते हैं। प्रथम दिन

सप्तम् सर्ग

शिव अपने भृत्यों और देवताओं समेत हिमालय के

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यहाँ पहुँचते हैं। बारात का उचित स्वागत होता है। नगर के लोग दूल्हे के दल को देखकर विशेष आनन्द लेते हैं। तब ब्याह होता है और ब्याह के बाद सब बिदा हो जाते हैं परन्तु शिव जी वहाँ कुछ दिन ठहर जाते हैं।

अष्टम सर्ग

इस सर्ग के आदि में नवविवाहित दम्पति के प्रेम का वर्णन किया गया है। एक मास तक हिमालय के यहाँ रहने के बाद शिवजी पार्वती के साथ आनन्द यात्रा करते हैं और बहुत से मनोरंजक स्थानों का भ्रमण करते हुए गन्धमादन पर्वत पर पहुँचते हैं। वे वहाँ आनन्दपूर्वक निवास करते हैं। एक दिन सुरापान करके दोनों आनन्द से रात्रि व्यतीत करते हैं।

(५) पञ्चम सर्ग का कथासार

शिव ने जब कामदेव को भस्म कर दिया तो पार्वती अत्यन्त निराश हुईं। शिव के पाने का दूसरा उपाय न देखकर उन्होंने तपस्या करने का निश्चय किया। उनकी माता ने उनको तपस्या करने से मना किया परन्तु दृढ़ संकल्प वाली वह पार्वती पिता की आज्ञा प्राप्तकर सखियों-समेत गौरी-शिखर को गईं। वहाँ उन्होंने वल्कल, मौञ्जी, जटा धारण कर और अक्षमाला लेकर तपस्या करना शुरू किया। तपस्या करते समय वे पृथ्वी पर सोती थीं। विलास से पराङ्मुख हो गई थीं और वृक्षों से तथा मृगों से प्रेम करने लग गईं। उनकी ख्याति इधर-उधर फैल गई और मुनि लोग भी उनके दर्शन के लिये आने लगे। परन्तु जब साधारण तप से उन्होंने मनोरथ को पूरा होते हुए न देखा तो घोर तप करने लगीं। ग्रीष्म ऋतु में वह पञ्चाग्नि तापती थीं, वर्षा में वे खुले हुए मैदान में रहतीं और जाड़े की रात में जब ठंडी हवा चलती थी तो वे जल में रहती थीं। बाद में उन्होंने वृक्षों के पत्ते भी खाना छोड़ दिया, अतः उनका नाम 'अपर्णा' हो गया। उनके इस प्रकार कठोर तप करते समय एक दिन ब्रह्मचारी का वेष धर कर एक साधु उनके आश्रम में आया। पार्वती द्वारा सत्कार पाने पर उसने उनका

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कुशल पूछा। तदनन्तर उनकी आज्ञा पाकर साधु ने उनकी तपस्या का कारण पूछा। पार्वती ने स्वयं कुछ न कहकर अपनी सखी को उत्तर देने का संकेत किया। सखी ने पार्वती का महादेव जी से ब्याह करने का जो विचार था वह बतलाया और शिव के वियोग से उसकी जो दयनीय दशा हो गई थी उसका भी हाल बतलाया। यह सुनकर उसकी सत्यता जानने के लिये उसने पार्वती से पूछा। पार्वती ने भी प्रत्येक विषय का अपना प्रेम बतलाकर सखी की बात का समर्थन किया। तब उसने यह कहकर कि शिव तो अशुभ वस्तु से प्रेम करते हैं, सर्पों का कङ्कण पहनते हैं, हाथी की खाल धारण करते हैं, श्मशान में निवास करते हैं, गरीब हैं और बैल की सवारी करते हैं तथा अशुभ रूप धारण किये रहते हैं, पार्वती को अपने संकल्प से डिगाने का प्रयत्न किया। परन्तु पार्वती ने प्रत्येक दोष का परिहार कर साधु द्वारा बताये हुए दोषों को शिवजी के गुण रूप में बतलाया। जब वह ब्रह्मचारी फिर शङ्कर का दोष कहने को उत्सुक हुआ तो पार्वती वहाँ से चलने को तैयार हो गईं। परन्तु वे तो ब्रह्मचारी के रूप में स्वयं शङ्कर जी थे। उन्होंने अपना असली रूप प्रकट कर उनको पकड़ लिया और उन्हें अपने को समर्पित कर दिया। यह देखकर पार्वती का सारा क्लेश दूर हो गया।

पंचम सर्ग का संस्कृत में कथा-सार

शिवेन कामे भस्मसात्कृते पार्वती नितरां निराशा जाता; शिवप्राप्त्यर्थमुपायान्तरमपश्यन्ती च तपः कर्तुं निश्चितवती। तन्माता तु तां तपसो निवर्त्तयामास, परं दृढनिश्चया सा स्वजनकस्याज्ञामादाय स्वसखीभिः सह गौरीशिखरं जगाम तत्र च वल्कलं, जटाः, मौञ्जीम् अक्षसूत्रञ्च गृहीत्वा तपः प्रारब्धवती। तपस्काले सा भूमावेव शेते स्म, विलासादिरहिता बभूव, पादपमृगादिषु च प्रीतियुक्ता जाता। इतस्ततस्तस्याः ख्यातिर्जाता मुनयश्च तद्दर्शनार्थं तामाजग्मुः। परं यदा तया सामान्यसमाधिना फलं न लब्धं तदा सा महत्तपः अकरोत्। ग्रीष्मर्त्तौ सा पञ्चाग्नितपः कृतवती, वर्षास्वपि

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अनावृतस्थान एव तस्थौ, हेमन्तस्य च रात्रिषु शीतवायावपि जलमध्य एव निषसाद । अन्ते च तया वृक्षपत्राणामपि भक्षणं त्यक्तमतः स 'अपर्णा', इति संज्ञामलभत । एवमेव कठिनं तपः कुर्वन्त्यां तस्यामेकदा तदाश्रमं ब्रह्मचारिवेषधारी कश्चित्साधुराजगाम । तया यथाविधि सत्कृतः स पार्वतीं कुशलं पप्रच्छ । तदनु च तदाज्ञामादाय तस्याः तपःकारणं ज्ञातुमियेष । पार्वती तु स्वयं किमप्यकथयित्वा स्वसखीं प्रतिवक्तुमादिदेश । सा हि तस्मै हरवरणविषयकं स्वनिश्चयं तद्वियोगकृतां स्वां दशाञ्च निवेदितवती । श्रुत्वेदं स तत्सत्यतां प्रति पार्वतीं पप्रच्छ, तयापि हरविषयकानुरागं प्रदर्श्य सोऽर्थः समर्थितः । तदा स शिवस्य अशुभवस्तुप्रीतिमत्वं, सर्पकंकणत्वं, गजाजिनधारणत्वं, श्मशानवासत्वं, वृद्धोक्षवाहनत्वं, देहविरूपत्वं निर्धनत्वञ्च कथयित्वा तां तन्निश्चयात् निवारयितुं चेष्टते स्म । परं पार्वत्या प्रत्येकदोषस्य परीहारः कृतः, ब्रह्मचारिकथिताः दोषाश्च शिवस्य गुणत्वेन प्रदर्शिताः । यदा च तया बटुः पुनरपि दोषकथनोत्सुको दृष्टस्तदा क्रुद्धा सा ततो गन्तुं प्रचक्रमे, परं ब्रह्मचारिवेषधारी शिवः स्वं रूपमास्थाय तां जग्राह आत्मानञ्च तस्यै समर्पितवान्, यच्छ्रुत्वा पार्वती गतक्लमा जाता ।

———

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कुमारसम्भवम्

—:०:—

पञ्चमः सर्गः

—:०:—

तथा समक्षं दहता मनोभवं
पिनाकिना भग्नमनोरथा सती ।
निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती
प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता ॥ १ ॥

मल्लिनाथकृता सञ्जीवनी टीका :—तथेति । पर्वतस्यापत्यं स्त्री पार्वती तथा तेन प्रकारेण अक्ष्णोः समीपे समक्षं पुरतः । 'अव्ययं विभक्ति समीपसमृद्धि'—इत्यादिनाव्ययीभावः । मनोभवं मन्मथं दहता भस्मीकुर्वता पिनाकिना ईश्वरेण भग्नमनोरथा भग्नः खण्डितो मनोरथः अभिलाषो यस्याः सा तथोक्ता सती हृदयेन मनसा रूपं सौन्दर्यं निनिन्द । धिङ् मे रूपं यद्धरमनोहरणाय नालमिति गर्हितवतीत्यर्थः । युक्तं चैतदित्याह—तथा हि । चारुता सौन्दर्यं प्रियेषु पतिषु विषये सौभाग्यफला सौभाग्यं प्रियवाल्लभ्यं फलं यस्याः सा तथोक्ता । सौन्दर्यस्य तदेव फलं यद्भर्त्तृ सौभाग्यं लभ्यते । नोचेद्विफलं तदिति भावः । अस्मिन् सर्गे वंशस्थं वृत्तम्—'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ' इति लक्षणात् ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्वय :—पार्वती तथा समक्षं मनोभवं दहता पिनाकिना भग्न-मनोरथा सती हृदयेन रूपं निनिन्द । (तथा) हि चारुता प्रियेषु सौभाग्यफला ।

टिप्पणी :—पार्वती पर्वतस्य अपत्यं स्त्री पार्वती (पर्वत+अण्+ङीप्) पर्वत की कन्या अर्थात् हिमालय की कन्या । "तस्य अपत्यम्" पाणिनि ४.१.९२ सूत्र के अनुसार "अपत्य" अर्थ में अण् प्रत्यय हुआ । तब इसको स्त्रीलिङ्ग बनाने के वास्ते "ङीप्" प्रत्यय जोड़ा गया । तथा—जैसा निम्नलिखित श्लोक में वर्णन किया गया है "क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावद्गिरः खे मरुतां चरन्ति । तावत्स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार" कुमारसम्भव ३.७२ । समक्षम् (सम्+अक्षि+टच) उसके सामने, यह अव्ययीभाव समास है और सामीप्य अर्थ में है । "अव्ययं विभक्तिसमीप समृद्धि" पाणिनि २. १. ६ इस सूत्र के द्वारा सामीप्य अर्थ में अव्ययीभाव समास बना । "अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः" पाणिनि ५. ४. १०४ सूत्र के द्वारा टच् प्रत्यय जोड़ने से अक्षि का अक्ष् हो गया ।

मनोभवं—मनसि भवम् ; मनसः भवः यस्य सः—मन से पैदा होने वाला अर्थात् कामदेव । दहता—जलाता हुआ । दहत् शब्द की तृतीया का एक वचन है । दहत्—दह धातु शतृ प्रत्ययान्त । पिनाकिना—(पिनाक+इनिः) पिनाकः धनुः यस्य सः तेन, महादेव जी के धनुष का नाम पिनाक है । अतः उन्हें "पिनाकिन्" कहते हैं । "पिनाकोऽजगवं धनुः" इत्यमरः । भग्नमनोरथा (भञ्ज्+क्त)—भग्नः मनोरथो यस्याः सा—जिसका मनोरथ नष्ट हो गया है । कामदेव के जलकर राख हो जाने पर पार्वती शंकर से ब्याही जाने में निराश हो गईं । सती—स्त्रीलिङ्ग; अस् (होना) शतृ +ङीप् । निनिन्द—कुत्सितवती, धिक्कारा । पार्वती ने अपने रूप की निन्दा इसीलिए की

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कि वह शिव जी को मोहित न कर सकीं। निनिन्द—यह "णिदि कुत्सायां" का लिट् का प्र० पु० का ए० व० है। हि—क्योंकि, यह अव्यय है और अनेक अर्थों में इसका प्रयोग होता है। देखिये "हि पादपूरणे हेतौ विशेषेऽप्यवधारणे। प्रश्ने हेत्वपदेशे च संभ्रमासूययोरपि" इति मेदिनीकोषः। चारुता—(चारु+तल) चारोः भावः (सौन्दर्यम्) सुन्दरता। "तस्य भावस्त्वतलौ" पाणिनि ५. १. ११९ सूत्र से भाव-वाचक संज्ञा बनाने में त्व या तल् प्रत्यय जोड़ा जाता है। प्रियेषु—प्रीतम के प्रति; प्रीतम के संबन्ध में। सौभाग्यफला—(सुभग+ष्यञ्) सुभगायाः भावः सौभाग्यं, अच्छा भाग्य; शुभ भाग्य। सौभाग्यं फलं यस्याः सा—जिसका परिणाम अच्छा भाग्य हो। अर्थात् अच्छा भाग्य लाने वाली।

"प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता" यह एक सार्वभौम कहावत है, जिसका अर्थ है—सुन्दरता वही है जिसके द्वारा प्यारे को सुख मिले अर्थात् वही सच्चा रूप है जो प्रीतम को आकृष्ट करे और उससे प्रेम करावे, अन्यथा वह रूप निष्फल है चाहे वह औरों की दृष्टि में कितना ही प्रशंसनीय क्यों न हो।

कहीं-कहीं "प्रियेषु सौभाग्यफला" के बजाय "प्रिये सुसौभाग्यफला" भी पाठ है।

इस श्लोक से ८४ श्लोक तक वंशस्थ वृत्त है, जिसका लक्षण है "जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ" अर्थात् ।ऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽ।ऽ; ऽ= गुरु मात्रा। ।=लघु मात्रा का चिह्न है।

वाच्य परिवर्तन :—पार्वत्या तथा समक्षं मनोभवं दहता पिनाकिना भग्नमनोरथया सत्या रूपं हृदयेन निनिन्दे; (तथा हि चारुतया प्रियेषु सौभाग्यफलया (भूयते) ॥ १ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अनुवाद :—इस प्रकार आँखों के सामने ही कामदेव को जलाने वाले शिव के द्वारा निष्फल इच्छावाली पार्वती ने अन्दर से (अपनी) सुन्दरता की निन्दा की; क्योंकि सुन्दरता वही है, जिसके द्वारा प्यारे को सुख मिले ॥ १ ॥

संस्कृत में भावार्थ :--शिवेन मदनदहनं रत्या च तत्कृते कृतं विलापं दर्शयित्वा कविकालिदासः शिवमभिमुखीकर्त्तुं पार्वत्या कृतं तपो वर्णयितुं श्लोकेऽस्मिन् तपोबीजं गौरीनैराश्यं दर्शयति—यदा हि शिवेन स्वतृतीयनेत्राग्निना पार्वत्याः प्रत्यक्षमेव कामः भस्मसात् कृतस्तस्याः शिवपरिणयविषयिकाभिलाषा समूला नष्टा । एवञ्च शिवमन आक्रष्टुमक्षममात्मनः सौन्दर्यं पार्वती निन्दति स्म, यतः वल्लभस्य प्रेम तज्जनितं सुखञ्च सौन्दर्यस्य फलम् । यद्रूपं भर्त्रे न रोचते तन्निरर्थकमेव इति मत्वा सात्मानं धिक्कृतवती ॥ १ ॥

इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां
समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः ।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं
तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः ॥ २ ॥

टीका :—इयेषेति । सा पार्वती समाधिम् एकाग्रताम् आस्थाय अवलम्ब्य तपोभिः वक्ष्यमाण नियमैः करणभूतैः आत्मनः स्वस्य अवन्ध्यरूपतां सफलसौन्दर्यं कर्त्तुम् इयेष इच्छति स्म । तपसा शिवं वशीकर्त्तुमुद्युक्तेत्यर्थः । अन्यथा ततोऽन्यत्प्रकारेण कथं तत् द्वयम् अवाप्यते । किं द्वयम् ? तथाभूता विधा प्रकारो यस्य तत् तथाविधं प्रेम स्नेहः । येनार्धाङ्गहरा हरस्य भवेदिति भावः । तादृशः पतिश्च । या मृत्युञ्जय इति भावः । द्वयमेव खलु स्त्रीणामपेक्षितं यद्भर्त्तुर्वाल्लभ्यं जीवद्भर्तृकत्वं चेति । तच्च तपश्चर्यैकसाध्यमिति निश्चिकाये-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

त्यर्थः। अत्र मनुः—'यद्दुष्करं यद्दुरापं यद्दुर्गं यच्च दुस्तरम्। तत्सर्वं तपसा प्राप्यं तपो हि दुरतिक्रमम्॥' इति।

अन्वय :—सा समाधिमास्थाय तपोभिः आत्मनः अवन्ध्यरूपतां कर्तुम् इयेष। वा अन्यथा तथाविधं प्रेम तादृशः पतिश्च (इति) द्वयं कथम् अवाप्यते।

टिप्पणी :–समाधिम्—(सम्+आ+धा+कि) समाधि, गंभीर ध्यान। यह योग की अन्तिम तथा आठवीं अवस्था है। यहाँ इसका अर्थ "शान्ति" या शिव के प्रति प्रेम भी हो सकता है। आस्थाय (आ+स्था+क्त्वा+ल्यप्) । अवलम्ब्य—सहारा लेकर; लगाकर। तपोभिः—तपस्या के द्वारा। जिससे सब प्रकार की सफलता प्राप्त होती है। मल्लिनाथ द्वारा ऊपर उद्धृत किये हुए मनुस्मृति के श्लोक को देखिये। तपस् का रूप तपः, तपसी, तपांसि। तपसा, तपोभ्याम् आदि। अवन्ध्यरूपताम्—न वन्ध्यम् अवन्ध्यम्, सफल; सार्थक। अवन्ध्यम् रूपम् यस्याः सा अवन्ध्यरूपा। तस्याः भावः अवन्ध्यरूपता ताम्—जिसकी सुन्दरता सार्थक हो। अथवा न वन्ध्यम् अवन्ध्यम् अवन्ध्यम् तद् रूपम् च अवन्ध्यरूप तस्य भावः, ताम्—सार्थक अथवा सफल सुन्दरता। इयेष—इषु (इच्छायाम्) धातु के लिट् के प्र० पु० का एक वचन है। सार्वधातुक लकार में इष का इच्छ हो जाता है, इच्छति। अन्यथा—नहीं तो, बिना तपस्या का सहारा लिये हुए। तथाविधम्—तथा तादृशी विधा प्रकारो यस्य तत्, उस प्रकार का अर्थात् ऐसा प्रेम जिससे वह शिव की स्त्री हो सके। प्रेम—स्नेह। प्यार। प्रेम, प्रेमणी प्रेम्णी, प्रेमाणि। प्रेम्णा, प्रेमभ्याम्, प्रेमभिः इत्यादि। तादृशः—(तत्+दृश्+कञ्) उस प्रकार का यानी शिव के समान जो कि लोक से परे हैं तथा मृत्युञ्जय कहलाते हैं। मृत्युञ्जय—मृत्यु को जीतने वाला। मल्लिनाथ के अनुसार स्त्रियाँ अपने पतियों

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

के विषय में दो वस्तुएँ चाहती हैं। प्रथम, न घटने वाला शाश्वत प्रेम; दूसरे, पति की दीर्घायु। "तथाविधं प्रेम" और 'तादृशः पतिः" इनसे ये दो बातें गम्य होती हैं। अवाप्यते—(अव + आप् + य + लट्) लभ्यते, मिलता है; प्राप्त होता है (लट्) प्र० पु० एक वचन का कर्मवाच्य का रूप है। कहीं अवन्ध्यरूपतां के स्थान पर अवन्ध्यकामतां पाठ है और वा कथं के स्थान पर तत् कथं पाठ है।

वाच्य परिवर्तन :—तया समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनोऽवन्ध्यरूपता कर्त्तुम् ईषे, वा अन्यथा तथाविधं प्रेम तादृशं पतिं च द्वयं कथम् अवाप्नोति ? ॥२॥

अनुवाद :—उसने (पार्वती ने) ध्यान लगा कर तपस्या के द्वारा अपने सौन्दर्य को सार्थक करने की धारणा की, नहीं तो उस प्रकार का स्नेह और वैसा स्वामी और अन्य किसी प्रकार से कैसे मिल सकता है ? ॥२॥

संस्कृत में भावार्थ :—स्वरूपस्य निष्फलतामनुभूय पार्वती सौन्दर्यं शिवाकर्षणे सफलीकर्तुं तप आचरितुं निश्चितवती। उपायान्तरमपश्यन्ती तपसा शिवमभिमुखीकर्त्तुमुद्यताभूदित्यर्थः। कथं तपःसाहाय्यं कामयाञ्चकारेति विषये कविः कथयति—महादेवसदृशो वल्लभो यो हि मृत्युञ्जयः कथ्यते, तादृशोऽनुरागश्च येन सा शिवस्य पत्नी स्यात् तपस्यां विना कथं सम्भवति अन्यप्रकारेण दुर्लभं वस्तु तपसैव प्राप्यत इत्यर्थः ॥२॥

निशम्य चैनां तपसे कृतोद्यमां
सुतां गिरीशप्रतिसक्तमानसाम्।
उवाच मेना परिरभ्य वक्षसा
निवारयन्ती महतो मुनिव्रतात् ॥३॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

टीका :—निशम्येति। मेना मेनका च गिरीशप्रतिसक्तमानसां हरासक्तचित्तां तपसे तपश्चरणाय कृतोद्यमां सुतां निशम्य श्रुत्वा एनां पार्वतीं वक्षसा परिरभ्य आलिङ्ग्य महतः मुनिव्रतात् तपसः निवारयन्ती उवाच। मुनिव्रतादित्यत्र यद्यपि मुनिव्रतस्थमेनकाया अनीप्सितत्वात् 'वारणार्थानामीप्सितः' इति नापादानत्वं तथापि कृतोद्यमामिति मानसप्रवेशोक्तत्वात् 'ध्रुवमपायेऽपादानम्' इति अपादानत्वमेव स्यात्। यथाह भाष्यकारः—'यच्च मिथ्या संप्राप्य निवर्तते तच्च ध्रुवमपायेऽपादानम् इति प्रसिद्धम्' ॥इति॥

अन्वय :—मेना च गिरीशप्रतिसक्तमानसाम् एनां सुतां तपसे कृतोद्यमां निशम्य वक्षसा परिरभ्य महतः मुनिव्रतात् निवारयन्ती उवाच।

टिप्पणी :—मेना हिमालय की स्त्री तथा पार्वती की माता का नाम। उन्हें मेनका भी कहते हैं। गिरीशप्रतिसक्तमानसाम्—गिरीश—(गिरि+ईश) गिरेः ईशः—पर्वत का राजा यानी शिव। "गिरीशो मृडः" इत्यमरः। प्रतिसक्त (प्रति+सञ्ज्+क्त) अनुरक्त—प्रेम करने वाला; गिरीशे प्रतिसक्तं मानसं यस्याः सा, जिसका मन शिव जी में लगा था। एनाम्—इमाम् "द्वितीयाटौस्स्वेनः" पाणिनि २.४.३४ से विकल्प करके इदम् व एतद् के स्थान में कर्म, व करण कारक के एक वचन में एन हो जाता है और अन्वादेश में सम्बन्ध तथा अधिकरणकारक के द्विवचन में भी एन आदेश हो जाता है। तपसे—तपस्या के वास्ते। चतुर्थी का एक वचन। "क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः" पाणिनि २. ३. १४ सूत्र से तपसे का प्रयोग हुआ। यहाँ तपसे का अर्थ है तपः कर्तुम्। कृतोद्यमाम्—कृतः उद्यमो यया सा तां कृतोद्यमां, जिसने तपस्या करने को सोच लिया था। निशम्य—आकर्ण्य, सुनकर। वक्षसा—छाती से। वक्षः, वक्षसी, वक्षांसि।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वक्ष: वक्षसी, वक्षांसि । परिरभ्य—(परि+रभ्+ल्यप्) आलिङ्ग्य—आलिङ्गन करके; छाती से लगाकर । परि उपसर्ग के साथ रभ् धातु का अर्थ छाती से लगाने का होता है और आ पूर्वक रभ् धातु का अर्थ है प्रारम्भ करना । मुनिव्रतात्—मुने: व्रतात् मुनियों के व्रत से अर्थात् तपस्या से । "वारणार्थानामीप्सित:" पाणिनि १. ४. २७ से यहाँ पर पञ्चमी होनी चाहिये थी । जिससे कोई निवारण किया जाता है उसमें पञ्चमी होती है, परन्तु मल्लिनाथ के अनुसार तपस्या ईप्सित नहीं थी, अत: यह नियम न लगकर "ध्रुवमपायेऽपादानम्" पा० १. ४. २४ से पञ्चमी हुई । निवारयन्ती—(नि+वृ+णिच्+शतृ+ङीप्) मना करती हुई । उवाच—कहा । ब्रू या वच् का लिट् (प्र० पु० ए० व०) । कहीं पर गिरीशप्रतिसक्त के बजाय गिरीशं प्रतिसक्त पाठ है ।

वाच्य परिवर्तन :—मेनया गिरीशप्रतिसक्तमानसामेनां सुतां तपसे कृतोद्यमां निशम्य वक्षसा परिरभ्य महतो मुनिव्रतात् निवारयन्त्या ऊचे ॥३॥

अनुवाद :—मेना, महादेव में आसक्त चित्त वाली उस (अपनी) पुत्री को तप करने को उद्यत सुन कर, (उसे) छाती से लगा कर कठिन तप (करने) से रोकती हुई बोली ॥३॥

संस्कृत में भावार्थ :—यदा हि पार्वत्या: जननी मेनाश्रृणोत् यन्महादेवेऽत्यन्तमनुरक्ता पार्वती तपस्यया तमनुनेतुं कृतनिश्चया तदा सा महद्दु:खमवाप, पार्वतीं च स्वोरसालिङ्ग्य तपोविषयकं निश्चयं त्यक्तुमुपदिदेश ॥६॥

मनीषिता: सन्ति गृहेषु देवता:
तप: क वत्से क च तावकं वपु: ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं
शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणः ॥४॥

टीका :—सामान्यनिषेधमुक्त्वा विशेषनिषेधमाह। मनीषिता इति। हे वत्से ! मनस ईषिता इष्टाः मनीषिताः। शकन्ध्वादित्वात् साधुः। देवताः शच्यादयः गृहेषु सन्ति। त्वं ता आराधयेति शेषः। तपः क्व। तवेदं तावकम्। युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च इत्यण प्रत्ययः। तवकममकावेकवचने, इति तवकादेशः। वपुः च क्व। तथा हि पेलवं मृदुलं शिरीषपुष्पं भ्रमरस्य भृङ्गस्य पदं पदस्थितिं सहेत। पतत्रिणः पुनः पक्षिणस्तु पदम् न सहेत। अतिसौकुमार्याद्दिव्योपभोग-योग्यं ते वपुर्न दारुणतपःक्षममित्यर्थः। अत्र दृष्टान्तालङ्कारः।

अन्वय :—वत्से, मनीषिताः देवताः गृहेषु सन्ति, तपः क्व, तावकं वपुश्च क्व ? पेलवं शिरीषपुष्पं भ्रमरस्य पदं सहेत, पतत्रिणः पुनः न।

टिप्पणी :—मनीषिता मनसः ईषिताः मनीषिताः, चाहा हुआ, जिस वस्तु को चाहता है। ईष् "गतिहिंसादर्शनेषु" (देखना) धातु से क्त प्रत्यय लगाने पर प्र० पु० ब० व० ईषिताः बना। यहाँ पर मनस् तथा ईषित से समास बना है। "शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्" सूत्र से यहाँ पर "मनस्" का अस् आगे वाले शब्द में लुप्त हो गया। इस प्रकार मनस्+ईषिताः का समास होने पर मनीषिताः शब्द बना। किसी किसी के मत के अनुसार समास इस प्रकार किया जाता है। मनीषा (धारणा) संजाता येषु ते; मनीषा +इतच्। इस दशा में "तदस्य संजातं तारकादिभ्यः इतच्" पा० ५. २. ३६ के अनुसार मनीषा में इतच् प्रत्यय जोड़ा गया। तारका तथा अन्य शब्दों में इतच् जोड़ा जाता है। प्राप्त अथवा होने के

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अर्थ में यह प्रत्यय लगता है। देवता:—प्रतिमारूपेण वर्तमाना: सौभाग्यप्रदा इन्द्राण्याद्या: अर्थात् इन्द्राणी आदि देवियों की मूर्ति जो भाग्य को देने वाली हैं। मेना के कहने का अभिप्राय यह है कि शिव को प्रसन्न करने के बजाय पार्वती घर में ही इन देवताओं की पूजा करें। क्व—कहाँ। किम् में अत् जोड़ने से क्व बनता है। "किमोऽत्" पा० ५. ३. १२ से। तथा "क्वाति" ७. २. १०५ से किम् को क में बदल देते हैं।

दो क्व शब्दों से महान् अन्तर प्रकट होता है अर्थात् कहाँ यह, कहाँ वह ? एक दूसरे में कितना अन्तर है। क्व का दो बार प्रयोग होने से दोनों वस्तुओं का महान् अन्तर प्रकट होता है। देखिये; 'क्व सूर्यप्रभवो वंश: क्व चाल्पविषया मति:'; रघुवंशम् १—२ 'क्व भूपतीनां चरितं क्व जन्तव:' किरातार्जुनीयम् १. ६। तावकम्—त्वदीयम्—तुम्हारा। तव इदम् तावकम्। पहले तो "युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च" पा० ४. ३. १ से युष्मद् शब्द में अण् प्रत्यय लगा (युष्मद्+अण्)। तब "तवकममकावेकवचने" पा० ४. ३. ३ से इसके स्थान में तवक हो गया (तवक्+अण्) तावकम्। जब अण् के बजाय खञ् प्रत्यय लगता है तब दूसरा वैकल्पिक रूप तावकीन होता है। इस प्रकार अस्मद् से मामकम् व मामकीनम् रूप बना। वपु:—शरीर। इसका रूप वपु:, वपुषी, वपूंषि, वपु:, वपुषी, वपूंषि, वपुषा इत्यादि चलता है। पेलवम्—मृदु, कोमल। शिरीषपुष्पम्—शिरीष का फूल (सिरस हिन्दी)। यह अपनी कोमलता के वास्ते प्रसिद्ध है और प्राय: उपमान के तौर पर इसका प्रयोग होता है। पद—पादन्यासम्—पैर का रखना। सहेत—सहे (सह सकता है "सह" धातु) का विधिलिङ्। यह आत्मनेपदी धातु है। पतत्रिण:—(पतत्र+इनि:) पतन्तं त्रायन्ते इति पतत्राणि। पत्राणि का अर्थ है "पंखा", डैना क्योंकि ये (पंख)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पक्षियों को गिरने से बचाते हैं। पतत्राणि सन्ति येषां ते पतत्रिणः पक्षिणः चिड़ियाँ (जिनके पङ्ख होते हैं)। "अत इनिठनौ" पा० ५. २. १५ से इनि प्रत्यय लगा। इस श्लोक में दृष्टान्त अलङ्कार का अच्छा उदाहरण है। इसकी परिभाषा है "दृष्टान्तस्तु स्वधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्" साहित्यदर्पण।

वाच्य परिवर्तनः—वत्से ! मनीषिताभिः देवताभिः गृहेषु भूयते; तपसा क्व, तावकेन वपुषा च क्व (भूयते) ? पेलवेन शिरीषपुष्पेण भ्रमरस्य पदं सह्येत पतत्रिणः पुनः न ॥४॥

अनुवाद :—पुत्रि, मन से चाहे जाने योग्य देवता हमारे घर में हैं; कहाँ तो यह (कठोर) तप और कहाँ तुम्हारा (कोमल) शरीर ! सिरस का कोमल फूल भौंरे के पैर (रखने) को तो सह सकता है परन्तु पक्षी के नहीं ॥४॥

संस्कृत में भावार्थ :—व्रताचरणान्निवारयन्ती मेनाकथयत् बाले पार्वति, अस्माकं वेश्मन्येवानेका इष्टा इन्द्राण्याद्याः सौभाग्यप्रदाः देवतास्सन्ति; तासामाराधनयैव तेऽभीष्टप्राप्तिर्भवितुं शक्या, अतस्त्वं ता आराधय। तव कायस्त्वतिकोमलः तपोऽनुष्ठानञ्चातिकठिनम्। न ते देहस्तत्सोढुं क्षमः। तथा हि—कोमलं शिरीषस्य कुसुमं भ्रमरस्य पदस्थितिं भारं वा सोढुं शक्नोति, महतः पक्षिणो भारं तु कथमपि न। तव शरीरं शिरीषपुष्पतुल्यं तपस्तु महापक्षिभारतुल्यं, अतस्त्वं तपः-करणाद्विरम ॥४॥

इति ध्रुवेच्छामनुशासती सुतां
शशाक मेना न नियन्तुमुद्यमात्।
क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः
पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत् ॥५॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

टीका :—इतीति। इति एवम् अनुशासती उपदिशन्ती मेना ध्रुवेच्छां स्थिरव्यवसायां सुतां पार्वतीम् उद्यमात् उद्योगात्तपोलक्षणात् नियन्तुं निवारयितुं न शशाक समर्था नाभूत्। तथा हि। ईप्सितार्थ-स्थिरनिश्चयम् ईप्सितार्थे इष्टार्थे स्थिरं निश्चयं मनः निम्नाभिमुखं पयः च कः प्रतीपयेत् प्रतिकूलयेत्। प्रतिनिवर्तयेदित्यर्थः। निम्न-प्रवणं पयः इवेष्टार्थाभिनिविष्टं मनो दुर्वारमिति भावः। अत्र दीप-कानुप्राणितः अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः।

अन्वय :—इति अनुशासती मेना ध्रुवेच्छां सुताम् उद्यमाद् नियन्तुं न शशाक। ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः निम्नाभिमुखं पयश्च कः प्रतीपयेत्।

इति—इस प्रकार। जैसा कि उपरोक्त दो श्लोकों में कहा गया है। अनुशासती—उपदेश देती हुई। (अनु + शास् + लुङ् + शतृ + ङीप्) शास्ति (लट्), शशास (लिट्), अशिषत् (लुङ्)। ध्रुवेच्छाम्—ध्रुवा (निश्चला) इच्छा यस्याः सा तां जिसका संकल्प निश्चल था। उद्यमात्—विचार से अथवा उस प्रयत्न से (तपस्या करने से)। नियन्तुम् (नि + यम् + तुमुन्) रोकने के लिये। तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्" पा० ३. ३. १। न शशाक—न समर्थ हो सकी। "शक्" धातु का लिट्। शक्नोति (लट्) शक्ष्यति (लृट्) अशकत् (लुङ्)। ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयम्=ईप्सित—चाहा हुआ (आप् + सन् + क्त) आप् (पाना) का सन्नन्त रूप। आप् के आ को ई हो जाता है। उसका यह सूत्र है "आप् ज्ञपि ऋधाम् ईत्" पा० ७. ४. ५५। ईप्सिते अर्थे स्थिरः निश्चयः यस्य तत्, जिसकी इच्छा चाही हुई वस्तु के वास्ते दृढ़ है। यह मन का विशेषण है। निम्नाभिमुखम्। निम्ने अभिमुखं अथवा निम्नस्य अभिमुखम्, नीचे की ओर बहता हुआ। पयः—जल। प्रतीपयेत्—विपरीतं कर्तुं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शक्नुयात्—पलटा जा सकता है। 'प्रतीपय्' का विधिलिङ् है। प्रतीप शब्द से "प्रतीपय्" धातु बनी (नामधातु है)। प्रतीप (प्रति+आप्+प) "द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत्" पा० ३. ६ ९७ इस सूत्र से आप् के आ का ई हो गया। इसी प्रकार द्वीप, अन्तरीप, समीप आदि सब बने। कहीं-कहीं ध्रुवेच्छां की जगह स्थिरेच्छां पाठ है।

इस श्लोक में मुख्य अलङ्कार अर्थान्तरन्यास है। यह अलङ्कार वहाँ होता है जहाँ पर सामान्य बात कह कर विशेष बात की पुष्टि करते हैं। पहले दो चरणों में विशेष बात कही है और पिछले दो चरणों में सामान्य बात कही है। कालिदास इस अलङ्कार का प्रयोग बहुत करते हैं।

वाच्य परिवर्तन :—इति अनुशासत्या मेनया ध्रुवेच्छा सुता उद्यमाद् नियन्तुं न शेके। ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनो निम्नाभिमुखं पयश्च केन प्रतीप्येयाताम्? ॥५॥

अनुवाद :—इस प्रकार उपदेश देने वाली मेना स्थिर इच्छा वाली (अपनी) पुत्री को (उसके) निश्चय से न हटा सकी। चाही हुई वस्तु के लिये दृढ़ निश्चय वाले मन को और नीचे की ओर जाते हुए जल को कौन पलट सकता है ॥५॥

संस्कृत में भावार्थ :—मेना पार्वतीं निवारयितुमत्यन्तमयतत विविधप्रकारेण च तामुपदिदेश, परन्तु स्वोद्देश्ये सफलतां नाप्नोत् यतो गौरी तपोऽनुष्ठाने शिवानुनये च कृतनिश्चयासीत्। तथा हि—प्राप्तव्ये वस्तुनि गूढमभिनिविष्टं मनो नीचैर्गच्छज्जलं वा विरुद्धं कर्त्तुं प्रवाहयितुं वा न शक्यते ॥५॥

कदाचिदासन्नसखीमुखेन सा
मनोरथज्ञं पितरं मनस्विनी।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अयाचतारण्यनिवासमात्मनः
फलोदयान्ताय तपःसमाधये ॥६॥

टीका :—कदाचिदिति। अथ कदाचित् मनस्विनी स्थिरचित्ता सा पार्वती मनोरथज्ञम् अभिलाषज्ञं पितरं हिमवन्तम् आसन्नसखीमुखेन आसन्नसखी आप्तसखी सैव मुखम् उपायः। 'मुखम् निःसरणे वक्त्रे प्रारम्भोपाययोरपि' इति विश्वः। तेन। फलोदयान्ताय फलोदयः फलोत्पत्तिः अन्तोऽवधिर्यस्य तस्मै तपः समाधये तपोनियमार्थम् आत्मनः स्वस्य अरण्यनिवासं वनवासम् अयाचत। 'दुह्याच्'-इत्यादिना द्विकर्मकत्वम्।

अन्वय :—कदाचित् मनस्विनी सा मनोरथज्ञं पितरम् आसन्नसखीमुखेन फलोदयान्ताय तपःसमाधये आत्मनः अरण्यनिवासम् अयाचत ॥६॥

टिप्पणी :—कदाचित्—एक बार, किसी अवसर पर। मनस्विनी--(मनस् + विनि + ङीप्) प्रशस्तं मनः विद्यते अस्याः सा। बुद्धिमती; जिसे इस बात का ज्ञान हो कि कब और कैसे कोई प्रार्थना की जाती है। अथवा स्थिर चित्त वाली; अर्थात् वह जो जिस किसी भी तरह से हो, अपना उद्दश्य पूरा करने को तत्पर थी —देखिये "महाकार्ये कृतोद्योगो विघ्नैराहतमानसः। प्रारब्धं न त्यजति यः स मनस्वीति कथ्यते"। "अस्मायामेधा स्रजो विनिः" पा० ५. २. १२१ इस सूत्र से विनि प्रत्यय लगा तो मनस्वी बना। स्त्रीलिङ्ग में मनस्विनी हो गया। मनोरथज्ञम् (मनोरथ + ज्ञा + कः) जानाति इति ज्ञः। मनोरथस्य ज्ञः इति मनोरथज्ञः तं मनोरथज्ञम् , जो उसके मनोरथ को जानता था। "इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः" पा० ३. १. १३५ सूत्र से ज्ञा धातु में क प्रत्यय लगा कर ज्ञः बना। पितरम्—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हिमवन्तम्--अपने पिता हिमवान् को। यह 'अयाचत' का गौण कर्म है। याच् धातु द्विकर्मक होती है। आसन्नसखीमुखेन--(आ +सद्+क्तः) आसन्नायाः सख्याः मुखेन (तत्पु०) वा आसन्ना चासौ सखी च इति आसन्नसखी। आसन्नसखी एव मुखम् (उपाय) तेन (कर्मधारय) विश्वासपात्र सखी के द्वारा। आसन्नसखी का शाब्दिक अर्थ है समीप में बैठी हुई सखी परन्तु यहाँ पर अर्थ है विश्वासपात्र सखी। मुख--साधना, उपाय; देखिये "मुखं निःसरणे वक्त्रे प्रारम्भोपाययोरपि" इति विश्वः। फलोदयान्ताय—फलस्य उदयः प्राप्तिः यस्य तस्मै—जो फलप्राप्तिपर्यन्त जारी रहेगा। तपःसमाधये—तपसः समाधिः तपःसमाधिः तस्मै तपःसमाधये तपोनियमार्थम् कठोर तपस्या करने के वास्ते। वा तपसि समाधिः तपःसमाधिः तस्मै—ध्यान के वास्ते। प्रथम समास के साथ समाधि का अर्थ नियम है; दूसरे समास में समाधि का अर्थ ध्यान है। "तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या" से यहाँ पर चतुर्थी हुई है। अरण्यनिवासम् --अरण्ये निवासम्—जङ्गल में निवास। यह "अयाचत" का प्रधान कर्म है। अयाचत–माँगा, यह याच् धातु के लङ् का रूप है। याच् के दो कर्म हैं "दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजि-मन्थ्मुषाम् कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्"।

वाच्य परिवर्तन :--कदाचिन्मनस्विन्या तया मनोरथज्ञः पिता आसन्नसखीमुखेन फलोदयान्ताय तपःसमाधये आत्मनोऽरण्यनिवासम् अयाच्यत ॥६॥

अनुवाद :—एक बार दृढ़ निश्चय वाली उस (पार्वती) ने एक अभिन्नहृदया सहेली के द्वारा (अपने) पिता जी से, जो उसकी इच्छा से परिचित थे, फलप्राप्ति पर्यन्त तप करने के लिये अपने आप वन में रहने की आज्ञा माँगी ॥६॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

संस्कृत में भावार्थ :—गौर्याः पिता तस्या अभिप्रायमजानात् परं सा तदाज्ञां विना वनं गन्तुमनुचितमिति निश्चित्य स्वपितुरनुज्ञां स्वयमेव ग्रहीतुमशक्नुवती निजाभिन्नहृदयसखीद्वारेणाभीष्टलाभपर्यन्तं तपश्चरितुं वने वसतिं स्वपितरं ययाचे ॥६॥

अथानुरूपाभिनिवेशतोषिणा
कृताभ्यनुज्ञा गुरुणा गरीयसा ।
प्रजासु पश्चात्प्रथितं तदाख्यया
जगाम गौरी शिखरं शिखण्डिमत् ॥७॥

टीका :—अथेति । अथ गौरी अनुरूपाभिनिवेशतोषिणा अनुरूपेण योग्येन अभिनिवेशेन आग्रहेण तुष्यतीति तथोक्तेन गरीयसा पूज्यतमेन गुरुणा पित्रा कृताभ्यनुज्ञा तपः कुरु इति कृतानुमतिः सती पश्चात् तपः सिद्धयुत्तरकालं प्रजासु जनेषु तदाख्यया तस्या गौर्याः संज्ञया प्रथितम् । गौरीशिखरमिति प्रसिद्धमित्यर्थः शिखण्डिमत् । न तु हिंस्रप्राणिप्रचुरमिति भावः शिखरं शृङ्गम् जगाम ययौ ॥

अन्वय :—अथ गौरी अनुरूपाभिनिवेशतोषिणा गरीयसा गुरुणा कृताभ्यनुज्ञा पश्चात् प्रजासु तदाख्यया प्रथितं शिखण्डिमत् शिखरं जगाम ॥७॥

टिप्पणी :—गौरी—पार्वती । वे अपनी सुन्दरता के कारण इस नाम से प्रसिद्ध थीं । अनुरूपाभिनिवेशतोषिणा—अनुरूपः—रूपस्य योग्यः सदृशो वा अनुरूपः (अनुकूलः) रूप के योग्य । अभिनिवेशः (अभि + नि + विश् + घञ्) निश्चय; दृढ़ विचार । तोषिणा—संतुष्ट होने वाले से, तोषिन् की तृतीया का एकवचन । (तुष् + णिनिः) अनुरूपेण अभिनिवेशेन तुष्यति इति अनुरूपाभिनिवेशतोषी तेन—जो उसके योग्य निश्चय से संतुष्ट हो गया था ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गरीयसा अतिशयेन गुरुः गरीयान् तेन; अत्यन्त पूज्य । गरीयस् शब्द की तृतीया का एक वचन । (गुरु + ईयसुन्) गरीयान्—गरीयांसौ — गरीयांसः । गरीयांसम्, गरीयांसौ —गरीयसः । इत्यादि रूप चलेंगे । गुरुणा—पित्रा —पिता से । देखिये—"गुरुः गीष्पति पित्राद्यौ" इत्यमरः । कृताभ्यनुज्ञा—कृता (दत्ता) अभ्यनुज्ञा (अनुमतिः) यस्यै यस्याः वा सा - जिसको आज्ञा अथवा अनुमति दे दी गई थी । अनुज्ञा (अनु + ज्ञा + अङ्) आज्ञा । पश्चात्—पीछे; जब पार्वती ने अपनी तपस्या खतम कर ली । प्रजासु—जनेषु—लोगों में । तदाख्यया—तस्याः (गौर्याः) आख्यया (संज्ञया) तदाख्यया—उसके नाम पर । गौरी-शिखर—हिमालय की एक चोटी का नाम । आख्या =चक्षिङ् + अ = "चक्षिङः ख्याञ्" से चक्षिङ् को ख्याञ् हो गया । प्रथितम्—(प्रथ + क्तः) प्रसिद्धम्, विख्यात; मशहूर । शिखण्डिमत्—शिखण्डिन् (शिखण्डः + इनिः) शिखण्डः शिखा अस्यास्तीति—जिसके चोटी हो; चोटी वाला; अर्थात् मोर । इससे प्रकट होता है कि वहाँ विषैले साँप तथा अन्य भयंकर जानवर नहीं थे । शिखण्डिमत् —(शिखण्डि + मतुप्) शिखण्डिनः मयूराः सन्ति अस्मिन् इति । "तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्" पा० ५.२. ९४ से मतुप् प्रत्यय हुआ । शिखरम्—चोटी । जगाम—गता—गई, गम् का लिट् प्र० पु० ए० व० ।

देखिये—गौरी विजयया सख्या जयया च सुनेत्रया । साकं सखीभ्याम् सुसुखी सा गौरीशिखरं ययौ । चकार वसतिं यस्माद् गौरीशिखरमुच्यते -शिवपुराण ।

वाच्य परिवर्तन :—अथ गौर्या अनुरूपाभिनिवेशतोषिणा गरीयसा गुरुणा कृताभ्यनुज्ञया पश्चात् प्रजासु तदाख्यया प्रथितं शिखण्डिमत् शिखरं जग्मे ॥७॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अनुवाद :—तदनन्तर (उसके) योग्य निश्चय से सन्तुष्ट हुए, पूज्य पिता से आज्ञा दी गई हुई गौरी मोरों से युक्त (हिमालय की एक) चोटी पर गई, जो कि बाद में जनता में उसी के नाम से प्रसिद्ध हुई ॥ ७ ॥

संस्कृत में भावार्थ :—पार्वत्याः पिता स्वदुहितुर्मनस्तद्-योग्येऽर्थे लग्नं ज्ञात्वा सन्तुष्ट आसीत्, अतस्तेन सा वनं गन्तुमनुज्ञाता। साऽपि पितुरनुमतिं संप्राप्य मयूराद्यहिंस्रप्राणिसमन्वितं शान्तमेकम् हिमवतः शृङ्गं तपः कर्त्तुं प्रययौ, यच्च शिखरम् तपोऽवसाने तस्याः नाम्नैव 'गौरीशिखरम्' इति प्रसिद्धम् जातम् ॥ ७ ॥

विमुच्य सा हारमहार्यनिश्चया
विलोलयष्टिप्रविलुप्तचन्दनम् ।
बबन्ध बालारुणबभ्रु वल्कलं
पयोधरोत्सेधविशीर्णसंहति ॥ ८ ॥

टीका :—विमुच्येति। अहार्यनिश्चया अनिवार्यनिश्चया सा गौरी विलोलयष्टिप्रविलुप्तचन्दनम् विलोलाभिः चलाभिः यष्टिभिः प्रतिसरैः प्रविलुप्तं प्रमृष्टं चन्दनम् स्तनान्तरगतं येन तं तथोक्तं हारं मुक्तावलीं विमुच्य विहाय बालारुणबभ्रु बालार्कपिङ्गलं पयोधरोत्सेधविशीर्णसंहति पयोधरयोः स्तनयोः उत्सेधेन उच्छ्रायेण विशीर्णा विघटिता संहतिः अवयवसंश्लेषो यस्य तत्तथोक्तम् वल्कलम् कण्ठलम्बितस्तनोत्तरीय-भूतम् बबन्ध। धारयामासेत्यर्थः।

अन्वय :—अहार्यनिश्चया सा विलोलयष्टिप्रविलुप्तचन्दनम् हारम् विमुच्य बालारुणबभ्रु पयोधरोत्सेधविशीर्णसंहति वल्कलम् बबन्ध ॥ ८ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अहार्यनिश्चया—न हार्यः (त्याज्यः) निश्चयो यस्याः सा—अटल निश्चय वाली; जिसका निश्चय टल नहीं सकता था। हार्य—(हृ + ण्यत्) जो हटाया या त्यागा जा सकता है। विलोलयष्टिप्रविलुप्त-चन्दनम्। यष्टि—मोती की या माला की लड़, हार की लड़ियाँ। प्रविलुप्त—(प्र + वि + लुप् + क्तः)पोंछ दिया गया; पुँछा हुआ। बिलोलाभिः यष्टिभिः प्रविलुप्तम् चन्दनम् येन तम्—हिलती लड़ियों से चन्दन को पोंछने वाला, जिसकी (हार की) हिलती हुई लड़ियों से चन्दन पुछ गया है। यह हार का विशेषण है। विमुच्य—(वि + मुच् + ल्यप्) त्यक्त्वा—छोड़कर। पार्वती ने हार को भी त्याग दिया। इससे प्रकट होता है कि वह तपस्वियों के अनुकूल साधारण तथा क्लेशमय जीवन व्यतीत करना चाहती थीं। बालारुणबभ्रु—बालः (नवोदितः) चासौ अरुणः (सूर्यः) बालारुणः स इव बभ्रु पिङ्गलम्—जो प्रातःकालीन सूर्य के समान पिङ्गल वर्ण का (गहरा भूरा) था। बभ्रु—गहरा भूरा। यह वल्कलम् का विशेषण है। अतः बालारुणबभ्रु रूप (कर्म ए० व०) हुआ। पयोधरोत्सेध-विशीर्ण-संहति—धरतीति धरः (धृ + अच्) पयसः (दुग्धस्य) धरः पयोधरः—छाती। उत्सेध—(उत् + सिध् + घञ्) ऊँचाई। विशीर्ण—(वि + शृ + क्तः) विघटित—टूटा हुआ, विरल, छिन्नभिन्न। संहति अवयवसंश्लेषः—अङ्ग (वल्कल का गाढ़ापन)। पयोधरयोः उत्सेधेन विशीर्णा संहतिः यस्य तत् पयोधरोत्सेधविशीर्णसंहति वल्कलम्। यह वल्कलम् का विशेषण है—स्तनों की ऊँचाई से जिसका अवयव छिन्न-भिन्न हो गया था (ऐसा वल्कल)। वल्कलम्—पेड़ की छाल। बबन्ध—बाँध लिया; पहन लिया। बन्ध धातु के लिट् का रूप।

इसमें तथा आगे के तीन श्लोकों में कवि यह वर्णन करता है कि पार्वती ने किस प्रकार एक के बाद दूसरी चीजों को, जो तपस्वियों के वास्ते आवश्यक हैं, धारण किया।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वाच्य परिवर्तन :—अहार्यनिश्चयया तया विलोलयष्टिप्रविलुप्तचन्दनम् हारम् विमुच्य बालारुणबभ्रु पयोधरोत्सेधविशीर्णसंहति वल्कलम् बबन्धे ॥८॥

अनुवाद :—उस अटल निश्चय वाली (पार्वती) ने हिलती हुई लड़ों से (छाती में लगे) चन्दन को पोंछने वाले हार को उतार कर, प्रात:कालीन सूर्य के समान कपिश, स्तनों की ऊँचाई से छिन्न अवयव वाली (तनी हुई) पेड़ों की छाल, धारण कर ली ॥८॥

संस्कृत में भावार्थ :—निश्चलनिश्चया पार्वती भूषणानि महार्घवस्त्राणि च परित्यज्य तपोऽनुकूलम् वेषम् परिधत्ते स्म। आदौ तया मौक्तिको हार: परित्यक्त:, यस्तस्या: स्तनयोरन्तरालेऽलम्बत यश्च तयोश्चन्दनलेपं प्रामार्जीत्। शरीराच्छादनाय चोद्यत्सूर्यपिङ्गलम् वल्कलम् धृतम्, यस्यावयवानाम् कुचकाठिन्याच्छैथिल्यं जातम् ॥८॥

यथा प्रसिद्धैर्मधुरं शिरोरुहै:
जटाभिरप्येवमभूत्तदाननम्।
न षट्पदश्रेणिभिरेव पङ्कजं
सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते ॥ ९ ॥

टीका :—यथेति। तस्या: देव्या: आननम् तदाननम् प्रसिद्धै: भूषितै:। 'प्रसिद्धौ ख्यातभूषितौ' इत्यमर:। रोहन्तीति रुहा:। 'इगुपधज्ञाप्रीकिर: क:' इति 'क' प्रत्यय: शिरसि रुहा: तै: शिरोरुहै: मूर्धजै: यथा मधुरम् प्रियम् अभूत्। "स्वादु प्रियौ तु मधुरौ' इत्यमर:। जटाभि: अपि एवम् मधुरमभूत्। तथा हि पङ्कजं पद्मम् षट्पदश्रेणिभि: भ्रमरपङ्क्तिभि: एव न किन्तु सह शैवला-संगेन सवलासङ्गमपि। 'तेन सहेति तुल्ययोगे' इति बहुव्रीहि:। प्रकाशते। शैवलेनापि शोभत एवेत्यर्थ: ॥ ९ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्वय :—तदाननम् प्रसिद्धैः शिरोरुहैः यथा मधुरम् अभूत्, जटाभिः अपि एवम् (अभूत्) । पङ्कजम् षटपदश्रेणिभिः एव न प्रकाशते (किन्तु) सशैवलासङ्गम् अपि (प्रकाशते) ।। ६ ।।

तदाननम्—तस्याः आननम्—उसका मुँह । प्रसिद्धैः-सुसज्जितैः, अलंकृतैः, सजे हुए । देखिये "प्रसिद्धौ ख्यातभूषितौ" इत्यमरः । शिरोरुहैः रोहन्ति इति रुहाः (रुह् +क्त) उगने वाले । शिरसि रुहाः शिरोरुहाः (केशाः), सिर पर उगने वाले अर्थात् बाल । "इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः" पा० ३. १. १३५ से क प्रत्यय हुआ । मधुरम्—प्रियम्, सुन्दरम्—प्रिय; सुन्दर; अच्छा लगने वाला "स्वादुप्रियौ तु मधुरौ" इत्यमरः । अभूत्—था; भूधातु का लुङ् (प्र० पु० ए० व०) । जटाभि :—जटाओं से । जटा तथा साधारण बाल में यह अन्तर है कि बालों को लोग कंघी करते हैं, तेल लगाते हैं और उन्हें सजाते हैं ताकि मुँह की शोभा बढ़े, परन्तु जटाओं में कोई सजावट नहीं की जाती, वे अपने आपसे स्वाभाविक प्रकार से बढ़ती हैं । अपि—भी । कवि के कहने का भाव यह है कि पार्वती का चेहरा तो सुन्दर था ही, वह जटाओं से भी वैसा ही सुन्दर लगता था जितना कि बालों से । भद्दी चीजें भी उस वस्तु की सुन्दरता को नष्ट नहीं कर सकतीं जो सचमुच में सुन्दर है । श्लोक के बाकी दो चरणों से इसी बात की पुष्टि होती है । पङ्कजम् –(पङ्क+ जन् + डः) पङ्के पङ्कात् वा जायते—कमल । षटपदश्रेणिभिः— षट् पदानि येषां ते षटपदाः (भ्रमराः) तेषां श्रेणिभिः पङ्क्तिभिः भ्रमरसमूह; भौंरों का समूह । "द्विरेफपुष्पलिट् भृङ्ग षटपदभ्रमरालयः" इत्यमरः । प्रकाशते—शोभा देता है या चमकता है । काश् (चमकना) का वर्तमान का रूप प्रकाशते है । सशैवलासङ्गम् सशैवलानाम् जलनीलिकानाम् (आसङ्गः साहचर्यम्) शैवलासङ्गः शैवला-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सङ्गेन सह वर्तमानम् सशैवलासङ्गम्—काई का संयोग होने से । आसङ्ग—साथ । यहाँ बहुव्रीहि समास है । "तेन सहेति तुल्ययोगे" पा० २. २. २८ । जहाँ पर तुल्ययोगे (किसी काम में बराबर भाग) दिखाया जाता है वहाँ पर सह का संज्ञा के साथ तृतीया विभक्ति में बहुव्रीहि समास होता है । सह का स हो जाता है । इसी भाव के सादृश्य के वास्ते देखिये—सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम् मलिनमपि हिमांशोः लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति । इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी किमिव हि मधुराणाम् मण्डनम् नाकृतीनाम्—शाकुन्तलम् १. १८ ।

वाच्य परिवर्तन :—तदाननेन प्रसिद्धैः शिरोरुहैः यथा मधुरेण अभावि, जटाभिरप्येवम् (अभावि) । पङ्कजेन षटपदश्रेणिभिरेव न प्रकाश्यते (किन्तु) सशैवलासंगेनापि (प्रकाश्यते) । १ ॥

अनुवाद :—उसका मुख जिस प्रकार सजे हुए केशों से सुन्दर लगता था, उसी प्रकार जटाओं से भी (लगता था) । कमल केवल भौंरों की पङ्क्तियों से ही नहीं, अपितु काई के साथ भी शोभायमान लगता है ॥ ६ ॥

संस्कृत में भावार्थ :—पूर्वं पार्वती भूषितान् केशान् दधार यैस्तस्या आननमत्यन्तमशोभत । इदानीम् तु तया जटाः धृताः । परम् आभिर्जटाभिस्तस्याः मुखस्य शोभा न्यूना न जाता, अपि तु पूर्ववदेवाभासत । तथाहि कमलं केवलं भ्रमराणां पङ्क्तिभिरेव न शोभते अपितु शैवालयोगेऽपि तथैव सुन्दरम् भवति । रूपवन्त आकाराः सर्वथैव शोभाकरा इति तात्पर्यम् ॥ ६ ॥

प्रतिक्षणं सा कृतरोमविक्रियां
व्रताय मौञ्जीं त्रिगुणां बभार याम् ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अकारि तत्पूर्वनिबद्धया तया
सरागमस्या रसनागुणास्पदम् ॥१०॥

टीका :—प्रतीति । सा देवी प्रतिक्षणम् क्षणे क्षणे कृतरोमविक्रियाम् पारुष्यात् कृतरोमाञ्चाम् त्रिगुणाम् त्रिरावृताम् याम् मौञ्जीम् मुञ्जमयीम् मेखलाम् व्रताय तपसे बभार । तत्पूर्व निबद्धया तदेव पूर्वं प्रथमम् यस्य तत्पूर्वं यथा तथा निबद्धया यथा मौञ्ज्या अस्याः देव्याः रसनागुणास्पदम् रसनागुणस्य आस्पदम् स्थानम् जघनम् । सह रागेण सरागम् सलोहितम् अकारि कृतम् सौकुमार्यातिशयादिति भावः ॥१०॥

अन्वय :—सा व्रताय प्रतिक्षणम् कृतरोमविक्रियाम् त्रिगुणाम् याम् मौञ्जीम् बभार तत्पूर्वनिबद्धया तया अस्याः रसनागुणास्पदम् सरागम् अकारि ॥१०॥

व्रताय—व्रतम् आचरितुम् व्रतार्थे वा तपस्या के लिये; व्रत के लिये। चतुर्थी के प्रयोग के लिये "तपः समाधये" पर टिप्पणी देखिये । प्रति क्षणम्—क्षणों-क्षणों प्रतिक्षणम्, प्रत्येक क्षण। वीप्सायाम् अव्ययीभावः । यहाँ पर किसी वस्तु के दोहराने के अर्थ में अव्ययीभाव समास हुआ है । कृतरोमविक्रियाम्—कृता रोम्णाम् विक्रिया यया सा ताम्—रोमाञ्चित करने वाली । रोमन्—बाल । इसका रूप इस प्रकार चलेगा—रोम—रोम्णी—रोमाणि । रोम—रोम्णी—रोमाणि । रोम्णा—रोमभ्याम्—रोमभिः । विक्रिया—विकारः—परिवर्तन, परिवर्तित या अस्वाभाविक अवस्था । त्रिगुणाम्—त्रयो गुणाः (आवृत्तयः) यस्याः ताम्—तीन लड़वाली । गुण—रस्सी; डोर । मौञ्जी—मुञ्ज्या विकारो मौञ्जी (मुञ्ज+अण्+ङीप्), मूँज (एक घास) की बनी हुई । यह एक प्रकार की करधनी थी जो ब्राह्मण को पहनने के वास्ते निर्धारित की गई थी । देखिये—मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला । क्षत्रियस्य तु मौर्वी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ज्या वैश्यस्य शणतान्तवी--मनु २. ४२। बभार—धारयामास, धारण किया, पहना। भृञ् (पहनना) के लिट् का प्र० पु० ए० व० का रूप है। तत्पूर्वनिबद्धया--तदेव पूर्वम् प्रथमम् यस्य तत् तत्पूर्वम्; तत्पूर्वम् यथा स्यात्तथा निबद्धया अथवा तदेव पूर्वम् निबद्धम् (निबन्धनम्) यस्याः सा तया जो प्रथम बार बाँधी गई। मौञ्ज्या का यह विशेषण है। निबद्ध—(नि+बन्ध+क्तः) बाँधी हुई। रसनागुणास्पदम्, रसना—मेखला--करधनी। रसनागुणाः रसानायाः गुणाः--मेखला की डोरी। आस्पदम्—स्थानम्--जगह। रसनागुणाय आस्पदम्--मेखला बाँधने की जगह अर्थात् कमर; जंघा या नितम्ब (चूतड़)। सरागम् रागेण सह (लोहितम्) लाल। अकारि—कृतम्, कर दिया गया। कृ धातु के आत्मनेपद का लुङ्।

करधनी मूँज की बनी होने के कारण बहुत खुरखुरी थी और अलावा इसके चूँकि पार्वती ने इसे प्रथम बार पहना, इससे उसकी कमर लाल हो गई।

वाच्य परिवर्तन :—तया व्रताय प्रतिक्षणम् कृतरोमविक्रिया त्रिगुणा या मौञ्जी बभ्रे, तत्पूर्वनिबद्धा सा अस्याः रसनागुणास्पदम् सरागम् अकार्षीत्॥१०॥

अनुवाद :—उसने व्रत के निमित्त प्रतिक्षण में रोमाञ्चित करने वाली, तीन लड़ की, मूँज की बनी जिस मेखला को धारण किया, पहिली बार बाँधी हुई, उसने उसकी मेखला बाँधने की जगह (कमर) को लाल कर दिया॥१०॥

संस्कृत में भावार्थ :—पूर्वं तु पार्वती कटिप्रदेशे क्षौमादिनिर्मिताम् कोमलाम् काञ्चीम् दधार, अधुना तु व्रतनियमानुसारम् तया मुञ्जतृणनिर्मिता त्रिरावृत्ता कर्कशा काञ्ची धृता। इयम् काञ्ची

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पारुष्यात् क्षणे-क्षणे तस्याः शरीरे रोमाञ्चमकरोत्, यतश्च सा तद्धारणेऽनभ्यस्तासीत्तया तस्याः कटिप्रदेशः सङ्घर्षणेन रक्तीकृतः ॥१०॥

विसृष्टरागादधरान्निवर्तितः
स्तनाङ्गरागारुणिताच्च कन्दुकात् ।
कुशाङ्कुरादानपरिक्षताङ्गुलिः
कृतोऽक्षसूत्रप्रणयी तया करः ॥११॥

टीका :—विसृष्टेति। तया देव्या विसृष्टरागात् त्यक्तलाक्षारसरञ्जनात् अधरात् अधरोष्ठात् निवर्तितः। निसृष्टरागादिति पाठे। नितराम् त्यक्तलाक्षारागात्। रागत्यागेन निष्प्रयोजनत्वादिति भावः। तथा (स्तनाङ्गरागारुणितात्) स्तनाङ्गरागेण अरुणितात् अरुणीकृतात् निवर्तितः। (कुशाङ्-कुरादानपरिक्षत.ङ्गुलिः) कुशाङ्कुराणामादानेन लवनेन परिक्षताः व्रणिताः अंगुलयो यस्य स तथोक्तः करः पाणिः अक्षसूत्रप्रणयी अक्षमालासहचरः कृतः।

अन्वय :—तया विसृष्टरागात् अधरात् स्तनाङ्गरागारुणितात् कन्दुकात् च निवर्तितः करः कुशाङ्कुरादानपरिक्षताङ्गुलिः अक्षसूत्रप्रणयी कृतः ॥११॥

विसृष्टरागात्—विसृष्ट :—(वि + सृज् + क्त) त्यक्तः – त्याग दिया गया है जो; हटाया हुआ। सृज्—बनाना; रचना करना। परन्तु वि उपसर्ग लगने से इसका अर्थ बदल जाता है। रागः (रञ्ज + घञ्) रङ्ग, रँगना। विसृष्टः रागो यस्य तस्मात्—जिसका लाल रङ्ग उड़ गया था; अथवा जिसका रँगना छोड़ दिया गया था। तपस्विनी होने के पहले पार्वती अपने ओठों को लाल रङ्ग से रँगती थी, परन्तु अब वह इन शृङ्गारों पर ध्यान नहीं देती थी। अधरात् —नीचे का ओठ। स्तनाङ्गरागारुणितात्—अङ्गरागः विलेपनम्—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शरीर में उबटन का लेप। अरुणितात्—रक्तीकृतात्—लाल हो गया है जो उससे; लाल किये हुए से। अरुण+इतच् ("तदस्य संजातम् तारकादिभ्यः इतच्" पा० ५. २. ३६) स्तनयोः अङ्गरागेण अरुणितात्—स्तन (छाती) के उबटन से लाल। कभी गेंद खेलते समय उसके स्तन से छू जाता था उससे वह गेंद पार्वती के स्तन में लगे हुए उबटन से लाल हो जाता था। कन्दुकात्—गेंद से। जिस प्रकार पार्वती ने ओठों का रँगना बन्द कर दिया था उसी प्रकार उसने गेंद खेलना भी बन्द कर दिया था। निवर्तितः—वारितः-बन्द कर दिया। अब उसके हाथ गेंद खेलने तथा ओठ रँगने से अलग हो गये। कुशाङ्कुरादानपरिक्षताङ्गुलिः—कुशस्य अंकुराणाम् आदानेन परिक्षता अङ्गुलयो यस्य सः—कुश के अंकुरों के काटने से घायल हैं अंगुलियाँ जिसकी; कुश के अंकुर काटने से घायल अंगुली वाला। अक्षसूत्रप्रणयी—(प्रणय+इनिः) अक्षाणाम् सूत्रस्य (रुद्राक्षमालायाः) प्रणयी (प्रेमवान्); अक्ष (रुद्राक्ष) की माला का प्रेमी। कृत —कर दिया गया। अब उसका हाथ रुद्राक्ष की माला का प्रेमी कर दिया गया अर्थात् तपस्विनी होने पर पार्वती ने हाथों से गेंद खेलने तथा ओठों को रँगने के बजाय उनको माला जपने में तथा कुश के अङ्कुर खोदने में लगा दिया। अब वह हाथों से माला जपने लगी और कुशा (घास) खोदने लगी।

वाच्य परिवर्तन :-सा विसृष्टरागात् अधरात् स्तनाङ्गरागारुणितात् कन्दुकात् च निवर्तितम् करम् कुशाङ्कुरादानपरिक्षताङ्गुलिम् अक्षसूत्रप्रणयिनम् च कृतवती ॥११॥

अनुवाद :-छूट गया है रँगना जिसका ऐसे ओठ (के रंगने) से तथा स्तनों के अङ्गलेप से लाल हुई गेंद (के खेलने) से निवृत्त हुए हाथ को उसने कुश के अङ्कुरों के काटने से घायल अंगुली

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वाला और रुद्राक्ष की माला से प्रेम करने वाला (जपने वाला) बना दिया ॥ ११ ॥

संस्कृत में भावार्थ :—पूर्वं तु पार्वती स्वशरीरशोभार्थम् स्वकरेणाधरे लाक्षारसादिरागलेपञ्चकार, मनोविनोदार्थञ्च कन्दुकेन चिक्रीड । तपःकाले तु तयाधररञ्जनम् कन्दुकक्रीडनञ्च परित्यक्तम् अतः स्वकरम् अनयोरप्रयुज्य तेन पूजार्थम् हरिणानां भक्षणार्थं च कुशानाम् लवनं चकार येन तस्या अङ्गुलयः व्रणयुक्ताः जाताः, अपरञ्च सा तेन करेणानिशं रुद्राक्षमालया जजाप ॥ ११ ॥

महार्हशय्यापरिवर्तनच्युतैः
स्वकेशपुष्पैरपि या स्म दूयते ।
अशेत सा बाहुलतोपधायिनी
निषेदुषी स्थण्डिल एव केवलम् ॥१२॥

टीका :—महार्हेति (महार्हशय्यापरिवर्त्तनच्युतैः) महान् अर्हो मूल्यम् यस्याः सा महार्हा श्रेष्ठा या शय्या तस्यां परिवर्तनेन लुण्ठनेन च्युतैर्भ्रष्टैः स्वकेशपुष्पैः अपि या देवी दूयते स्म क्लिश्यति स्म । पुष्पाधिकसौकुमार्यात् इति भावः । सा देवी दूयते बाहुलताम् उपधत्ते-उपधानीकरोति इति बाहुलतोपधायिनी सती केवले संस्तरणरहिते स्थण्डिले भूमौ एव अशेत शयितवती । तथा निषेदुषी उपविष्टा च । 'क्वसुश्च' इति क्वसुः । 'उगितश्च' इति ङीप् भूमावेव शयनादि व्यवहारो न जातु उपरीत्यर्थः ।

अन्वय :—या महार्हशय्यापरिवर्त्तनच्युतैः स्वकेशपुष्पैः अपि दूयते स्म, सा बाहुलतोपधायिनी केवलम् स्थण्डिले एव अशेत निषेदुषी च ॥ १२ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

महार्हशय्यापरिवर्त्तनच्युतैः—शय्या (शीङ्+क्यप्) शय्यते अत्र इति शय्या—बिस्तरा। च्युतैः—(च्यु+क्तः) भ्रष्टैः—गिरे हुए। महान् अर्हो (मूल्यम्) यस्याः सा महार्हा महार्हायाम् शय्यायाम् परिवर्तनैः च्युतानि (तत्पुरुष) तैः महार्हशय्यापरिवर्त्तनच्युतैः—कीमती बिस्तरे पर लेटने (करवट बदलने) से गिरे हुए। स्वकेशपुष्पैः—अपने केश के फूलों से; स्वस्याः केशानाम् पुष्पैः। दूयते स्म क्लेशम् प्राप्तवती—दुःख पाती थी। दूङ् परितापे—दुखी होना। इसका रूप इस प्रकार चलेगा—दूयते (लट्)। दुदुवे (लिट्) दविष्यते (लृट्)। अदविष्ट (लुङ्)। 'स्म' यह जिस धातु में जोड़ा जाता है उसके भूतकाल का अर्थ देता है। यह वर्तमान में जोड़ा जाता है। "लट् स्मे" पा० ३. २. ११८. । बाहुलतोपधायिनी—प्रशस्तो बाहुः बाहुलता ताम् उपधत्त इति बाहुलतोपधायिनी (धा+णिनिः+ङीप्) जो अपनी बाहुलता का तकिया लगाती थी। लता के समान कोमल बाहुओं का तकिया लगाने वाली। "व्रते" पा० ३. २. ८० से णिनि प्रत्यय हुआ है। अतः यह व्रत का सूचक है। उपधान—तकिया (उप+धा+ल्युट्) उपधीयते इति उपधानम्। केवले—संस्तरणशून्ये—खुला हुआ; बिना बिस्तरे का। स्थण्डिले—संस्कृतायाम् भूमौ—मिट्टी का चबूतरा "स्थण्डिलम् संस्कृता भूमिः" हलायुधः। अशेत—शेते स्म—सोती थी। शी धातु का भूतकाल। निषेदुषी—(नि+सद्+क्वसुः+ङीप्)। निषसाद—बैठती थी; सोती थी। "भाषायाम् सद वसश्रुवः" पा० ३. ४. १०८ से क्वसु प्रत्यय हुआ और फिर "उगितश्च" पा० ४. १. ६. से ङीप् प्रत्यय लगाया गया, तब निषेदुषी बना। यह प्रसिद्ध है कि तपस्वी को भूमि अथवा अन्य किसी कड़ी चीज पर बैठना चाहिये। इस श्लोक से पार्वती के जीवन में महान् परिवर्तन सूचित होता है। देखिये—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शेते या किल हंसतूलशयने निद्राति सा स्थण्डिले,
वस्ते या मृदुलं दुकूलमबला गृह्णाति सा वल्कलम् ।
या वा चन्दनपङ्कलेपशिशिरे धारागृहे वर्त्तते,
पंचानामुदितोष्मणां हुतभुजां सा मध्यमा सेवते ॥

पार्वतीपरिणय ४—२ ।

वाच्य परिवर्तन :—यया महार्हशय्यापरिवर्तनच्युतैः स्वकेश-पुष्पैरपि दूयते स्म तया बाहुलतोपधायिन्या केवले स्थण्डिले एव अशय्यत निषेदे च ॥१२॥

अनुवाद :—जो अत्यधिक मूल्य वाली सेज पर करवट लेने से गिरे हुए अपने बालों के फूलों से भी कष्ट पाती थी, वह अब अपनी लता के समान भुजा को तकिया लगाकर नंगी भूमि पर ही सोती और बैठती थी ॥१२॥

संस्कृत में भावार्थ—सा गौरी पूर्वं तु महामूल्ये शयने शेते स्म, शयनकाले च लुण्ठनेन स्वकेशेभ्यः पतितैः कुसुमैरपि तस्याः शरीरम् पीडामलभत तस्याः देहः पुष्पेभ्योऽपि सुकुमारतर आसी-दित्यर्थः । परम् व्रतानुष्ठानकाले च स्वभुजे उपधानीकृत्यास्तरणरहिते भूभागे सुष्वाप निषसाद च ॥१२॥

पुनर्ग्रहीतुं नियमस्थया तया
द्वयेऽपि निक्षेप इवार्पितं द्वयम् ।
लतासु तन्वीषु विलासचेष्टितम्
विलोलदृष्टं हरिणाङ्गनासु च ॥१३॥

टीका :—पुनरिति । नियमस्थया व्रतस्थया तया देव्या द्वयेऽपि द्वयम् पुनः ग्रहीतुम् पुनरानेतुम् निक्षेप अर्पितम् इव निक्षेपत्वेनार्पितम्

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

किमु । क्वचिद् द्वयीषु इति प्रामादिक: पाठ: । कुत्र द्वये किं द्वयमर्पितमित्याह—तन्वीषु लतासु विलास एव चेष्टितम् विलासचेष्टितम् हरिणाङ्गनासु विलोलदृष्टम् चञ्चलावलोकितम् च । व्रतस्थयाम् तस्याम् तयोरदर्शनाल्लतादिषु दर्शनाच्चार्पितमिवेत्युत्प्रेक्षा न तु वस्तुतोऽर्पणमस्तीति भाव: ॥१३॥

अन्वय :—नियमस्थया तया विलासचेष्टितम् विलोलदृष्टम् च इति द्वयम् तन्वीषु लतासु हरिणाङ्गनासु च इति द्वये अपि पुन: ग्रहीतुम् निक्षेप: अर्पितम् इव ॥१३॥

नियमस्थया—(स्था+क:) नियमे तिष्ठतीति नियमस्था तया—तपस्या के नियम पालन करने वाली (से)। विलासचेष्टितम्—विलासेन चेष्टितम् अथवा विलासरूपम् चेष्टितम् इति विलासचेष्टितम्—हावभाव (स्त्रियों के नाज-नखरे) "यानस्थानासनादीनाम् मुखनेत्रादिकर्मणाम् । विशेषस्तु विलास: स्यादिष्टसंदर्शनादिना" साहित्यदर्पणम् । विलोलदृष्टम् विलोलम् (चञ्चलम्) दृष्टम् (दृष्टि:) विलोलदृष्टम् (कर्मधारय) चञ्चल दृष्टि । दृष्टम् । (दृश्+क्त) यहाँ पर यह संज्ञा है । द्वये—द्वौ अवयवौ यस्य तत् द्वयम् (द्वि+अयच्) दोनों वस्तुयें; दो भाग वाला । जोड़ा । "द्वित्रिभ्याम् तपस्य अयज्वा" पा ५. २. ४३ से अयच् प्रत्यय लगा, दूसरा रूप द्वितयम् होगा । एवम् त्रितयम्—त्रयम् (त्रि से) तीन भाग वाला । तन्वीषु—कृशासु पतली । तनु से स्त्रीलिङ्ग तन्वीहरिणाङ्गनासु—हरिणानाम् अङ्गना: तासु (मृगीषु) हरिणियों में । द्वये—दो (वस्तुओं) में । अधिकरण ए० व० । निक्षेप—न्यास:—धरोहर; थाती । अर्पितम—दत्तम्—दिया गया; रक्खा गया । (कवि उत्प्रेक्षा करता है कि तपस्विनी होने के कारण से पार्वती न तो नाज-नखरे का ही प्रयोग कर सकती थी और न चञ्चल दृष्टि का ही प्रयोग कर सकती थी । इस वास्ते उसने

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ये दोनों चीजें लताओं के पास तथा हरिणियों के पास (फिर से लेने के वास्ते धरोहर रख दीं)।

वाच्य परिवर्तन :—नियमस्था सा विलासचेष्टितम् तन्वीषु लतासु विलोलदृष्टम् च हरिणाङ्गनासु इति द्वयम् द्वयेऽपि पुनः ग्रहीतुम् निक्षेपम् इव अर्पितवती ॥१३॥

अनुवाद :—(तपस्या के) नियम को पालन करने वाली उसने (अपने) हाव भाव और चञ्चल दृष्टि इन दोनों को (क्रम से) लताओं और हरिणियों दोनों के पास फिर लेने के लिये, धरोहर की तरह, रख दिया ॥१३॥

संस्कृत में भावार्थ :—तपश्चरन्त्या पार्वत्या स्त्रीजनसुलभो विलासश्चञ्चला दृष्टिश्च परित्यक्तौ, परम् न तत्सर्वदैव अपि तु व्रतसमाप्तिपर्यन्तम्। कथम् तर्हि सा तौ पुनः प्राप्तुम् शक्नुयात्, क्व च तौ गताविति विषये कविरुत्प्रेक्षते—यत् सा विलासादिकम् सूक्ष्मासु वल्लीषु चपलाम् दृष्टिञ्च मृगीषु निक्षेपरूपेणास्थापयत् ॥१३॥

अतन्द्रिता सा स्वयमेव वृक्षकान्
घटस्तनप्रस्रवणैर्व्यवर्धयत् ।
गुहोऽपि येषां प्रथमाप्तजन्मनां
न पुत्रवात्सल्यमपाकरिष्यति ॥१४॥

टीका :—अतन्द्रितेति। सा देवी स्वयमेव अतन्द्रिता असंजाततन्द्रा सती। तारकादित्वादितच्प्रत्ययः। वृक्षकान् स्वल्पवृक्षान् 'अल्पे' इत्यलगर्थे कः प्रत्यय। घटस्तनप्रस्रवणैः घटावेव स्तनौ तयोः प्रस्रवणैः प्रस्नुतपयोभिः व्यवर्धयत्। गुहः कुमारोऽपि प्रथमाप्तजन्मनां प्रथम-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

लब्धजन्मनाम् । अप्रजातानामित्यर्थः । येषाम् वृत्तकाणाम् सम्बन्धि पुत्रवात्सल्यम् सुतप्रेम न अपाकरिष्यति । उत्तरत्र कुमारोदयेऽपि न तेषु पुत्रवात्सल्यम् निवर्तिष्यति इत्यर्थः ॥१४॥

अन्वय :—अतन्द्रिता सा स्वयमेव वृक्षकान् घटस्तनप्रस्रवणैः व्यवर्धयत्, गुहोऽपि प्रथमाप्तजन्मनाम् येषाम् पुत्रवात्सल्यम् न अपाकरिष्यति ॥१४॥

अतंद्रिता—तन्द्रा संजाता अस्याः इति तन्द्रिता, न तन्द्रिता अतन्द्रिता अनलसा—बिना आलस्य किये हुए; आलस्यरहित होकर। "तदस्य संजातम् तारकादिभ्य इतच्" पा० ५. २. ३६ से तन्द्रा शब्द में इतच् प्रत्यय जोड़ने से यह रूप हुआ। वृक्षकान्—ह्रस्वाः वृक्षाः वृक्षकाः तान् स्वल्पपादपान्, छोटे-छोटे वृक्षों को। "ह्रस्वे" ५. ३. ८६ सूत्र से कन् प्रत्यय लगने से वृक्षक शब्द हुआ। घटस्तनप्रस्रवणैः—घटौ एव स्तनौ तयोः प्रस्रवणैः प्रस्नुतैः पयोभिः—घट रूपी स्तनों के जल से। प्रस्रवण (प्र+स्रु×ल्युट्) प्रस्रवन्ती, कर्त्तरि ल्युः—'ल्यु' के यु को अन हो गया। इसी प्रकार का भाव देखिये—"यो हेमकुम्भस्तननिःसृतानाम् स्कन्दस्य मातुः पयसाम् रसज्ञः" रघु० २. ३६। व्यवर्धयत्—(वि+वृध्+णिच्+लङ्) अपोषयत्—बढ़ाया; पाला-पोसा। गुहः—शङ्कर व पार्वती के पुत्र का नाम। इन्हें षडानन या स्वामिकार्त्तिक भी कहते हैं। ये देवताओं की सेना के सेनापति हैं। इन्हें कुमार, स्कन्द और कार्त्तिकेय भी कहते हैं। गूहति देव-सेनाम् इति। उन्हें गुह इस वास्ते भी कहते हैं कि उनका पालन-पोषण एक गुफा में हुआ था, देखिये—"स्कन्दत्वात् स्कन्दताम् प्राप्तो गुहा-वासाद्-गुहोऽभवत्"। प्रथमाप्तजन्मनाम्—प्रथमम् आप्तम् (प्राप्तम्) जन्म यैस्ते तेषाम्—जो पहले पैदा हुआ था। पार्वती का विवाह चूँकि अभी तक नहीं हुआ था इस वास्ते गुह का जन्म होने से वह

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अपना सारा प्रेम व ध्यान उन वृक्षों में लगाती थीं जिनको उन्होंने बड़ा किया था। पुत्रवात्सल्यम्—वत्सलस्य भावः वात्सल्यम् (वत्सल=ष्यञ्) प्रेम । पुत्रस्य वात्सल्यम् पुत्रवात्सल्यम्—पुत्र के प्रति प्रेम। यह समास दूसरे भी प्रकार से हो सकता है। जैसे पुत्रोचितम् वात्सल्यम् (मध्यमपदलोपी तत्पुरुष) । न अपाकरिष्यति—न दूरीकरिष्यति, नहीं हटा सकता। कहने का भाव यह है कि गुह के जन्म के बाद भी पार्वती उन वृक्षों से प्रेम करती रहेंगी।

वाच्य परिवर्तन :—अतन्द्रितया तया स्वयमेव वृक्षकाः घटस्तनप्रस्रवणैः व्यवर्ध्यन्त । गुहेनापि प्रथमाप्तजन्मनाम् येषाम् पुत्रवात्सल्यम् न अपाकरिष्यते ॥ १४ ॥

अनुवाद :—आलस्य-रहित हुई वह (पार्वती) अपने आप ही छोटे-छोटे वृक्षों को घड़े रूपी स्तनों के जल से सींचती थीं, गुह भी पूर्वोत्पन्न उनके लिये (पार्वती के) पुत्र-प्रेम को दूर न कर सकेगा ॥ १४ ॥

संस्कृत में भावार्थ :—व्रतमाचरन्ती पार्वती स्वकार्येषु निरलसाभूत, स्वाश्रमस्थान् ह्रस्वपादपांश्च पुत्रानिव मन्यमाना स्वयमानीतैः कलशजलैरसिञ्चत्। यथा हि माता स्तनपयसा स्वसन्ततिं पुष्णाति एवम् सा घटजलैर्वृक्षान् पुपोष इति स्पष्टार्थः । तस्याः तेषु पुत्रप्रेमानुभूय कविरुत्प्रेक्षते—यत्तस्याः भाविपुत्रस्य कार्त्तिकेयस्योत्पत्त्यनन्तरमपि सा तान् न विस्मरिष्यति अपि तु तेषु पुत्रवत्स्नेहम् करिष्यति ॥ १४ ॥

अरण्यबीजाञ्जलिदानलालिता-
स्तथा च तस्यां हरिणा विशश्वसुः ।
यथा तदीयैर्नयनैः कुतूहलात्
पुरः सखीनाममिमीत लोचने ॥ १५ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

टीका :— अरण्येति । अरण्यबीजाञ्जलिदानलालिता अरण्य-बीजानाम् निवारादीनामञ्जलयस्तेषाम् दानेन लालिताः हरिणाः च तस्याम् देव्याम् तथा विशश्वसुः विस्रम्भम् जग्मुः । 'समौ विस्रम्भ-विश्वासौ' इत्यमरः । यथा कुतूहलात् औत्सुक्यात् तदीयैः हरिण-सम्बन्धिभिः नयनैः नेत्रैः करणैः स्वकीये लोचने सखीनाम् पुरः पुरतः । अनेन तेषाम् सम्बन्धसहत्वमुक्तम् । अमिमीत । अक्षि-परिमाणतारतम्यज्ञानाय मानम् चकारेत्यर्थः । केचित्तु सा पार्वती तदीयैर्नेत्रैः कुतूहलात्पुरोऽग्रे वर्तमानानाम् सखीनाम् लोचने अमि-मीत व्रतस्थत्वान्नात्मन इत्याहुः । 'माङ् माने' इत्यस्माद्धातोर्लङ् । इयमेव खलु विश्वासस्य पराकाष्ठा यदक्षिपीडनेऽपि न क्षुभ्यन्तीति भावः ॥ १५ ॥

अन्वय :—(किं) च अरण्यबीजाञ्जलिदानलालिताः हरिणाः तस्याम् तथा विशश्वसुः यथा (सा) कुतूहलात् तदीयैः नयनैः (स्व) लोचने सखीनाम् पुरः अमिमीत ॥ १५ ॥

टिप्पणी :—अरण्यबीजाञ्जलिदानलालिताः—अरण्यस्य बीजा-नाम् अञ्जलेः दानेन लालिताः (पालिताः) जंगली चावलों की मुट्ठियों के देने से पाले हुए। अरण्यबीज—जंगली चावल तथा और ऐसे दाने जो स्वयम् जंगल में उगते हैं। आश्रम में रहने वाली स्त्रियाँ इसी प्रकार हरिणों को पालती थीं । "श्यामाकमुष्टिपरि-वर्धितको मृगः" शकुन्तला ४. १२ । तथा—इतना । विशश्वसुः (वि+श्वस्+लिट्) विश्वास करते थे, विश्वासं चक्रुः । श्वस्—साँस लेना, वि उपसर्ग के साथ इसका विश्वास करने का अर्थ हो जाता है । विश्वसिति (लट्), विशश्वास (लिट्, व्यश्वसीत् (लुङ्) । कुतूहलात्—कुतूहल से । तदीयैः—उसके । (तद्+छः+ईय) तेषाम् इमानि तदीयानि तैः, उनके (हरिण के बच्चों के) ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सखीनाम् पुरः—सखियों के सामने; मृग उससे इतने मिल गये थे कि पार्वती की सखियों की उपस्थिति का बिलकुल ध्यान नहीं देते थे। अमिमीत—(माङ् + लङ्) नापती थी, मा धातु का (लङ्)। माति (लट्)। ममौ (लिट्)। मास्यति (लृट्)। अमासीत् (लुङ्)। कुछ टीकाकार कहते हैं कि पार्वती को अपनी आँखें हरिणों की आँखों के साथ नापना उचित न था अतः वे यह अर्थ लगाते हैं—कुतूहलात् तदीयैः नयनैः पुरः स्थितानां सखीनाम् लोचने अमिमीत—उत्सुकता-वश वह अपने सामने सखियों की आँखों को मृगों की आँखों से नापती थी। परन्तु यह अर्थ उचित नहीं जान पड़ता, क्योंकि कवि पार्वती की आँखों का वर्णन कर रहा है न कि सखियों की आँखों का। दूसरे, ऐसी अवस्था में सखीनाम् लोचनानि होगा, न कि सखीनाम् लोचने।

संस्कृत में भावार्थ :—पार्वती नीवारादिभिर्वनधान्यैः हरिणान् पोषति स्म अन्यप्रकारेण च तेषु स्निह्यति स्म। तस्याः वात्सल्यम् पुत्रवत्पालनञ्चानुभूय हरिणास्तस्यामतिशयमनुरक्ता जातास्तस्याः लेशमात्रमपि न बिभ्यति स्म। सापि तेषाम् निर्भीकत्वमालोक्य कुतूहलवशात् स्वसखीनाम् समक्षमेव हरिणानाम् नेत्रैः स्वनेत्रे माति स्म। एवं सा तैस्सह मनोविनोदम् कुर्वन्ती तान्बह्वमन्यत ॥१५॥

कृताभिषेकां हुतजातवेदसं
त्वगुत्तरासंगवतीमधीतिनीम्।
दिदृक्षवस्तामृषयोऽभ्युपागम-
न्न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते ॥१६॥

टीका :—कृतेति। कृताभिषेकाम् कृतस्नानाम् हुतजातवेदसम्; हुताग्निकाम् कृतहोमामित्यर्थः। त्वचा वल्कलेनोत्तरासङ्गवतीमुत्तरीयवतीं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

त्वगुत्तरासङ्गवतीम्। अधीतमस्य अस्तीति ताम् अधीतिनीं स्तुतिपाठादि कुर्वन्तीम् 'इष्टादिभ्यश्च' इतीनि प्रत्ययः। ताम् देवीम् दिदृक्षवः द्रष्टुमिच्छवः ऋषयः मुनयः अभ्युपागमन् समुपागताः। न चात्र कनिष्ठसेवादोष इत्याह धर्मवृद्धेषु वयोज्यैष्ठ्यम् न प्रयोजकमित्यर्थः। तथा च मनुः 'न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितम् शिरः। यो वा युवाप्यधीयानस्तम् देवाः स्थविरम् विदुः ॥' इति ॥१६॥

अन्वय :—कृताभिषेकाम् हुतजातवेदसम् त्वगुत्तरासङ्गवतीम् अधीतिनीं ताम् दिदृक्षवः ऋषयः अभ्युपागमन्, धर्मवृद्धेषु वयः न समीक्ष्यते ॥१६॥

टिप्पणी :—कृताभिषेकाम्—कृतः अभिषेकः (स्नानम्) यया सा ताम्—जिसने स्नान कर लिया है उसे। अभिषेकः—(अभि + सिच् + घञ्) स्नानम्। यहाँ पर पवित्र स्नान से मतलब है जो दिन में तीन बार किया जाता है। हुतजातवेदसम्—हुतः जातवेदाः(अग्निः) यया सा ताम्, जिसने होम कर लिया है। जातवेदस्—अग्निः–आग। "कृपीटयोनिर्ज्वलनो जातवेदास्तनूनपात्" इत्यमरः। यह सकारान्त शब्द है और इसका रूप यों चलेगा—जातवेदाः—जातवेदसौ—जातवेदसः। जातवेदसम्, जातवेदसौ, जातवेदसः। जातवेदसा, जातवेदोभ्याम्, जातवेदोभिः। त्वगुत्तरासङ्गवतीम्—त्वचा (वल्कलेन) उत्तरासङ्गवती, ताम्, जो पेड़ की छाल को पहने थी। त्वगेव उत्तरासङ्गः अस्याः अस्तीति तत्पुरुषान्मतुप् (उत्तरासङ्ग + मतुप् + ङीप्)। उत्तरासङ्ग—ऊपर के पहनने की पोशाक। अधीतिनीम् (अधीत + इनिः + ङीप्); अधीतम्—वेदाध्ययनम् अस्या अस्तीति अधीतिनी, ताम् अधीतिनीम्, जो वेदों के पढ़ने में लगी हुई हो। अधीतम्—(अधि + इङ् + क्तः)। "इष्टादिभ्यश्च" पा० ४. २. ८८. से इनि प्रत्यय हुआ। फिर स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए इसमें ङीप् प्रत्यय लगाया गया। ये चारों विशेषण पार्वती की दैनिक चर्या के द्योतक हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दिदृक्षवः—(दृश् + सन् + उ) द्रष्टुम् इच्छवो दिदृक्षवः अथवा द्रष्टुमिच्छन्ति दिदृक्षन्ति, ते दिदृक्षवः— उसके देखने के इच्छुक। यह दिदृक्षु की प्रथमा का ब० व० है।

इसी प्रकार चिकीर्षु, जिगमिषु और जिज्ञासु आदि भी होते हैं। अभ्युपागमन्—(अभि + उप + आ + गम् + लङ्) आये। धर्मवृद्धेषु—धर्मेण वृद्धेषु—धर्म में बढ़े हुए लोगों में (की)। वयः—अवस्था। समीक्ष्यते—देखी जाती है। ईक्ष् का कर्मवाच्य एकवचन। भाव यह है कि अगर बड़े मुनि उसके पास जाते थे तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। क्योंकि गुण व धर्म में वह बहुत बढ़ी हुई थी। "गुणाः पूजा-स्थानम् गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः" उत्तररामचरित। ४. ११. "प्रकृतिरियम् सत्ववताम् न खलु वयस्तेजसो हेतुः" नीतिशतक ५८। "तेजसाम् हि न वयः समीक्ष्यते।" रघु० ११—१.

वाच्य परिवर्तन :—कृताभिषेका हुतजातवेदाः त्वगुत्तरासङ्गवती अधीतिनी सा दिदृक्षुभिः ऋषिभिः अभ्युपागम्यत। (विद्वांसः) धर्मवृद्धेषु वयः न समीक्षन्ते ॥१६॥

अनुवाद :—स्नान करने वाली, अग्निहोत्र करने वाली, पेड़ की छाल को धारण करने वाली और (वेद को) पढ़ने वाली उस पार्वती के पास उसके दर्शन की इच्छा वाले ऋषि आते थे। धर्म में बढ़े हुए व्यक्तियों की आयु नहीं देखी जाती ॥१६॥

संस्कृत में भावार्थ :—व्रतस्था पार्वती प्रतिदिनम् वारत्रयम् स्नाति स्म, नियमपूर्वकमग्निहोत्रम् विदधाति स्म, महार्हाणि वस्त्राणि परित्यज्य वल्कलमेव धत्ते स्म तथा वेदादीनाम् पठनम् करोति स्म। एवम् गुणवतीं तपस्विनियमयुक्ताम् च ताम् मुनयो बहुमन्यमानास्तस्याः

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दर्शनार्थं तत्समीपम् गच्छन्ति स्म। सा अल्पवयस्कापि ऋषिभिः पूजितेति विषये कविः कथयति—यद् धर्मवताम् पुरुषाणामादरानादरे तेषामायुः अकिंचित्करम् भवति। अल्पवयस्का अपि तेऽन्येषाम् पूज्या भवन्ति ॥१६॥

विरोधिसत्त्वोज्झितपूर्वमत्सरं
द्रुमैरभीष्टप्रसवार्चितातिथि।
नवोटजाभ्यन्तरसंभृतानलं
तपोवनं तच्च बभूव पावनम् ॥१७॥

टीका :—विरोधीति। विरोधिसत्त्वोज्झितपूर्वमत्सरम् विरोधिभिः सत्त्वैर्गो-व्याघ्रादिभिरुज्झितपूर्वमत्सरम् त्यक्तपूर्ववैरम्। हिंसारहितमित्यर्थः। द्रुमैः अभीष्टप्रसवार्चितातिथि अभीष्टप्रसवेनेष्टफलेनार्चिताः पूजिताः अतिथयो यस्मिंस्तत्तथोक्तम्। नवोटजाभ्यन्तरसंभृतानलम् नवानामुटजानाम् पर्णशालानामभ्यन्तरेषु संभृताः संचिता अनला अग्नयो यस्मिंस्तत्तथोक्तम्। तत् च तपोवनम् पावयतीति पावनम् बभूव। अहिंसातिथि-सत्काराग्निपरिचर्याभिर्जगत्पावनम् बभूवेत्यर्थः। १७।

अन्वय :—(किं) च विरोधिसत्त्वोज्झितपूर्वमत्सरम् द्रुमैः अभीष्टप्रसवार्चितातिथि नवोटजाभ्यन्तरसंभृतानलम् तत् तपोवनम् पावनम् बभूव ॥१७॥

टिप्पणी :—विरोधिसत्त्वोज्झितपूर्वमत्सरम्—विरोधि—(विरोधः+इनिः) विरोधो वैरम् अस्यास्तीति विरोधिन् ते विरोधिनः—दुश्मनी करनेवाले; आपस में एक दूसरे से दुश्मनी करने वाले। उज्झित (उज्झ क्तः) त्याग दिया गया, छोड़ दिया गया। मत्सरः—वैरम—दुश्मनी।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"मत्सरोन्यशुभद्वेषे" इत्यमरः । पूर्वमत्सर—कुछ जीवों में आपस की स्वाभाविक दुश्मनी जैसे सिंह व गाय की, मोर और सर्प की। विरोधिभिः सत्त्वैः (प्राणिभिः) उज्झितः (त्यक्तः) पूर्वः मत्सरः यस्मिन् तत्—जहाँ पर जीवों ने अपनी स्वाभाविक दुश्मनी छोड़ दी है। तपस्वियों का प्रभाव जंगली जानवरों पर भी पड़ता है यह कोई अस्वाभाविक चीज नहीं है। इस प्रकार के प्रभाव का जिक्र संस्कृत की अनेक कविताओं में आया है। द्रुमैः—वृक्षैः, पेड़ों से। अभीष्टप्रसवार्चितातिथि—अभीष्टम् (अभि+इष्+क्त) वाञ्छि-तम्—चाहा हुआ। प्रसवः—फलम्—फल। "स्यादुत्पादे फले पुष्पे प्रसवे-गर्भमोचने" इत्यमरः। अर्चिताः, पूजिताः, सत्कृताः —सत्कार किये गये; पूजे गये। अभीष्टैः प्रसवैः अर्चिताः अतिथयो यस्मिन् तत्—जहाँ पर अभीष्ट फलों से अतिथियों का सत्कार किया जाता था। देखिये—तस्यातिथीनामधुना सपर्या स्थिता सुपुत्रेष्विव पादपेषु" रघु० १३. ४६। नवोटजाभ्यन्तरसंभृतानलम्—उटजः पर्णशाला—पत्तों की बनी हुई कुटी "पर्णशालोटजोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः। सम्भृताः—सम्+भृञ्+क्तः। आहिताः, जलाई रहती थी। संचित रहती थी। नवानाम् (नूतननिर्मितानाम्) उटजानाम् अभ्यन्तरं संभृताः अनलाः (अग्नयः) यस्मिन् तत्, जहाँ पर नई बनी हुई कुटियों में आग संचित रहती थी। ये तीनों शब्द अर्थात् प्रथम तीन पंक्तियों में आये हुए शब्द तपोवन के विशेषण हैं जहाँ पर पार्वती तपस्या करती थी। पावनम् पावयतीति पावनम् (पवित्रम्) पवित्र।

वाच्य परिवर्तन :—(किं) च विरोधिसत्त्वोज्झितपूर्वमत्सरेण द्रुमैः अभीष्टप्रसवार्चितातिथिना नवोटजाभ्यन्तरसंभृतानलेन तेन तपो-वनेन पावनेन बभूवे ॥ १७ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अनुवादः—जिसमें (एक दूसरे से) शत्रुता करने वाले जन्तुओं ने पुराने वैर को छोड़ दिया था, जिसमें वृक्षों द्वारा वाञ्छित फलों से अतिथियों का सत्कार किया जाता था और जिसकी नई कुटियों में अग्नि संचित रहती थी ऐसा वह तपस्या का वन पवित्र हो गया ॥ १७ ॥

संस्कृत में भावार्थ :—पार्वत्या आदर्शचरित्रेण तत् तपोवनमपि पवित्रीकृतम् । तत्रस्थैर्वनजन्तुभिः स्वाभाविको विरोधस्त्यक्तः—गोव्याघ्रादयः प्रेम्णा परस्परम् व्यवहरन्ति स्म । पादपाः स्वफलैरतिथीनाम् सत्कारम् चक्रुः । पर्णशालावासिनो मुनयश्च सनियममग्निहोत्रादिकम् धर्मकृत्यम् विदधुः । एवम् पार्वत्यास्तपोवनम् स्वयम् पवित्रमन्येषाम् च पवित्रकारकमभूत् ॥ १७ ॥

यदा फलं पूर्वतपःसमाधिना
न तावता लभ्यममंस्त काङ्क्षितम् ।
तदानपेक्ष्य स्वशरीरमार्दवं
तपो महत् सा चरितुं प्रचक्रमे ॥१८॥

टीकाः—तदेति । सा देवी यदा यस्मिन् काले तावता तावत्परिमाणेन पूर्वतपःसमाधिना पूर्वेणानुष्ठीयमानप्रकारेण तपोनियमेन काङ्क्षितम् फलम् लभ्यम् लब्धुम् शक्यम् न अमंस्त अशक्यममंस्तेत्यर्थः, तदा तत्काले । अविलम्बेनेत्यर्थः । स्वशरीरमार्दवम् स्वशरीरस्य मार्दवम् मृदुत्वम् सौकुमार्यम् अनपेक्ष्य अविगणय्य महत् दुस्तरम् तपः चरितुम् साधयितुम् प्रचक्रमे उपचक्रमे ॥ १८ ॥

अन्वय :—सा यदा तावता पूर्वतपःसमाधिना काङ्क्षितम् फलम् लभ्यम् न अमंस्त, तदा स्वशरीरमार्दवम् अनपेक्ष्य महत् तपः चरितुम् प्रचक्रमे ॥ १८ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

टिप्पणी :—तावता—(तावत्+टा) तत्परिमाणमस्येति तावत् तेन, उतने से। तत् में वतुः जोड़कर तथा 'आ सर्वनाम्नः' पा० ६. ३. ६१ से तत् के अ को दीर्घ करने से तावत् शब्द बना। पूर्वतपः-समाधिना—तपसः समाधिना इति तपःसमाधिना पूर्वेण तपः-समाधिना इति पूर्वतपःसमाधिना (उपरिवर्णिततपोनियमेन) जो तपस्या वह कर रही थी उससे। तपः-समाधिः—तपस्या। समाधि (सम्+आ+धा+कि) समाधि; ध्यान। काङ्क्षितम्—(काङ्क्ष+क्तः) ईप्सित, चाहा हुआ। लभ्यम्—(लभ्+यत्) प्राप्यम्—प्राप्य, पाने के योग्य। अमंस्त—समझा। यह मन् धातु के लुङ् लकार के प्र० पु० का एकवचन का रूप है। मन्यते (लट्)। मेने (लिट्)। मंस्यते (लृट्)। स्वशरीरमार्दवम्—मार्दवम् (मृदु+अण्) मृदोः भावः मार्दवम् (कोमलता) सुकुमारता। "इगन्ताच्च लघुपूर्वात्" पा० ५. १. १३१ से भाववाचक संज्ञा बनाने के वास्ते अण् प्रत्यय लगा। स्वस्यः शरीरस्य मार्दवम्—स्वशरीरमार्दवम्—अपने शरीर की सुकुमारता;। अनपेक्ष्य (न+अप+ईक्ष्+ल्यप्) ध्यान न देकर, ख्याल न कर। प्रचक्रमे (प्र+क्रम्+लिट्) आरेभे—शुरू किया। क्रम्—चलना। प्र या उप पहले होने से इसका रूप आत्मनेपद में चलता है "प्रोपाभ्याम् समर्थाभ्याम्" पा० १. ३. ४२ और इसका अर्थ होता है "प्रारम्भ करना"। परन्तु "प्रक्रामति" वह जाता है। "उपक्रामति" वह आता है।

वाच्य परिवर्तन :—तया यदा तावता पूर्वतपःसमाधिना काङ्क्षितम् फलम् लभ्यम् न अमानि, तदा स्वशरीरमार्दवम् अनपेक्ष्य महत् तपः चरितुम् प्रचक्रमे ॥१८॥

अनुवाद :—जब उसने सोचा कि पहले की (अब तक की हुई) तपस्या से चाहा हुआ फल प्राप्त होने वाला नहीं तब

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(उसने) अपनी देह की कोमलता का विचार न कर (अधिक) कठोर तप करना आरम्भ किया ॥१८॥

संस्कृत में भावार्थ :—पूर्वोक्तप्रकारेण तप आचरन्ती पार्वती यदा स्वाभीष्टसंसिद्धौ ससन्देहा जाता, तदा सा निजदेहस्य कोमलत्वमनादृत्य कठिनतरम् तपः कर्त्तुम् निश्चितवती ॥१८॥

क्लमं ययौ कन्दुकलीलयापि या
तया मुनीनां चरितम् व्यगाह्यत ।
ध्रुवम् वपुः काञ्चनपद्मनिर्मितम्
मृदु प्रकृत्या च ससारमेव च ॥ १९ ॥

टीका :—क्लममिति । या देवी कन्दुकलीलया कन्दुकक्रीडया अपि क्लमम् ययौ ग्लानिम् प्राप । तया देव्या मुनीनाम् तीव्रम् चरितम् तपः व्यगाह्यत प्रविष्टम् । अत्रोत्प्रेक्षते—ध्रुवम् अस्याः वपुः काञ्चनपद्मनिर्मितम् काञ्चनपद्मेन सुवर्णकमलेन निर्मितम् घटितम् । अतएव प्रकृत्या पद्मस्वभावेन मृदु च सुकुमारपि काञ्चनस्वभावेन ससारम् च कठिनम् एव । तथा च तदुपादानकत्वाद्देव्या वपुषः सुकुमारस्यापि तीव्रतपःक्षमत्वमित्युत्प्रेक्षार्थः ॥१९॥

अन्वय :—या कन्दुकलीलया अपि क्लमम् ययौ, तया मुनीनां चरितं व्यगाह्यत । ध्रुवम् (अस्याः) वपुः काञ्चनपद्मनिर्मितम् (अस्ति) (अत एव) प्रकृत्या मृदु च ससारम् एव च (अस्ति) ॥१९॥

टिप्पणी :—कन्दुकलीलया—कन्दुकेन कन्दुकस्य वा लीला तया कन्दुकलीलया—गेंद खेलने से । क्लमम्—श्रान्तिम्, थकावट । ययौ—प्राप्ता, प्राप्त होती थी, थक जाती थी । चरितम्—जीवनम्,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जीवन; अगाह्यत—आचर्यत अक्रियतेत्यर्थः—किया गया, गाह (डुबकी लगाना) के लुङ् का रूप कर्मवाच्य में है। गाहते (लट्), अगाहिष्ट (लुङ्)। ध्रुवम्—निश्चयपूर्वक। यह उत्प्रेक्षा सूचित करने के लिये प्रयुक्त हुआ है। देखिये –"मन्ये शङ्के ध्रुवम् प्रायो नूनमित्येव-मादिभिः। उत्प्रेक्षा व्यज्यते शब्दैरिव शब्दोऽपि तादृशः", काव्यादर्श। काञ्चन-पद्मनिर्मितम्—(काञ्चनस्य—सुवर्णस्य) पद्मेन निर्मितम्—सोने के कमल का बना हुआ। काञ्चनपद्मनिर्मितम् से केवल उसकी सुन्दरता का ही बोध नहीं होता बल्कि इससे यह भी सिद्ध होता है कि उसमें स्वर्ण की तरह सख्ती तथा शक्ति भी थी और कमल की तरह कोमलता भी थी। काञ्चनपद्म कहने का कारण भी कवि बतलाता है। प्रकृत्या—स्वभावेन, स्वभाव से। ससारम् सारेण सह इति ससारम् (कठिनम् बलयुतम् वा) सख्त तथा मजबूत।

वाच्य परिवर्तन :—यया कन्दुकलीलयापि क्लमः यये सा मुनीनाम् चरितम् व्यगाहत। ध्रुवम् (अस्याः) वपुषा काञ्चनपद्म-निर्मितेन (भूयते स्म) (अत एव) प्रकृत्या मृदुना ससारेणैव च (भूयते स्म) ॥१६॥

अनुवाद—जो (पार्वती) गेंद के खेलने से भी थक जाती थी वही (अब) तपस्वियों का आचरण (कठोर तपस्या) कर रही थी। सचमुच उसका शरीर सोने के कमल का बना हुआ था (क्योंकि) स्वभाव से ही कोमल एवं कठोर या शक्तिशाली था ॥१६॥

संस्कृत में भावार्थ :—या पार्वती पूर्वमतिकोमलशरीरासीत् कन्दुकक्रीडादिभिरपि च श्रान्ताभूत् सैवेदानीम् मुनीनां कठिनम् व्रतम् सहर्षमाचरति स्म। एतत्समीक्ष्य कविस्तर्कयति—यन्नूनं तस्याः शरीरम् सुवर्णपद्मेन विरचितमासीत्, यत्स्वभावेनैव कमलमिव कोमलम्

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सुवर्णमिव कठोरम् शक्तिसम्पन्नम् वाभूत् । पार्वती मृदुशरीरापि सती कठिनतप आचरितुम् शक्तासीदिति कवेस्तात्पर्यम् ॥१६॥

शुचौ चतुर्णां ज्वलतां हविर्भुजां
शुचिस्मिता मध्यगता सुमध्यमा
विजित्य नेत्रप्रतिघातिनीं प्रभा—
मनन्यदृष्टिः सवितारमैक्षत ॥२०॥

टीका :—शुचाविति । शुचौ ग्रीष्मे शुचिस्मिता विशदमन्दहासा सुमध्यमा पार्वती ज्वलताम् दीप्तिमताम् चतुर्णां हविर्भुजाम् अग्नीनां मध्यगता सती । नेत्रे प्रतिहन्तीति ताम् नेत्रप्रतिघातिनीम् प्रभाम् सावित्रम् तेजः विजित्य । न विद्यतेऽन्यत्र दृष्टिर्यस्याः सा अनन्यदृष्टिः सती सवितारं सूर्यम् ऐक्षत ददर्श । 'ग्रीष्मे पंचाग्निमध्यस्थो वर्षासु स्थण्डिलेशयः' इति स्मरणात् । पंचाग्निमध्ये तपश्चकारेत्यर्थः । सवितैव पंचमोऽग्निः—'अग्निः सविता सवितैवाग्निः' इति श्रौत-लिंगात् ॥२०॥

अन्वय :—शुचौ ज्वलताम् चतुर्णां हविर्भुजां मध्यगता शुचि-स्मिता सुमध्यमा ने प्रतिघातिनीम् प्रभां विजित्य अनन्यदृष्टिः सवितारम् ऐक्षत ॥२०॥

टिप्पणी :—शुचौ—ग्रीष्मे—गर्मी में । शुचि के कई अर्थ होते हैं । देखिये—'शुचिर्ग्रीष्माग्निशृङ्गारेष्वाषाढे शुद्धमन्त्रिणि । ज्येष्ठे च पुंसि धवले शुद्धेऽनुपहते त्रिषु'। इति मेदिनी । ज्वलताम्—(ज्वल्+शतृ) दीप्तिमताम्—जलते हुए । चतुर्णाम् (चारों अंगों के) । जब कोई पंचाग्नि तप करता है तो चारों तरफ आग जलाई जाती है और ऊपर सूर्य पाँचवीं आग का काम देता है । हवि-र्भुजाम्—हविः भुञ्जन्ते इति हविर्भुजः तेषाम्, जो हवि को खाते हैं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अर्थात् आग। मध्यगता—मध्यंगता (मध्ये स्थिता), बीच में बैठकर। शुचिस्मिता—शुचि शुद्धम् (स्मितम्) हसितम् यस्याः सा, जिसकी मुस्कुराहट स्वच्छ है, स्वच्छ मुस्कुराहट वाली। यहाँ पर शुचि का अर्थ पवित्र है और पहले यह गर्मी के अर्थ में आया है। स्मित—मुस्कुराहट। वि के साथ स्मि का अर्थ आश्चर्य करने का होता है। जैसे—विस्मित। इस विशेषण के प्रयोग से प्रकट होता है कि तपस्या का कष्ट पार्वती को बिल्कुल नहीं मालूम पड़ता था और वह पहले की तरह प्रसन्न-चित्त रहती थी। सुमध्यमा—सु (शोभनः) मध्यमः (कटिः) यस्याः सा सुमध्यमा, सुन्दर कमर वाली; सुन्दर स्त्री। नेत्रप्रतिघातिनीम्—प्रतिघातिनी (प्रति+हन्+णिनि+ङीप्) प्रति-हन्तुम् शीलम् अस्याः इति प्रतिघातिनी—(आँखों को) चकाचौंध करने वाली। हन् धातु में णिनि प्रत्यय जोड़ने से घातिनी बना। हन् के ह को घ तथा न् को त आदेश हो जाता है। नेत्रयोः प्रति-घातिनी ताम्—आँखों को चकाचौंध करने वाली। प्रभा—तेज, सूर्य का तेज। विजित्य—जीतकर। पार्वती अब सूर्य की ओर देखने की आदी हो गई। अनन्यदृष्टिः—न अन्यस्मिन् दृष्टिः यस्याः सा—दूसरी चीज की ओर न देखती हुई। सवितारम्—सुवति इति सविता तम्, सूर्य को।

ऐक्षत (ईक्ष्+लङ्)—देखा। ईक्ष धातु का लङ्। जिस तपस्या का यहाँ वर्णन किया गया है वह पंचाग्निसाधन कहा जाता है। यह बड़ी कठोर तपस्या होती है। रघुवंश में भी इसका प्रसङ्ग आया है १३. ४१ 'हविर्भुजामेधवताम् चतुर्णाम् मध्ये ललाटन्तप सप्तसप्तिः'।

वाच्य परिवर्तन :—शुचौ ज्वलताम् चतुर्णाम् हविर्भुजाम् मध्यगतया शुचिस्मितया सुमध्यमया नेत्रप्रतिघातिनीम् प्रभाम् विजित्य अनन्यदृष्ट्या सविता ऐक्ष्यत ॥२०॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अनुवाद :—ग्रीष्म ऋतु में, जलती हुई चार अग्नियों के बीच में स्थित, स्वच्छ मुस्कुराहट वाली और सुन्दर कमर वाली (पार्वती) आँखों को चकाचौंध करने वाली (सूर्य की) चमक को सहकर दूसरी तरफ न देखती हुई, सूर्य की ओर टकटकी लगाये रहती थी ॥२०॥

संस्कृत में भावार्थ :—कठिनतरतपोवर्णनप्रसंगेन पूर्वम् पंचाग्निसाधकम् वर्णयति—पार्वती शास्त्राज्ञामनुसृत्य पंचाग्निनामकम् तपः प्रारब्धवती । तत्करणार्थम् कृशकटिमती सा ग्रीष्मे दीप्तिमताम् चतुर्णामग्नीनाम् मध्ये स्थिता लोचनयोः कष्टकारकम् सूर्यस्य तेजः पराभूय अनिमेषनेत्राभ्याम् सूर्यम् प्रति ददर्श ॥२०॥

तथाभितप्तं सवितुर्गभस्तिभि-
र्मुखम् तदीयम् कमलश्रियम् दधौ ।
अपाङ्गयोः केवलमस्य दीर्घयोः
शनैः शनैः श्यामिकया कृतं पदम् ॥२१॥

टीका—तथेति सवितुः सूर्यस्य गभस्तिभिः किरणैः तथा पूर्वोक्तप्रकारेण अभितप्तम् संतप्तम् तस्या इदम् तदीयम् मुखम् कमलश्रियम् कमलस्य शोभाम् दधौ प्राप । यथा रवितापात्कमलम् न म्लायति प्रत्युत विकसति तथा तदीयम् मुखमासीदिति भावः । किन्तु अस्य मुखस्य दीर्घयोः अपाङ्गयोः केवलम् नेत्रान्तयोरेव शनैः शनैः मन्दम् मन्दम् श्यामिकया कालिम्नः पदम् स्थानम् कृतम् । तयोः सौकुमार्यादित्यर्थः ॥२१॥

अनुवाद—सवितुः गभस्तिभिः तथा अभितप्तम् तदीयम् मुखम् कमलश्रियम् दधौ, श्यामिकया केवलम् अस्य दीर्घयोः अपाङ्गयोः शनैः शनैः पदम् कृतम् ॥२१॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

टिप्पणी :—सवितुः—सूर्य का। यह सवितृ शब्द की षष्ठी का एक वचन है। (सू+तृच) सुवति इति सविता—सूर्य (जो जीवन प्रदान करता है)। 'भानुर्हंसः सहस्रांशुस्तपनः सविता रविः" इत्यमरः। गभस्तिभिः —किरणैः, किरणों से। "किरणोस्रमयूखांशु-गभस्तिघृणिरश्मयः" इत्यमरः। अभितप्तम्—(अभि + तप क्त) आभिमुख्येन तप्तम्, खूब तपाया हुआ। तदीयम् (तत् + छः = ईय) तस्याः इदम् तदीयम्, उस (पार्वती) का। दधौ (धा+ लिट्)—धारयामास—धारण किया। पार्वती का सुन्दर मुँह सूर्य की गरमी से लाल हो जाने के कारण लाल कमल के समान प्रतीत होता था। श्यामिकया—कालिम्ना—कालापन से। श्यामिका की तृतीया है। अपाङ्गयोः—नेत्रप्रान्तयोः—आँख के बाहर का भाग। दीर्घयोः—आँख के बड़े-बड़े कोने सुन्दरता के चिह्न हैं। शनैः शनैः—धीरे-धीरे। अगर एकदम कालिमा आ जाती तो सुन्दरता नष्ट हो जाती। पदम् कृतम्—दिखलाई पड़ने लगी, आ गई। केवलम् कहने से यह मालूम पड़ता है कि शरीर का अन्य कोई भाग, सिवाय आँखों के कोनों के, सूर्य की गर्मी से काला नहीं हुआ।

वाच्य परिवर्तन :—सवितुः गभस्तिभिस्तथा अभितप्तेन तदीयेन मुखेन कमलश्रीः दधे। श्यामिका केवलम् अस्य दीर्घयोः अपाङ्गयोः शनैः शनैः पदम् कृतवती ॥२१॥

अनुवाद :—सूर्य की किरणों से इस प्रकार अत्यधिक तपाया हुआ उसका चेहरा कमल की तरह सुन्दर हो गया; (और सूर्य की गर्मी से हुई) कालिमा से केवल उसकी आँखों के लम्बे कोने ही धीरे-धीरे काले हो गये ॥२१॥

संस्कृत में भावार्थ :—निरन्तरम् सूर्याभिमुखम् निरीक्षणेन मुखे विकृतिः संभवास्ति, परम् पार्वत्याः मुखम्, यत्सततम् सूर्य-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दर्शनेनोष्णीभूतमासीत्, सूर्यस्य रश्मिभिः स्पृष्टम् कमलमिवात्यन्तमशोभत, न तु कमपि विकारम् दधौ। सूर्यतापजनितम् कार्श्यञ्च केवलम् सुकुमारतरयोर्नेत्रप्रान्तयोरेव शनैः शनैः प्रावर्त्तत न तु मुखस्यान्यस्मिन् कस्मिंश्चिद्भागे। तत्कार्श्यञ्च शोभाकरमेवाभूत् न तु कान्तिहरम् ॥२१॥

अयाचितोपस्थितमम्बु केवलम्
रसात्मकस्योडुपतेश्च रश्मयः।
बभूव तस्याः किल पारणाविधि-
र्न वृक्षवृत्तिव्यतिरिक्तसाधनः ॥२२॥

टीका :—अयाचितेति। अयाचितोपस्थितम् अप्रार्थितोपनतम् केवलम् अम्बु उदकम् रसात्मकस्य अमृतमयस्य उडुपतेः उडूनाम् नक्षत्राणाम् पतिश्चन्द्रस्तस्य रश्मयः च तस्याः पार्वत्याः पारणाविधिः अभ्यवहारकर्म बभूव। तावन्मात्रसाधनकोऽभूदित्यर्थः साध्यसाधनयोरभेदेन व्यपदेशः साधनान्तरव्यावृत्त्येत्यर्थः। किल इति प्रसिद्धौ। वृक्षवृत्तिव्यतिरिक्तसाधनः। वृक्षाणाम् या वृत्तिर्जीवनोपायस्तद्व्यतिरिक्तम् साधनमुपायो यस्य स तथोक्तः पारणाविधिः न बभूव। वृक्षोऽप्ययाचितोपस्थितेन मेघोदकेनेन्दुकिरणैश्च जीवतीति प्रसिद्धम्। अम्बिकापि तावन्मात्रमवालम्बतेत्यर्थः ॥२२॥

अन्वय :—अयाचितोपस्थितम् केवलम् अम्बु रसात्मकस्य उडुपतेः रश्मयः च तस्याः पारणाविधिः बभूव किल, वृक्षवृत्तिव्यतिरिक्तसाधनः (पारणाविधिः) न (बभूव) ॥२२॥

टिप्पणी :—अयाचितोपस्थितम्—न याचितम् अयाचितम् (अप्रार्थितम्) अयाचितम् च तदुपस्थितम् (प्राप्तम्)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अयाचितोपस्थितम्—जो बिना माँगे अथवा बिना किसी प्रयत्न के मिले। उपस्थितम्—(उप+स्था+क्तः) उपनतम्—मिला हुआ। अम्बु—जल। अम्बु—अम्बुनी—अम्बूनि। अम्बु—अम्बुनी—अम्बूनि। अम्बुना—अम्बुभ्याम्—अम्बुभिः। इत्यादि रूप चलेगा। यहाँ पर बरसाती जल अथवा ओस के जल से तात्पर्य है क्योंकि ये बिना प्रयत्न के मिलते हैं। रसात्मकस्य—रसः (जलम्) आत्मा यस्य सः, तस्य। जलमयस्य—जलमय। चन्द्रमा की किरणें शीतल होती हैं इससे उसे रसात्मक (जलवाला) कहते हैं। उसका अर्थ अमृत भी होता है। इस दशा में इसका माने होगा अमृत से भरा हुआ। इसी से चन्द्रमा को सुधाकर भी कहते हैं। रसात्मक (रस+आत्मन्+कप्) कभी-कभी विकल्प से कप् प्रत्यय कुछ खास शब्दों में जोड़ दिया जाता है जब वे शब्द बहुव्रीहि समास के अन्त में होते हैं। इसका सूत्र है "शेषाद्विभाषा" ५. ४. १५१। उडुपतेः—उडूनाम् नक्षत्राणाम् पतिः तस्य, नक्षत्रों के स्वामी (चन्द्रमा का) समास होने पर पति शब्द का रूप हरि की तरह चलता है। इस वास्ते उडुपतेः रूप हुआ, न कि उडुपत्युः। पारणाविधिः पारण या पारणा का अर्थ है "उपवास के बाद का भोजन"। यहाँ दोनों अर्थ हो सकते हैं। क्योंकि पार्वती रोज उपवास करती थीं। पारणायाः विधिः पारणाविधिः अथवा पारणैव विधिः पारणाविधिः—भोजनम्, व्रतान्तरम् भोजनम् वा। किल—इस शब्द से यह मालूम होता है कि यह बात पुराणों में तथा अन्य ग्रन्थों में भी कही गई है। वृक्षवृत्तिव्यतिरिक्तसाधनः—वृत्तिः जीवनोपायः जीविकाव्यतिरिक्तम्—(वि+अति+रिचिर+क्तः) भिन्न, अलग। वृक्षाणाम् वृत्तेः व्यतिरिक्तम् साधनं यस्य सः वृक्षवृत्तिव्यतिरिक्तसाधनः, जिसकी जीविका का सहारा वृक्षों की वृत्ति से भिन्न न था यानी वृक्षों के समान ही जिसकी जीविका थी। यह पारणाविधिः

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

का विशेषण है। इसका अर्थ यह है कि पार्वती का भोजन वही था और उसी प्रकार से मिलता था जिस प्रकार वृक्षों को मिलता है।

वाच्य परिवर्तन :—अयाचितोपस्थितेन केवलेन अम्बुना रसात्मकस्य उडुपतेः रश्मिभिश्च तस्याः पारणाविधिना बभूवे किल। वृक्षवृत्तिव्यतिरिक्तसाधनेन न (बभूवे)।२२॥

अनुवाद :—बिना माँगे ही प्राप्त हुआ केवल पानी तथा जलमय चन्द्रमा की किरणें उसका भोजन था; (उसके भोजन का) साधन वृक्षों के भोजन से भिन्न न था ॥२२॥

संस्कृत में भावार्थ :—पार्वती स्वजीविकोपार्जनार्थम् किमपि यत्नम् न कुरुते स्म, तस्याः भोजनञ्च वृक्षाणामाहारवदतिसाधारणमभूत्। यथा हि वृक्षाः केवलम् वर्षाजलम् चन्द्रकिरणांश्चोपभुज्य जीवनम् धारयन्ति एवमेव सापि याचनाम् विनैव प्राप्तेन जलेनामृतमयैः चन्द्रमसो रश्मिभिश्च व्रतान्तभोजनम् कृतवती। एवम् तया वृक्षवृत्तितपः प्रारब्धमिति कविना प्रदर्शितम् ॥२२॥

निकामतप्ता विविधेन वह्निना
नभश्चरेणेन्धनसंभृतेन सा।
तपात्यये वारिभिरुक्षिता नवै-
भुवा सहोष्माणममुञ्चदूर्ध्वगम् ॥२३॥

टीका :—निकामेति। विविधेन पञ्चविधेनेत्यर्थः। नभश्चरेण खेचरेण। आदित्यरूपेणेत्यर्थ, इन्धनसंभृतेन काष्ठसमिद्धेन वह्निना। निकामतप्ता निकामम् अत्यन्तम् तप्ता सा अम्बिका तपात्यये ग्रीष्मान्ते। प्रावृषीत्यर्थः। नवैः वारिभिः उक्षिता सिक्ता सती भुवा पञ्चाग्नितप्तया सह ऊर्ध्वगम् ऊर्ध्वप्रसृतम् ऊष्माणम् वाष्पम अमुञ्चत्। 'ग्रीष्मोष्मवाष्पा ऊष्माणः' इति यादवः ॥२३॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्वय :—नभश्चरेण इन्धनसंभृतेन विविधेन वह्निना निकामतप्ता सा तपात्यये नवैः वारिभिः उक्षिता (सती) भुवा सह ऊर्ध्वगम् ऊष्माणम् अमुञ्चत् ॥ २३ ॥

टिप्पणी :—नभश्चरेण—नभसि (आकाशे) चरति इति नभश्चरः तेन—जो आकाश में चलता हो अर्थात् सूर्य। इन्धनसम्भृतेन संभृत—(सम्+भृञ्+क्तः) प्रदीप्त—जलाई हुई या जलती हुई। इन्धनेन संभृतः तेन, इधन से जलने वाली यानो साधारण आग। विविधेन—नानाप्रकारेण—नाना प्रकार से अर्थात् उपरोक्त बीसवें श्लोक में वर्णित पाँच प्रकार की आग। कहीं-कहीं द्विविधेन पाठ है जिसका अर्थ है दो प्रकार की। एक तो आकाश की आग (सूर्य), दूसरी ईंधन से जलने वाली आग। यह पाठ ज्यादा शुद्ध प्रतीत होता है। क्योंकि यद्यपि कहने को पाँच प्रकार की आग हैं परन्तु वास्तव में वे दो ही किस्म की हैं। वह्निना—अग्निना। यह शब्द यहाँ पर उन वस्तुओं के वास्ते प्रयुक्त हुआ है जिनमें गरमी हो। निकामतप्ता—निकामम् (अत्यर्थम्) तप्ता निकामतप्ता—अत्यन्त गरम। तपात्यये—तपस्य (ग्रीष्मस्य) अत्ययः (नाशः) तस्मिन्—ग्रीष्म ऋतु बीतने पर। देखिये—"निदाघ उष्णोपगम उष्ण ऊष्मागमस्तपः" इत्यमरः। अत्ययः—(अति+इण+अच्) नाश; बीतना, गायब होना। नवैः—नूतनैः—ताजा, नया, वर्षा का प्रथम जल। उक्षिता (उक्ष्+क्तः+आ)—सिक्ता—गीली; सींची हुई। भुवा सह—पृथ्वी के साथ। भूः—भुवौ—भुवः, भुवम्—भुवौ—भुवः, भुवा—भूभ्याम्—भूभिः आदि रूप चलेगा। सह के साथ में तृतीया विभक्ति होती है। "सहयुक्तेऽप्रधाने" पाणिनि २. ३. १९. ऊर्ध्वगम् (गम्+ड=गः) ऊर्ध्वम् गच्छतीति तम्, जो ऊपर की ओर जाता है। ऊष्माणम्—गरमी, उष्णताम्। जिस प्रकार वर्षा की प्रथम

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जल-बूँदों के पड़ने से पृथ्वी से भाप निकलती है उसी प्रकार वह (भाप) पार्वती के शरीर से भी निकली जो (शरीर) पाँचों आगों से अत्यन्त तपाया हुआ था। इससे यह प्रकट होता है कि पार्वती का शरीर अत्यन्त गरम हो गया था। वह इतना गरम हो गया था कि पानी को भाप में परिणत कर देता था।

वाच्य परिवर्तन :—नभश्चरेण इन्धनसंभृतेन विविधेन वह्निना निकामतप्तया तया तपात्यये नवैः वारिभिः उक्षितया भुवा सह ऊर्ध्वगः ऊष्मा अमुच्यत ॥ २३ ॥

अनुवाद :—आकाश में चलने वाली तथा ईंधन से जलनेवाली नाना अग्नियों से अत्यधिक तपायी हुई वह (पार्वती) ग्रीष्म ऋतु के अन्त में (वर्षा के) प्रथम पानी से सींची हुई पृथ्वी के साथ ऊपर को जाने वाली गर्मी (अर्थात् भाप) छोड़ती थी ॥ २३ ॥

संस्कृत में भावार्थ :—यथा ग्रीष्मर्तौ सूर्यतापेनाभितप्ता पृथ्वी वर्षारम्भे जलसिक्ता सती वाष्पं मुञ्चति तच्च पृथिव्या ऊर्ध्वं याति, तथैव पंचाग्नितप आचरन्ती पार्वती सूर्यातपेन चतसृषु दिक्षु स्थापितैर्वह्निभिश्च निकामम् तप्ता वर्षारम्भे जलसिक्ता सती ऊर्ध्वगामिवाष्पम् त्यजति स्म ॥ २३ ॥

स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः
पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः ।
वलीषु तस्याः स्खलिताः प्रपेदिरे
चिरेण नाभिं प्रथमोदबिन्दवः ॥ २४ ॥

टीका :—स्थिता इति। प्रथमोदबिन्दवः उदकस्य बिन्दवः उदकबिन्दवः। मन्थौदन०, इत्यादिनोदकशब्दस्योदादेशः। प्रथमे उद-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

बिन्दवः। प्रथमविशेषणाद्बिन्दूनाम् विरलत्वम् बहुवचनान्नातिविरलत्वम् च गम्यते। तथा च चिरत्वनाभ्यन्तरगमनयोर्निर्वाहः तस्याः पार्वत्याः पक्ष्मसु नेत्रलोमसु क्षणम् स्थिताः स्थितिम् गताः। स्थिता इत्यनेन पक्ष्मणाम् सान्द्रत्वम् क्षणमिति स्नैग्ध्यम् च गम्यते। अनन्तरम् ताडिताधरास्त डतो व्यथितोऽधर ओष्ठो यैस्ते तथोक्ताः। एतेनाधरस्य मार्दवम् गम्यते। ततः पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः पयोधरयोः स्तनयोः उत्सेधे उपरिभागे निपातेन पतनेन चूर्णिताः जर्जरिताः। कुचकाठिन्यादिति भावः। तदनु वलीषु उदररेखासु स्खलिताः। निम्नोन्नतत्वादिति भावः। इत्थम् चिरेण न तु शीघ्रम्। प्रतिबन्धबाहुल्यादिति भावः। नाभिम् प्रपेदिरे प्रविष्टाः। न तु निर्जग्मुः। एतेन नाभेर्गाम्भीर्यम् गम्यते। अत्र प्रतिपदमर्थवत्वात्परिकरालङ्कारः ॥२४॥

अन्वय :—प्रथमोदबिन्दवः क्षणम् तस्याः पक्ष्मसु स्थिताः ताडिताधराः पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः वलीषु स्खलिताः नाभिम् चिरेण प्रपेदिरे ॥२४॥

टिप्पणी :—प्रथमोदबिन्दवः प्रथमे (नवाः) उदकस्य (जलस्य) बिन्दवः (कणाः) प्रथमोदबिन्दवः—प्रथम जल की बूँदें। जब मथ, ओदन, सक्त बिन्दु इत्यादि परे रहते हैं तो उदक का विकल्प से उद हो जाता है। इसका सूत्र है "मन्थौदनसक्तु बिन्दुवज्रभारहारवीवधगाहेषु" पा० ६. ३. ६०। पक्ष्मसु—नेत्रलोमसु, बरौनियाँ (आँखों के बाल)। यह पक्ष्मन् शब्द की सप्तमी का बहुवचन है। पक्ष्म – पक्ष्मणी—पक्ष्माणि। इत्यादि रूप होगा। स्थिताः—रुकते थे। इससे यह प्रकट होता है कि उसकी बरौनियाँ बहुत घनी थीं और यह सुन्दरता का लक्षण है। क्षणम् शब्द से यह भी सूचित होता है कि वे (बरौनियाँ) चिकनी भी थीं। ताडिताधराः–

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ताडित: अधरो यैस्ते—जो नीचे के ओठ से टकराते थे। पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः—उत्सेधः (उत्+सिध्+घञ्) उन्नतिः—उँचाई; बड़ाई। पयोधरयोः (स्तनयोः) उत्सेधे (उन्नतप्रदेशे)। निपातेन चूर्णिताः—जो उसके स्तन की ऊँचाई पर गिरने से टूट जाते थे। टुकड़े-टुकड़े हो जाते थे। इससे प्रकट होता है कि उसके स्तन कड़े तथा ऊँचे थे। वलीषु—उदरस्थितासु रेखासु—पेट की बलों (लकीरों) में। स्खलिताः—निरुध्य पतिताः—गिर कर। नाभिम् चिरेण—विलम्बेन—बड़ी देर के बाद। यह अव्यय है न कि चिर शब्द का तृतीया का ए० व०। पानी की बूँदें बड़ी देर के बाद उसकी नाभि में पहुँचती थीं। क्योंकि मार्ग में उन्हें इतनी रुकावटों का सामना करना पड़ता था। प्रपेदिरे—(प्र+पद्+लिट्) प्राप्ताः—पहुँचते थे। पद् धातु का रूप पद्यते, पद्येते, पद्यन्ते। अपद्यत (लङ्), पत्स्यते (लृट)। अपादि। इस श्लोक में कवि ने बरसा के जल का, जो पार्वती के ऊपर पड़ता था, स्वाभाविक मार्ग बताया है। जब पार्वती खुले स्थान में बैठती थी तब गिरने वाले जल का यह वर्णन है। इसी समय कवि को पार्वती के भिन्न-भिन्न अंगों की सुन्दरता वर्णन करने का मौका भी मिल गया। यहाँ पर 'परिकर' अलङ्कार है। 'उक्तैः विशेषणैः साभिप्रायैः परिकरो मतः' साहित्यदर्पण। जहाँ पर एक के बाद दूसरे कई साभिप्राय विशेषण प्रयुक्त हों वहाँ यह अलंकार होता है।

वाच्य परिवर्तन :—प्रथमोदबिन्दुभिः क्षणम् तस्याः पक्ष्मसु स्थितैः ताडिताधरैः पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णितैः वलीषु स्खलितैः नाभिं चिरेण प्रपेदे ॥२४॥

अनुवाद :—(वर्षा) जल की प्रथम बूँद कुछ देर के लिये उसकी। आँखों के बालों में ठहर कर (फिर) नीचे के ओठ से

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

टक्कर खाकर (तत्पश्चात्) स्तनों की ऊँचाई पर गिरने से छिन्न भिन्न हुई (इसके बाद पेट की) बलों में फिसलती हुई नाभि में बड़ी देर में पहुँचती थीं ।।२४।।

संस्कृत में भावार्थ :—यदा हि तपः कुर्वन्ती पार्वती असंवृते स्थाने निषीदति स्म तदा तदुपरि निपतिता वर्षाजलस्य बिन्दवः पूर्वम् तदक्षिलोमसु निपत्य कंचित्कालम् तत्र विश्रामम् प्रापुः । ततो भ्रष्टा अधरे पतिताः, ततो निपत्य कुचयोश्छिन्नताम् गताः पुनः निम्न-स्थलाभिमुखीभूतास्तदुदरप्रदेशस्य वलीषु स्खलन्तो दीर्घकालेन तस्या नाभिं प्राप्ताः । तस्याश्च गाम्भीर्यात्तत्रैव स्थितिमकुर्वन् । एतेन पार्वत्याः नेत्रलोम्नाम् घनत्वम् , अधरस्य सौकुमार्यम् , स्तनयोः काठिन्यम् , उत्तरप्रदेशस्यानिम्नोन्नतत्वम् , नाभेश्च गाम्भीर्यं व्यज्यते ।।२४।।

शिलाशयां तामनिकेतवासिनीं
निरन्तरास्वन्तरवातवृष्टिषु ।
व्यलोकयन्नुन्मिषितैस्तडिन्मयै-
र्महातपःसाक्ष्य इव स्थिताः क्षपाः ।।२५।।

टीका :—शिलाशयामिति । निरन्तरासु नीरन्ध्रासु अन्तरे मध्ये वातो यासाम् तादृश्यो या वृष्टयस्तासु अन्तरवातवृष्टिषु । न निकेते गृहे वसतीति अनिकेतवासिनीम्—अनावृतदेशवासिनीमित्यर्थः शिलायाम् शेते इति तां शिलाशयाम् शिलातलशायिनीम् । 'अधिकरणे शेतेः' इत्यच् प्रत्ययः । ताम् पार्वतीम् महातपःसाक्ष्ये साक्षाद्द्रष्टा साक्षी । 'साक्षाद्द्रष्टरि संज्ञायाम्' इतीनिः प्रत्ययः । तस्य कर्म साक्ष्यम् । महातपसः साक्ष्ये स्थिताः क्षपाः तडिन्मयैः विद्युद्रूपैः उन्मिषितैः अवलोकनैः व्यलोकयन् इव । इवेति चक्षुषा विलोकनमे-वोत्प्रेक्ष्यते । साक्ष्यम् तु 'आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च, द्यौर्भूमिरापो

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हृदयम् यमश्च । अहश्च रात्रिश्च उभे च संध्ये, धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम् ।' इति प्रमाणसिद्धत्वान्नोत्प्रेक्ष्यमित्यनुसंधेयम् ॥२५॥

अन्वय :—निरन्तरासु अन्तरवातवृष्टिषु अनिकेतवासिनीम् शिलाशयाम् ताम् महातपस्साक्ष्ये स्थिताः क्षपाः तडिन्मयैः उन्मिषितैः व्यलोकयन् इव ।२५॥

टिप्पणी :—निरन्तरासु—निर्गतम् (दूरीभूतम्) अन्तरम् (मध्यम्) याभ्यः ताः तासु—लगातार गिरते हुए। यह वृष्टिषु का विशेषण है। अन्तरवातवृष्टिषु—अन्तरे (मध्ये) वातो (वायु) यासाम् ताः अन्तरवाताः—हवा के साथ साथ । अन्तरवाताश्च ताः वृष्टयः इति अन्तरवात-वृष्टयः (कर्मधारय) तासु—हवा के झोंके के साथ होने वाली वृष्टि । अनिकेतवासिनीम् । वासिनी (वस + णिनि + ङीप्) रहती हुई; न निकेते वसतीत्यनिकेतवासिनी—घर में न रहती हुई । खुले स्थान में रहने वाली । शिलाशयाम् शिलायां शेते इति शिलाशया ताम्, जो पत्थर पर सोती थी। 'अधिकरणे शेतेः' पा० ३. २. १५ से 'शी' धातु (सोना) में अच् प्रत्यय जोड़ने से शयः बना। तपस्या करते समय पार्वती को इस प्रकार का जीवन व्यतीत करना उचित था। महातपःसाक्ष्ये—साक्ष्यम् साक्षिणः कर्म साक्ष्यम् (साक्षिन् + ष्यञ्), शहादत, गवाही । "साक्षाद्-द्रष्टरि संज्ञायाम्" पा० ५. २. ९१ से साक्षिन् शब्द बना। साक्षात् अपनी आँखों से देखने के अर्थ में साक्षी शब्द बनता है। महतः तपसः साक्ष्ये इति महातपःसाक्ष्ये—महा (कठोर) तपस्या की साक्षी। स्थिताः काम करती हुई। क्षपाः—रात्रयः—रातें। "निशा निशीथिनी रात्रिस्त्रियामा क्षणदा क्षपा" इत्यमरः। जब पार्वती तपस्या करती थीं तब उनकी सखियाँ भी वहाँ न थीं। अतः रात्रियाँ ही उनकी तपस्या की साक्षी थीं। यह कथन बहुत युक्तिसंगत है। तडिन्मयैः (तडित् +

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मयट्) विद्युद्रूपैः—बिजली का बना हुआ; "तडित्सौदामिनी विद्युच्चञ्चला चपला अपि" इत्यमरः । "तत्प्रकृतिवचने मयट्" पा० ५. ४. २१ से मयट् प्रत्यय लगा। जहाँ किसी वस्तु से किसी का बनना बताया जाता है वहाँ पर यह प्रत्यय लगता है। रात्रि के आँखें तो होतीं नहीं इसी से बिजली को उसकी आँख बताया गया है। उन्मिषितैः—(उत्+मिष्+क्त) अवलोकनैः—देखने से। आँखों से। व्यलोकयन्—देखती थीं। इव उत्प्रेक्षा के लिये प्रयुक्त हुआ है। बिजली की चमक को रात की आँख माना है।

वाच्य परिवर्तन:—निरन्तरासु अन्तरवातवृष्टिषु अनिकेतवासिनी शिलाशया सा महातपःसाक्ष्ये स्थिताभिः क्षपाभिः तडिन्मयैः उन्मिषितैः व्यलोक्यत इव ॥ २५ ॥

अनुवाद:—लगातार होने वाली, हवा के झोंकों से युक्त वर्षा में खुले स्थान में रहने वाली, पत्थर की चट्टान पर सोने वाली उस (पार्वती) को, उसकी कठिन तपस्या के साक्षी का कार्य करती हुई रात्रियाँ मानों विद्युत् रूप दृष्टियों से देखती थीं ॥ २५ ॥

संस्कृत में भावार्थ:—प्रावृषि सततं वर्षासु जायमानासु, प्रबलवायौ प्रवाति, विद्युत्सु चाभिद्योतमानास्वपि समाधिमग्ना पार्वती शिलास्वेवानावृतप्रदेशे निषीदति स्म। तादृशे कालेऽन्यदर्शकाभावात् कविरुत्प्रेक्षते यद्रात्रय एव विद्युद्रूपैर्नेत्रैः साक्षिवत् तामवलोकयन् ॥ २५ ॥

निनाय साऽत्यन्तहिमोत्किरानिलाः
सहस्यरात्रीरुदवासतत्परा ।
परस्पराक्रन्दिनि चक्रवाकयोः
पुरो वियुक्ते मिथुने कृपावती ॥ २६ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

टीका :—निनायेति। सा पार्वती । अत्यन्तहिमोत्किरानिलाः उत्किरन्ति क्षिपन्ति इत्युत्किराः। इगुपधज्ञा-इत्यादिना कः। अत्यन्तम् हिमानामुत्किराः अनिला यासु ताः सहस्यरात्रीः पौषरात्रीः। 'पौषेतिष्य-सहस्यौ द्वौ' इत्यमरः। उदवासतत्परा उदके वास उदवासः 'पेषंवास वाहनादिषु च' इत्युदादेशः। उदवासे तत्परा तथा। परस्पराक्रन्दिनि परस्परमाक्रन्दिन्योन्यमाक्रोशिनि । पुरः अग्रे। वियुक्ते विरहिणि वियोगं प्राप्ते इति यावत्। चक्रवाकी च चक्रवाकश्च चक्रवाकौ तयोः चक्रवाकयोः मिथुनं द्वन्द्वे कृपावती सती निनाय। दुःखिषु कृपालुत्वम् महताम् स्वभाव इति चक्रवाकमिथुने कृपा न तु कामितयेति वाच्यानव-काशः। 'अप्सु वासस्तु हेमन्ते क्रमशो वर्धयेत्तपः'। इति मनुः ॥२६॥

अन्वयः—सा अत्यन्तहिमोत्किरानिलाः सहस्यरात्रीः उदवास-तत्परा पुरः वियुक्ते परस्पराक्रन्दिनि चक्रवाकयोः मिथुने कृपावती (सती) निनाय॥ २६ ॥

टिप्पणी :—अत्यन्त-हिमोत्किरानिलाः—उत्किराः (उत्+कृ +कः) उत्किरन्ति (उत्क्षिपन्ति) इत्युत्किराः—बरसाने वाली। "इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः" पा० ३. १. १६५ से कः प्रत्यय हुआ। अत्यन्तम् हिमानाम् तुषाराणाम् उत्किराः अनिलाः यासु ताः अत्यन्त-हिमोत्किरानिलाः—अतिशय बरफ बरसाने वाली हवा है जिसमें ऐसी (रात्रि)। यह रात्रीः का विशेषण है। सहस्यरात्रीः—पौषमासस्य रात्रीः, पूस के महीने की रात, यहाँ पर जाड़े के अर्थ में है। "पौषे तिष्यसहस्यौ द्वौ" इत्यमरः। उदवासतत्पराः उदके वासः तत्र तत्परः (स परो यस्याः सा तत्परा) पानी में खड़े रहने की आदी। पानी में खड़ी रहने वाली। उदक का उद हो जाता है। "पेषं वासवाहना-दिषु" पा० ६. ३. ५७। इसी प्रकार उदधि बना। जाड़े में जल में खड़ा होना एक प्रकार की तपस्या है। पुरः—सामने। वियुक्ते—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(वि + युज् + क्त) विरहिते, अलग हुए । परस्पराक्रन्दिनि परस्परम् एक सर्वनाम है और "कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये", इस सूत्र से बना । जब 'आपस' अर्थ का बोध होता है तब अन्य, पर, इतर और उत्तर ये सर्वनाम द्वित्व हो जाते हैं और प्रथम भाग में स् आ जाता है और समास होने पर उसका लोप नहीं होता। यह प्रायः एकवचन में और अव्यय के रूप में प्रयुक्त होता है। परस्परम् आक्रन्दतीति परस्पराक्रन्दि तस्मिन् (आ + क्रन्द + णिनि) एक दूसरे के वास्ते रोते (चिल्लाते) हुए। चक्रवाकयोः—चक्रवाकी च चक्रवाकश्च चक्रवाकौ तयोः चक्रवाकयोः—चकवा और चकवी का। यहाँ पर एकशेष द्वन्द्व समास है। जहाँ पर स्त्रीलिङ्ग व पुंलिङ्ग का समास होता है वहाँ केवल पुंलिङ्ग ही रह जाता है। उसका सूत्र है 'पुमान् स्त्रिया" पा० १. २. १६७. रात को चकवा चकवी बिछुड़ जाते हैं और एक दूसरे के वास्ते रोते हैं। मिथुने—युगले, जोड़ा। कृपावती—(कृपा + मतुप + ङीप्) दयावती, दया करने वाली। जब मकार या अकार पर खतम होने वाले शब्दों में मतुप् जोड़ा जाता है तो मतुप् के म को व हो जाता है। निनाय—यापयामास (नी + लिट्) बिताया।

वाच्य परिवर्तन :—तया अत्यन्तहिमोत्किरानिलाः सहस्यरात्रयः उदवासतत्परया पुरः वियुक्ते परस्पराक्रन्दिनि चक्रवाकयोः मिथुने कृपावत्या (सत्या) निन्यिरे ॥ २६ ॥

अनुवाद :—वह (पार्वती) अत्यधिक बर्फ बरसाने वाली वायु से युक्त पौष मास की रात्रियों को पानी में खड़ी हुई, (अपने) सामने के विरही, एक दूसरे के लिये चिल्लाते हुए चक्रवाक के जोड़े के लिये दया का अनुभव करती हुई, बिताती थी ॥ २६ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

संस्कृत में भावार्थ :—ग्रीष्मे प्रावृषि च पार्वतीकृतम् तपो वर्णयित्वा कविस्तद्धैमन्तमाचरणम् दर्शयति । पार्वती तुषारकण-पूरितवातप्रचुरासु पौषमासस्य शीतनिशास्वपि जले समाधिमातिष्ठति स्म । तासु निशासु चक्रवाकयोर्मिथुनादृते नान्यः कोऽपि तत्समीपवर्त्यासीत्—चक्रवाकयोर्युगलम् च विरहवेदनापीडितत्वात् अन्योन्यमाह्वयति स्म—पार्वती च तस्मिन् युगले दयामन्वभूत् ।।२६।।

मुखेन सा पद्मसुगन्धिना निशि
प्रवेपमानाधरपत्रशोभिना ।
तुषारवृष्टिक्षतपद्मसंपदाम्
सरोजसंधानमिवाकरोदपाम् ।।२७।।

टीका :—मुखेनेति । सा पार्वती निशि रात्रौ पद्मसुगन्धिना पद्मवत्सुगन्धिना सुरभिणा । 'गन्धस्येत्'—इत्यादिनेकारः । प्रवेपमानाधरपत्रशोभिना प्रवेपमानः कम्पमानोऽधर ओष्ठ एव पत्रम् दलम् तेन शोभते इति तथोक्तेन मुखेन । तुषारवृष्टिक्षतपद्मसंपदाम् तुषारवृष्ट्या तुहिनवर्षेण क्षताः नाशिताः पद्मसंपदो यासाम् तासाम् अपाम् सरोजसंधानम् पद्मसंघट्टनम् अकरोद् इव । इत्युत्प्रेक्षालंकारः पद्मान्तरम् तुहिनेनोपहन्यते तन्मुखपद्मम् तु न तथेति व्यतिरेकालंकारो व्यज्यते इत्युभयोः संकरः ।।२७।।

अन्वय :—सा निशि पद्मसुगन्धिना प्रवेपमानाधरपत्रशोभिना मुखेन तुषारवृष्टिक्षतपद्मसंपदाम् अपाम् सरोजसंधानम् अकरोद् इव ।। २७ ।।

टिप्पणी :—पद्मसुगन्धिना—शोभनो गन्धो यस्मिन् तत् (सुरभि)—महकने वाला । उत्, पूति, और सु जब पहले लगा रहता है तब बहुव्रीहि समास में गन्ध का गन्धि हो जाता है । "गन्धस्येदुत्पूतिसु

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सुरभिभ्य:" पा० ५. ४. १३५. पद्मेन इव सुगन्धिना पद्म-सुगन्धिना । जो कमल के समान खुशबूदार था । प्रवेपमानाधरपत्र-शोभिना प्रवेपमान:—(प्र+वेप्+शानच्) प्रकम्पमान:—हिलता हुआ । अधरपत्रम्—अधर: एव पत्रम्—पत्तों के समान ओठ, कमल की पंखुड़ी । प्रवेपमानेन अधरपत्रेण शोभते इति प्रवेपमानाधरपत्रशोभि (शुभ्+णिनि:) तेन, काँपते हुए (कमल के) पत्ते रूपी ओठ से सुशोभित । सारे मुँह की उपमा कमल से दी गई है और ओठों की उपमा कमल की पंखुड़ियों से दी गई है । तुषारवृष्टिक्षतपद्मसंपदाम्—तुषारस्य (तुहिनस्य, हिमस्य) वृष्ट्या क्षता: नाशिता: पद्मान्येव सम्पदो यासाम् ता: तासाम्, कुहरे की वर्षा से नष्ट हो गई कमल रूपी सम्पदा जिसकी । यह अपाम् का विशेषण है । अप् सदा स्त्रीलिङ्ग और बहुवचन में होता है । आप: । अप: । अद्भि: । अद्भ्य: । अपाम् । अप्सु । देखिये—"आप: सुमनसो वर्षा: अप्सरा: सिकता: समा: एते स्त्रियां बहुत्वे स्युरेकत्वेप्युत्तरत्रयम्" । सरोजसन्धानम् । सरोजम् सरसि जातम् सरोजम् (जन् + ड) ¹कमल । सरोजानाम् सन्धानम् (संघट्टनम्) सरोजसन्धानम्—कमलों की परम्परा (सिलसिला), जल का कमल पाले से सूख गया था और उसके कमल-सरीखे मुँह की छाया जल में पड़ती थी, वही उनका स्थानापन्न थी । कहीं सन्धानम् के बजाय सन्तानम् पाठ है । उत्प्रेक्षा अलंकार के वास्ते है ।

वाच्य परिवर्तन :—तया निशि पद्मसुगन्धिना प्रवेपमानाधरपत्रशोभिना मुखेन तुषारवृष्टिक्षतपद्मसंपदाम् अपाम् सरोजसन्धानम् अक्रियत इव ॥ २७ ॥

अनुवाद :—वह (पार्वती) रात्रि में कमल के समान सुगन्धियुक्त, काँपते हुए (कमल के) पत्ते रूपी नीचे के ओठ से सुशोभित

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मुख के द्वारा, कुहरे की वर्षा से नष्ट हुए कमलों वाले पानी में मानों कमलों की परम्परा (सिलसिले) को बनाती थी ॥ २७ ॥

संस्कृत में भावार्थ :—पार्वत्या मुखम् कमलवत् सुगन्धि-पूर्णमासीत् । तदीयः कम्पमानोऽधरोष्ठश्च कमलदलतुल्यः शोभते स्म । तस्मात्तन्मुखं रात्रौ जले प्रतिबिम्बताम् गतं हिमपातेन नष्टानाम् कमलानाम् स्थानपूर्त्तिमिवाकरोत्—कमलरहितमपि जलम् तन्मुख-प्रतिबिम्बैः कमलपूर्णमिवाभासतेत्यर्थः ॥ २७ ॥

स्वयंविशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता
परा हि काष्ठा तपसस्तया पुनः ।
तदप्यपाकीर्णमतः प्रियंवदां
वदन्त्यपर्णेति च तां पुराविदः ॥ २८ ॥

टीका :—स्वयमिति । स्वयंविशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता—स्वयं विशीर्णानि स्वतश्च्युतानि द्रुमपर्णान्येव वृत्तिर्जीवनम् यस्य तस्य भावस्तत्ता तपसः पराकाष्ठा परमुत्कर्षो हि । 'काष्ठोत्कर्षे स्थितौ दिशि' इत्यमरः । 'अतः पर्णापाकरणाद्धेतोः' प्रियम् वदतीति प्रियंवदा ताम् । 'प्रियवशे वदः खच्,' इति खच् प्रत्ययः । 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' इति मुमागमः । ताम् पार्वतीम् पुराविदः पुराणज्ञास्तपःकरणसमयेऽविद्यमानम् पर्णभक्षणम् यस्याः सा अपर्णा इति वदन्ति च । नामान्तरं । समुच्चयार्थश्चकारः । स्वयं प्रियंवदाः परेषामपि प्रियवादभाजनानि भवन्तीति भावः । अत्र अपर्णाम् इत्यपि पाठ इतिशब्दाभिहिते द्वितीयानुपपत्तेः । यथाह वामनः—'निपातेनाप्यभिहिते कर्मणि न कर्मविभक्तिः परिगणनस्य प्रायिकत्वात्' इति ॥ २८ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्वय :—हि स्वयंविशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता तपसः परा काष्ठा। तया पुनः तदपि अपाकीर्णम्, अतः पुराविदः प्रियंवदाम् ताम् अपर्णा इति च वदन्ति ॥ २८ ॥

टिप्पणी :—स्वयम् विशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता—विशार्ण (वि + शॄ + क्तः), निपतितानि, टूटे हुए। गिरे हुए। क्त के स्थान में त हो जाता है, फिर त का न हो जाता है और न का ण हो जाता है। और शॄ की ॠ को ईर् आदेश हो जाता है। इसी प्रकार जीर्ण, तीर्ण इत्यादि बनते हैं। वृत्तिता—वृत्तेः भावः वृत्तिता (वृत्ति + ता) जीविका का साधन। स्वयम् विशीर्णानि द्रुमाणाम् पर्णान्येव (पत्राण्येव) वृत्तिः यस्मिन्, तस्य भावः स्वयंविशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता—स्वयं गिरे हुए पेड़ के पत्ते ही जीविका के साधन हैं। पेड़ों को दुःख पहुँचने के डर से वह उनके पत्तों को नहीं तोड़ती थी। अपने आप से गिरे हुए पत्तों को खाकर वह जीविका निर्वाह करती थी। परा—चरमा, उत्तमा—अन्तिम (सीमा) सब से ऊँची। काष्ठा—सीमा। "काष्ठा उत्कर्षे स्थितौ दिशि" इत्यमरः, तपस्या की अन्तिम अवस्था। इतनी कठोर तपस्या की कि उसकी कठोरता कीं हद कर दी। अपाकीर्णम् (अप + आ + कॄ + क्तः) त्यक्तम् त्याग दिया गया। छोड़ दिया गया। शीर्ण की तरह कीर्ण भी बनता है। तुलसीदास ने भी पार्वती की कठोर तपस्या का वर्णन करते हुए लिखा है "पुनि परिहरेउ सुखाने पर्णा, उमा नाम तब भयउ अपर्णा।" पुराविदः (विद् + क्विप्) पुरा (वृत्तम्) विदन्ति (जानन्ति) इति पुराविदः, पुरानी बातां के जानने वाले अर्थात् इतिहास जानने वाले। पुराविदः का रूप भूभृत् की तरह चलेगा—पुराविद्, पुराविदौ, पुराविदः। प्रियंवदाम्—(प्रिय + वद् + खच् + टाप्) प्रियम् मधुरं वदतीति प्रियंवदा तां प्रियंवदाम्—प्रिय वचन बोलने वाली (वद् + खच्) "प्रियवशे वदः खच्" पा० ३.२.३८.

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

से प्रत्यय हुआ और "अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्" पा० ६.३.६७ से म् आया, उसको अनुनासिक हो गया, प्रियंवदा बना। यद्यपि पार्वती ने इतना कष्ट उठाया तथापि उसने मीठा वचन बोलना न छोड़ा। अपर्णा—न पर्णानि यस्याः सा अपर्णा, जिसने पत्ते खाना भी छोड़ दिया हो। अपर्णा पार्वती जी का नाम है। "अपर्णा पार्वती दुर्गा मृडानी चण्डिकाम्बिका" इत्यमरः। "चतुर्थे त्यक्तपर्णा च अपर्णाख्यामवाप सा" शिवपुराणम्।

वाच्य परिवर्तन :—हि स्वयंविशीर्णद्रुमपर्णवृत्तितया तपसः परया काष्ठया (भूयते), सा पुनस्तदपि अपाकीर्णवती, अतः पुराविद्भिः प्रियंवदा सा अपर्णा इति च उच्यते॥ २८॥

अनुवाद :—अपने आप गिरे हुए पेड़ों के पत्तों से जीविका-निर्वाह तप की अन्तिम श्रेणी है। पर उसने वह भी छोड़ दिया, इसलिये पुराणज्ञ उस मधुरभाषिणी को 'अपर्णा' कहते हैं॥ २८॥

मृणालिकापेलवमेवमादिभि-
व्रतैः स्वमङ्गम् ग्लपयन्त्यहर्निशम्।
तपःशरीरैः कठिनैरुपार्जितम्
तपस्विनाम् दूरमधश्चकार सा॥ २९॥

टीका :—मृणालिकेति। मृणालिकापेलवं पद्मिनीकन्दकोमलम् स्वम् स्वकीयम् अंगम् शरीरम् एवमादिभिः एवमुक्तप्रकारतोयाग्नि-मध्यवासव्रतमादिर्येषाम् तैः व्रतैः अहश्च निशा च अहर्निशम्। समाहारे द्वन्द्वैकवद्भावः। अत्यन्तसंयोगे द्वितीया। ग्लपयन्ती कशोयन्ती सा पार्वती। कठिनैः क्लेशसहैरित्यर्थः। शरीरैरुपार्जितम् संपादितम् तपस्विनाम् ऋषीणाम् तपः दूरम् अत्यन्तम् अधश्चकार।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अतिशिश्ये इत्यर्थः। तपस्विभिरप्येवम् तपः कर्त्तुम् न शक्यत इति तात्पर्यार्थः। २६॥

अन्वय :—एवमादिभिर्व्रतैः मृणालिकापेलवम् स्वम् अङ्गम् अहर्निशम् ग्लपयन्ती सा तपस्विनाम् कठिनैः शरीरैः उपार्जितम् तपः दूरम् अधः चकार ॥२६।

टिप्पणी :—एवमादिभिः—एवम् आदिः येषाम् ते एवमादयस्तैः एवमादिभिः, इस प्रकार से। एवम् से अर्थ है आग में बैठना, जल में बैठना, खुले स्थान में बरसा में बैठना। ऊपर कही हुई तपस्यायें। व्रतैः—नियमैः, व्रतों से, नियमों से। मृणालिकापेलवम्—मृणालिकामिव (बिसतन्तुम् इव) पेलवम् (कोमलम्) कमलतन्तु के समान कोमल। अहर्निशम्—अहश्च निशा च अहर्निशम्, दिन-रात (यह समाहार द्वन्द्व समास है। यह हमेशा एक वचन तथा नपुं० होता है)। ग्लपयन्ती—(ग्लै+णिच्+शतृ) श्रान्तिं नयन्ती, थकाती हुई। तपस्विनाम् (तपस+विनिः), मुनीनाम्, मुनियों का। उपार्जितम्— (उप+अर्ज्+क्तः) संपादितम् सञ्चितम्—इकट्ठा किया हुआ, संचित। दूरम्—अत्यर्थम् बहुत ज्यादा। यह क्रियाविशेषण है। अधश्चकार—तिरश्चकार, तुच्छ कर दिया, मात कर दिया, अर्थात् बढ़ गई। नीचा कर दिया। अपने कोमल शरीर से पार्वती ने ऐसी कठोर तपस्या की जैसी कि कठोर शरीर वाले तपस्वी भी नहीं करते।

वाच्य परिवर्तन :—एवमादिभिः व्रतैः मृणालिकापेलवम् स्वम् अंगम् अहर्निशम् ग्लपयन्त्या तया तपस्विनाम् कठिनैः शरीरैः उपार्जितम् तपः दूरम् अधः चक्रे ॥२६॥

अनुवाद :—इस प्रकार के (कठोर) नियमों से, बिस-तन्तुओं के समान कोमल अपने शरीर को रात-दिन थकाती हुई उसने

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(अन्य) तपस्वियों के कठोर शरीरों से किये हुए तप को बहुत अधिक नीचा कर दिया (अर्थात् उनसे कहीं बढ़कर तपस्या की) ।२६॥

संस्कृत में भावार्थ :—पूर्वोक्तप्रकारैरन्यैश्च कठिननियम-पालनैः बिसतन्तुवत्कोमलम् स्वकीयम् देहम् रात्रिंदिवम् कृशताम् नयन्ती पार्वती स्वकोमलशरीरेणैवान्यतपस्विभिस्तेषां कठोरदेहैः कृतात् तपसो विशेषतरम् तपश्चकार। यद्यपि तस्याः देहो मृदुरासीत् परं तस्यास्तपस्यान्येषाम् तपस्विनाम् तपांस्यतिरेते स्म इति तात्पर्यार्थः ॥२६।

'सुराः समुद्वीक्ष्य नगेन्द्रकन्यया कृतं तपः शंभुवशक्रियाक्षमम् ।
ययाचिरे तं प्रणिपत्य दुःखिताः पतिं चमूनां सुतमाजिहेतुम् ॥

'सोऽहं तृष्णातुरे वृष्टिं विद्युत्वानिव चातकैः।
अरिविप्रकृतैर्देवैः प्रसूतिं प्रति याचितः ॥'

अथाजिनाषाढधरः प्रगल्भवाग्
ज्वलन्निव ब्रह्ममयेन तेजसा।
विवेश कश्चिज्जटिलस्तपोवनं
शरीरबद्धः प्रथमाश्रमो यथा ॥३०॥

टीका :—अथेति। अथ अनन्तरम् अजिनाषाढधरः अजिनम् कृष्ण-मृगत्वक् आषाढः प्रयोजनमस्येत्याषाढः पालाशदण्डः। 'पालाशो दण्ड आषाढः' इत्यमरः। 'विशाखाषाढादण्मन्थदण्डयोः' इत्यण्-प्रत्ययः तयोर्धरस्तथोक्तः। प्रगल्भवाक् प्रौढवचनः, ब्रह्ममयेन वैदिकेन तेजसा। कश्चिद् अनिर्दिष्टः जटिलः जटावान्। ब्रह्मचारीति शेषः पिच्छादित्वादिलच्प्रत्ययः। शरीरबद्धः बद्धशरीरः। शरीरवानित्यर्थः। आहिताग्न्यादिषु पाठात्साधुः। प्रथमाश्रमः यथा ब्रह्मचर्याश्रम इव।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यथाशब्द इवार्थे। तपोवनम्। देव्या इति शेषः। विवेश प्रविष्टवान् ॥३०॥

अन्वय :—अथ अजिनाषाढधरः प्रगल्भवाग् ब्रह्ममयेन तेजसा ज्वलन्निव कश्चिज्जटिलः शरीरबद्धः प्रथमाश्रमः यथा तपोवनं विवेश ॥३०॥

टिप्पणी :—अथ तदनन्तरम्—इसके बाद जब पार्वती मुनियों से भी ज्यादा कठोर तप कर चुकी। अथ का प्रयोग नया प्रसंग शुरू करने के लिये हुआ है। "मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्नकार्त्स्न्येष्वथो अथ" इत्यमरः। अजिनाषाढधरः—अजिनम्—कृष्णमृगचर्म, काले मृग की खाल। "अजिनम् कृत्ति चर्म" इत्यमरः। आषाढः (अषाढ+अण्) पलाशदण्डः—पलाश वृक्ष की छड़ी। "पालाशो दण्ड आषाढ" इत्यमरः। इसको इस नाम से इस वास्ते पुकारते हैं कि अषाढ के महीने में कुछ धार्मिक कार्य करने के वास्ते तपस्वी लोग इसे धारण करते हैं। "विशाखाषाढादण् मन्थ-दण्डयोः" पा० ५. १. १०० से अण् प्रत्यय हुआ। धरः (धृ+अच्) पहने हुए। अजिनम् च आषाढश्च अजिनाषाढौ, तयोर्धरः अजिनाषाढधरः, काला मृगचर्म पहने हुए तथा एक पलाश दण्ड धारण किये हुए। यह व्यक्ति जो पार्वती के आश्रम में आया था, शिव को छोड़कर दूसरा कोई नहीं था। जिससे कोई उनको पहचान न सके इसलिये वे ब्राह्मण तपस्वी ब्रह्मचारी का रूप धारण कर आये थे। अजिन तथा पलाशदण्ड ये दोनों ब्राह्मण तपस्वी के लिये धारण करना लिखा गया है। 'हारिणमैणेयम् वा कार्ष्णम् वा ब्राह्मणस्य' आपस्तम्बः। "ब्राह्मणो बैल्वपालाशः" मनु। प्रगल्भवाक्—प्रगल्भा वाक् यस्य सः—बोलने में चतुर। खूब बोलने वाला। ब्रह्ममयेन—(ब्रह्म+मयट्) ब्रह्मण आगतम् ब्रह्ममयम्—ब्राह्मण संबन्धी; ब्राह्मण के योग्य। यहाँ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पर ब्रह्म का अर्थ है वेद या ब्रह्म। 'मयट् च' पा० ४.३.८२ से मयट् प्रत्यय लगा। प्रायः मयट् प्रत्यय "बना हुआ" के अर्थ में आता है; परन्तु यहाँ "उससे आया हुआ" के अर्थ में है। तेजसा—कान्त्या। कान्ति से, तेज से। ब्रह्ममयेन तेजसा—ब्रह्मवर्चसेन। ब्रह्मतेज, अलौकिक शक्ति; उत्कृष्ट पवित्रता। ज्वलन् इव—दीप्यमान इव—जलता हुआ सा। जटिलः—(जटा+इलच्) जटाः सन्ति अस्येति जटिलः, जटाधारी। यह भी ब्रह्मचारी का लक्षण है। "मुण्डो वा जटिलो वा स्यादथवा स्याच्छिखाधरः" मनु। शरीरबद्धः—शरीरेण बद्धः अथवा शरीरम् बद्धम् यस्य सः (मूर्तिमान्), साक्षात् शरीर धारण किये हुए। "वाहिताग्न्यादिषु" पा० २.२.३७ से बहुव्रीहि समास में बद्ध पूर्व में भी आ सकता है, उत्तर में भी आ सकता है। दूसरा रूप बद्धशरीरः होगा। प्रथमाश्रमः—प्रथमश्चासौ आश्रमश्च प्रथमाश्रमः—ब्रह्मचर्याश्रमः। शास्त्रों के अनुसार चार आश्रम होते हैं—ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास। यथा—इव, की तरह। तपोवनम्—तपसः वनम् तपोवनम्। विवेश—घुसा; प्रवेश किया (विश्+लिट्) और भी देखिये। तपोविपाककाले ताम् जिज्ञासुर्भगवान् शिवः ब्रह्मचर्य-व्रतधरो विवेश। तपसोऽचलम्। अजिनाषाढधारी च प्रगल्भवचनो मुने। ज्वलन्निव जटाधारी ब्रह्मज्ञो ब्रह्मतेजसा (शिवपुराण)।

वाच्य परिवर्तन :—अथ अजिनाषाढधरेण प्रगल्भवाचा ब्रह्ममयेन तेजसा ज्वलता इव केनचित् जटिलेन शरीरबद्धेन प्रथमाश्रमेण यथा तपोवनम् विविशे ॥३०॥

अनुवाद :—तदनन्तर, काले हरिण के चर्म तथा पलाश के दण्ड को धारण किये हुए, बोलने में चतुर, ब्रह्मवर्चस से प्रज्वलित सा, कोई जटाधारी (मुनि), शरीरधारी ब्रह्मचर्याश्रम के समान (उस) तपोवन में आया ॥३०॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

संस्कृत में भावार्थ :—यदा हि पार्वती एवम् कठिनतपोमग्नासीत् तदा तस्या आश्रमम् एकोऽविज्ञातः पुरुषः समायातः, यो हि हरिणचर्मपलाशदण्डञ्च धत्ते स्म, भाषणे पटुर्ब्रह्मवर्चसेन भासमानश्चासीत्, यश्च जटाधारी देहेन च मूर्त्तिमान् ब्रह्मचर्याश्रम इवाभूत् ॥३०॥

तमातिथेयी बहुमानपूर्वया
सपर्यया प्रत्युदियाय पार्वती।
भवन्ति साम्येऽपि निविष्टचेतसां
वपुर्विशेषेष्वतिगौरवाः क्रियाः ॥३१॥

टीका :—तमिति। अतिथिषु साध्वी आतिथेयी। 'पथ्यतिथि' इत्यादिना ढञ् प्रत्ययः। 'टिड्ढाणञ्' इत्यादिना ङीप्। पार्वती तम् ब्रह्मचारिणम् बहुमानपूर्वया बहुमानः पूर्वो यस्यास्तया, गौरवपूर्वयेत्यर्थः। सपर्यया अर्चया। 'सपर्या चार्हणाः समाः' इत्यमरः। प्रत्युदियाय प्रत्युज्जगाम। कथम् समानेऽपि तस्यास्तादृशी प्रतिपत्तिरत आह—साम्ये सति अपि निविष्टचेतसाम् स्थिरचित्तानाम् वपुर्विशेषेषु व्यक्तिविशेषेषु अतिशयितम् गौरवम् यासु तासु ताः अतिगौरवाः अतिगौरवसहिताः क्रियाः चेष्टाः भवन्ति। प्रवर्त्तन्ते इत्यर्थः। साधवो न साम्याभिनिवेशिन इति भावः ॥३१॥

अन्वय :—आतिथेयी पार्वती तम् बहुमानपूर्वया सपर्यया प्रत्युदियाय, साम्ये निविष्टचेतसामपि वपुर्विशेषेषु अतिगौरवाः क्रियाः भवन्ति ॥३१॥

टिप्पणी :—आतिथेयी—(अतिथि + एय + ई), अतिथिषु साध्वी इति (अतिथिसत्कारचतुरा), अतिथियों की सेवा करने वाली 'सतिस्वपतेर्ढञ्' पा० ४-४-१०४ से ढञ् (एय) प्रत्यय हुआ, तब ङीप् प्रत्यय

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

लगाकर स्त्रीलिङ्ग बनाया। उसका सूत्र है "टिड्ढाणञ् द्वयसच्" पा० ४-१-१५। पुंलिङ्ग में रूप आतिथेय: होगा। बहुमानपूर्वया—बड़े आदर-सत्कार के साथ। सपर्यया—पूजया – पूजा से। 'पूजा नमस्या अपचितिः सपर्या अर्चा अर्हणा समाः' इत्यमरः। प्रत्युदियाय—(प्रति+उत्+इ+लिट्) प्रत्युज्जगाम, आगे से स्वागत करने गई। इ धातु (जाना) का रूप यों चलता है एति, इतः, यन्ति (लट्), एष्यति (लृट्)। इयाय (लिट्)। अगात् (लुङ्)। साम्ये (सम + ष्यञ्), समस्य भावः साम्यम्, तस्मिन् समतायाम्, बराबरी के प्रति। निविष्टचेतसाम् (नि+विश+क्त) निविष्टम् चेतो येषाम् ते तेषाम्, समता में लगे हुए चित्तवालों का, सब को समान दृष्टि से देखने वालों का। साम्येऽपि निविष्टचेतसाम् का अर्थ दो प्रकार से होगा :-साम्ये निविष्टचेतसाम् अपि—सब को बराबर भाव (समानदृष्टि) से देखने वालों का भी अर्थात् जो राग-द्वेष से रहित हैं उनका भी। दूसरा अर्थ साम्येऽपि निविष्टचेतसाम्—क्रिया की समानता होने पर भी दृढ़ चित्त वालों का, आदि। वपुर्विशेषेषु—वपुष्षु (शरीरेषु) विशेषाः इति वपुर्विशेषाः तेषु वपुर्विशेषेषु, असामान्यशरीरेषु—बड़े लोगों के प्रति। यहाँ पर "वपुः" का अर्थ है शरीर वाला। वपुष् का रूप वपुः, वपुषी, वपूंषि आदि होगा। अतिगौरवाः—(गुरु+अण्) गुरोः भावः गौरवम् (आदर) अति गौरवम् यासु ताः, अधिक आदरयुक्त। क्रियाः—कार्य। कहने का भाव यह है कि जो लोग रागद्वेष से रहित होते हैं वे भी विशेष (बड़े) व्यक्तियों का आदर-सम्मान करते हैं। इसी प्रकार का भाव देखिये "आकृतिविशेषेष्वादरः पदं करोति" मालविकाग्निमित्रम्।

वाच्य परिवर्तन :—आतिथेय्या पार्वत्या सः बहुमानपूर्वया सपर्यया प्रत्युदीये। साम्ये निविष्टचेतसाम् अपि वपुर्विशेषेषु अति गौरवाभिः क्रियाभिः भूयते ॥३१॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अनुवाद :—अतिथि-सत्कार करने में चतुर पार्वती अत्यधिक आदर-युक्त पूजा के साथ उसकी ओर बढ़ी। समता में लगे चित्त वालों के (अर्थात् सब को समान दृष्टि से देखने वालों के) कार्य विशेष व्यक्तियों के लिये अधिक आदरयुक्त होते हैं ॥३१॥

संस्कृत में भावार्थ :—अतिथिसत्कारनिपुणा पार्वती तस्य सत्कारार्थम् तम् प्रत्युज्जगाम तम् सादरम् पूजितवती च। कथम् रागद्वेषविनिर्मुक्तया तपस्विन्या पार्वत्या तम् प्रत्यादरः प्रदर्शित इति शङ्कायाम् कविः कथयति यत् समदर्शिनो जना अपि पुरुषविशेषेष्वधिकादरवन्तो भवन्ति ॥३१॥

विधिप्रयुक्तां परिगृह्य सत्क्रियां
परिश्रमं नाम विनीय च क्षणम्।
उमां स पश्यन्नृजुनैव चक्षुषा
प्रचक्रमे वक्तुमनुज्झितक्रमः ॥३२॥

टीका :—विधीति। स ब्रह्मचारी विधिप्रयुक्ताम् विधिना प्रयुक्तामनुष्ठिताम् सत्क्रियाम् पूजाम् परिगृह्य स्वीकृत्य क्षणम् परिश्रमम् विश्रमम् च विनीय नाम। नामेत्यपरमार्थे। अथ उमाम् ऋजुना एव विलासरहितेन चक्षुषा पश्यन् अनुज्झितक्रमः अत्यक्तोचितपरिपाटीकः सन् वक्तुम् प्रचक्रमे प्रारेभे ॥३२॥

अन्वय :—सः विधिप्रयुक्ताम् सत्क्रियाम् परिगृह्य क्षणम् परिश्रमम् विनीय च नाम उमाम् ऋजुना एव चक्षुषा पश्यन् अनुज्झितक्रमः (सन्) वक्तुम् प्रचक्रमे ॥३२॥

टिप्पणी :—विधिप्रयुक्ताम् - विधिना प्रयुक्ता विधिप्रयुक्ता ताम्, यथाविधिकृताम्—विधिपूर्वक की हुई। सत्क्रियाम्—सती चासौ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

क्रिया इति सत्क्रिया, तां, सेवा; पूजा । परिगृह्य—(परि+गृह्+ल्यप्) स्वीकृत्य, स्वीकार करके । क्षणम्—थोड़ी देर के वास्ते । विनीय—(वि+नी+ल्यप्) अपनीय, दूरकर । नाम —अपरमार्थ, केवल देखने को । यह अव्यय है । इसके अनेक अर्थ हैं । यहाँ पर इसका अर्थ है देखने में; दिखावटी रूप से । यद्यपि वह वस्तुतः थका हुआ नहीं था तथापि उसने यह दिखाया । इस बात का बहाना। क्रिया कि वह आराम कर चुका है । अपने को छिपाने के वास्ते शिव जी ने साधारण मनुष्य के समान कार्य किया । ऋजुना—सरलेन, सीधी सादी । अनुज्झितक्रमः—(न+उज्झ्+क्त) न उज्झितः (त्यक्तः) क्रमः (उचिताचारः) येन सः । व्यवहार के उचित मार्ग को न छोड़-कर । भीतरी भावना को न प्रकट करते हुए । क्रम—उचित मार्ग । प्रचक्रमे (प्र+क्रम्+लिट्) शुरू किया । जब कोई उपसर्ग पहले नहीं रहता तो क्रम का रूप दोनों पदों में (परस्मै तथा आत्मने) में होता है, परन्तु जब प्र तथा उप उपसर्ग के साथ यह धातु प्रयुक्त होती है तब यह आत्मनेपदी हो जाती है और इसका अर्थ होता है "प्रारम्भ करना"। "प्रोपाभ्याम् समर्थाभ्याम्" पा० १.३.४२ सूत्र से आत्मनेपदी होती है । परन्तु प्रक्रामति माने "जाता है" और उप-क्रामति माने "समीप में आता है ।"

वाच्य परिवर्तन :—तेन विधिप्रयुक्ताम् सत्क्रियाम् परिगृह्य क्षणम् परिश्रमम् विनीय च नाम उमाम् ऋजुना एव चक्षुषा पश्यता अनुज्झितक्रमेण वक्तुम् प्रचक्रमे ॥३२॥

अनुवाद :—उसने यथाविधि की हुई सेवा को स्वीकार कर तथा क्षण भर के लिये थकावट को दूर सा करके, पार्वती की ओर सीधी-सादी दृष्टि से ही देखते हुए, (व्यवहार के) उचित मार्ग को न छोड़ते हुए, कहना प्रारम्भ किया ॥३२॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

संस्कृत में भावार्थ :—सोऽतिथिर्यथाविधिकृताम् पार्वत्याः पूजाम् स्वीकृत्य, कञ्चित्कालञ्च श्रममपनीय, पार्वतीम् रागादिरहितेनैव निर्दोषेण नेत्रेणावलोकयन् सदाचारपरिपाटीमनुल्लंघयन् कथयितुमारेभे ॥ ३२ ॥

अपि क्रियार्थं सुलभं समित्कुशं
जलान्यपि स्नानविधिक्षमाणि ते ।
अपि स्वशक्त्या तपसि प्रवर्त्तसे
शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ॥३३॥

टीका :—अपीति । अत्रापि शब्दः प्रश्ने । क्रियार्थं होमादिकर्मानुष्ठानार्थम् । समिधश्च कुशाश्च समित्कुशम् । 'जातिरप्राणिनाम्' इति द्वन्द्वैकवद्भावः । सुलभम् अपि सुलभम् कच्चित् । जलानि ते तव स्नानविधिक्षमाणि स्नानक्रियायोग्यानि अपि कच्चित् । किञ्च स्वशक्त्या निजसामर्थ्यानुसारेण तपसि प्रवर्त्तसे अपि । देहमपीडयित्वा तपश्चरसि कच्चिदित्यर्थः । युक्तम् च नामैतत् । खलु यस्मात् शरीरम् आद्यम् धर्मसाधनम् । धर्मस्तु कायेन वाचा बुद्ध्या धनादिना च बहुभिः साध्यते । तेषु च वपुरेव मुख्यम् साधनम् । सति देहे धर्मार्थकाममोक्षलक्षणाश्चतुर्वर्गाः साध्यन्ते। अतएव 'सततमात्मानमेव गोपायीत' इति श्रुतिः । 'अयथाबलमारम्भो निदानम् क्षयसंपदाम्' इति भावः ॥ ३३ ॥

अन्वय :—अपि क्रियार्थम् समित्कुशम् सुलभम् ? अपि जलानि ते स्नानविधिक्षमाणि ? अपि स्वशक्त्या तपसि प्रवर्त्तसे ? खलु शरीरम् आद्यम् धर्मसाधनम् (अस्ति) ॥ ३३ ॥

टिप्पणी :—अपि—कच्चित्, यह प्रश्न-वाचक है । यह कई अर्थों में प्रयुक्त होता है "गर्हा समुच्चय प्रश्न, शङ्का संभावनासु अपि"

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इत्यमरः। क्रियार्थम—क्रियायै इदम् क्रियार्थम्, होमादिकर्मकरणार्थम्—धार्मिक कार्य करने के वास्ते। क्रियार्थम् में नित्यसमास है, जिसकी परिभाषा यों है—"अविग्रहो नित्यसमासः अस्वपदविग्रहो वा" नित्य समास उसे कहते हैं जिसका विग्रह न हो सके या अगर विग्रह हो भी तो उन शब्दों से न हो जिनसे वह समास बना है। अतः क्रियार्थम् समास का विग्रह दो शब्द क्रिया तथा इद के प्रयोग से किया गया है न कि क्रिया और अर्थम् से जिनसे वास्तव में यह समास बना है। अर्थ के साथ का समास नित्यसमास है और जिस संज्ञा का यह विशेषण होता है उसी का वचन व लिङ्ग इसमें होता है। समित्कुशम् समिधश्च कुशाश्च इति समित्कुशम्। समिध—यज्ञ के वास्ते लकड़ी। यह द्वन्द्व समास है और "जातिरप्राणिनाम्" पा० २.४.६ से एकवचन हुआ। जब किसी वस्तु का ज्ञान हो, न कि प्राणी का तब समास ए० व० में होता है। सुलभम—(सु + लभ् + खल्) जो आसानी से मिल सके। "ईषद् दुःसुषुकृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्" पा० ३.३.१२६ से खल् प्रत्यय लगा। जब कठिनाई या आसानी का भाव रहता है तब ईषत्, दुर्, सु उपसर्ग के साथ किसी भी धातु में खल् प्रत्यय लगाया जा सकता है जैसे—सुकरः, दुष्करः। स्नानविधिक्षमाणि—स्नानस्य विधये क्षमाणि (योग्यानि) स्नानविधिक्षमाणि, स्नान करने के योग्य (उपयुक्त); स्वसामर्थ्यानुसारेण, अपना सामर्थ्य के अनुसार। खलु—निश्चय। आद्यम्—प्रथमम्, मुख्य। धर्मसाधनम्—धर्मस्य साधनम्, धर्म करने का साधन। यह कहावत प्रसिद्ध है कि "शरीरमाद्यम् खलु धर्मसाधनम्" अर्थात् शरीर ही सारे धर्म का साधन है। अतः मनुष्य को शरीर की खूब रक्षा करनी चाहिये।

वाच्य परिवर्तन :—अपि क्रियार्थम् समित्कुशेन सुलभेन (भूयते)? अपि जलैः ते स्नानविधिक्षमैः (भूयते)? अपि (त्वया)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

स्वशक्त्या तपसि प्रवृत्यते ? खलु शरीरेण आद्येन धर्मसाधनेन (भूयते) ।।३३।।

अनुवाद :—(यज्ञादि) धार्मिक कृत्यों के लिये समिधायें और कुश तो सरलता से प्राप्त हो जाते हैं ? पानी तो तुम्हारे स्नान के लिये उपयुक्त है ? और अपनो सामर्थ्य के अनुसार ही तप करती हो न ? क्योंकि शरीर वास्तव में धार्मिक कृत्यों के करने में मुख्य सहायक है ।।३३।।

संस्कृत में भावार्थ :—ब्रह्मचारिवेषधारी शिवः पार्वतीम् तत्कुशलम् तपःसहायकवस्तूनाम् सुलभताम् प्रति च पृच्छति 'किं त्वया होमादिधार्मिककृत्यकरणार्थम् यज्ञकाष्ठानि दर्भाश्च सुखेन लभ्यन्ते ? इतस्ततः पर्वतनिर्झरेषु नदीषु च प्राप्यम् जलम् किं ते स्नानयोग्यमस्ति ? किं त्वम् स्वसामर्थ्यानुसारेणैव तपस्यामाचरसि न तु शरीरमत्यन्तम् पीडयित्वा' यतो देहो धर्माचरणे प्रधानसहायकोऽस्ति ? त्वया स्वास्थ्यमनादृत्य तपो न करणीयमिति भावः ।।३३।।

अपि त्वदावर्जितवारिसंभृतं
प्रवालमासामनुबन्धि वीरुधाम् ।
चिरोज्झितालक्तकपाटलेन ते
तुलां यदारोहति दन्तवाससा ।।३४।।

टीका :—अपीति । त्वदावर्जितवारिसंभृतम् त्वयावर्जितेन सिक्तेन वारिणा संभृतम् जनितम् आसाम् वीरुधाम् लतानाम् प्रवालम् पल्लवम् अनुबन्धि अपि अनुस्यूतम् किम । प्रवालम् चिरोज्झितश्चिरकालत्यक्तो लाक्षारागो येन तत्तथापि पाटलम् स्वभावरक्तमित्यर्थः । तेन चिरोज्झितालक्तकपाटलेन ते तव दन्तवाससा अधरेण । ओष्ठाधरौ तु रदनच्छदौ दशनवाससी इत्यमरः । तुलाम

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

साम्यम् आरोहति। गच्छतीत्यर्थः। अत्र तुलाशब्दस्य सादृश्य-वाचित्वात्तद्योगेऽपि 'तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्याम्' इति न तृतीया प्रतिषेधः। तत्र सूत्रसदृशवाचिन एव ग्रहणादिति ॥३४॥

अन्वय :––अपि त्वदावर्जितवारिसंभृतम् आसाम् वीरुधाम् प्रवालम् अनुबन्धि (अस्ति) यत् चिरोज्झितालक्तकपाटलेन ते दन्तवाससा तुलाम् आरोहति ॥३४॥

टिप्पणी :—त्वदावर्जितवारिसंभृतम्––आवर्जितम् (आ + वृज् + क्त) सिक्तम्, सींचा हुआ। आ के साथ वृज् माने छिड़कने या सींचने के होते हैं। संभृतम्––(सम् + भृञ् + क्त) पाला गया; पोसा गया। त्वया आवर्जितेन वारिणा संभृतम्, तुम्हारे द्वारा सींचे गये जल से पाला-पोसा (बड़ा किया) हुआ। "प्रत्ययोत्तरपदयोश्च" पा० ७.२.६८ सूत्र से युष्मत् के युष्म को त्व में बदल दिया। वीरुधाम्—लतानाम्—लताओं का। वीरुध्—(वि + रुह + क्विप्)। रुह् के ह् को ध् आदेश करने से और वि के इकार को दीर्घ करने से वीरुध् बना। यह स्त्रीलिङ्ग है और वीरुत्––वीरुधौ––वीरुधः आदि रूप चलेगा। "लता प्रताननी वीरुत्" इत्यमरः। प्रवालम् - नूतन पल्लवम्, नई पत्तियाँ। जाति का बोध कराने में ए० व० का प्रयोग हुआ। "प्रवालो विद्रुमे वीणादण्डेऽभिनवपल्लवे" इत्यमरः। अनुबंधि (अनुबन्ध + इनिः), अविच्छिन्नम्—लगातार; निर्विघ्न, (लगातार निकलते रहते हैं)। "संबन्धे संतता सक्ता अनुबन्धः प्रकीर्तितः" इति भोजः। यह प्रवालम् का विशेषण है और नपुं० में है। इसका रूप यों चलेगा—अनुबन्धि––अनुबन्धिनी—अनुबन्धीनि इत्यादि। "अत इनिठनौ" पा० ५.२.११५ से इनि प्रत्यय लगा। इसके बाद अस्ति छिपा है। चिरोज्झितालक्तकपाटलेन। अलक्तकः—लाक्षारस, लाख का रंग। चिरात् उज्झितः अलक्तको

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

येन (बहुव्रीहिः)। तथाभूतमपि पाटलम् (रक्तम्) तेन, यद्यपि बहुत दिन से उनमें लाख रंग नहीं लगाया गया था फिर भी वे लाल थे। यह दन्तवाससा का विशेषण है। दन्तानाम् वासः तेन (अधरेण)—ओठ। दन्तवाससा में तृतीया का प्रयोग "तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्याम् तृतीयाऽन्यतरस्याम्" पा० २.३.७५ सूत्र के विपरीत किया गया है। जहाँ पर तुल्य बराबरी और सदृश वाची शब्द होते हैं जैसे तुल्य, व सदृश तो जिस वस्तु अथवा व्यक्ति से किसी की उपमा दी जाती है वह षष्ठी अथवा तृतीया विभक्ति में आता है परन्तु तुला और उपमा शब्द को छोड़कर। इन दो शब्दों के साथ केवल षष्ठी का प्रयोग होता है। परन्तु मल्लिनाथ इनका समर्थन करते हैं। इनका कहना है कि तुला सादृश्यवाची है, न कि सदृश-वाची (विशेषण) है। जब तुला सदृश-वाची होता है तभी इस नियम से तृतीया का निषेध होता है। इस वास्ते इसका प्रयोग यहाँ ठीक ही किया गया है। मल्लिनाथ की टीका की अन्तिम तीन पंक्तियों को देखिये। अन्य टीकाकारों की भी यही सम्मति है "अतुलोपमाभ्याम्" इति तुलाशब्दयोगे तृतीयानिषेधस्तु सदृशार्थकतुलाशब्दयोगे एव, इह तुलाशब्दः सादृश्यवाचीति न प्रवर्तते" इति। भोज की भी यही सम्मति है। सदृशपदार्थवाची सादृश्यमात्रवाची चेति द्वौ तुला-शब्दौ। सदृश्यमात्रवाचकतुलाशब्दयोगे तु तृतीयापीष्यत एव। कुछ टीकाकार दन्तवाससा के बाद सह का प्रयोग कर इसका समर्थन करते हैं। तुलाम्—साम्यम् बराबरी। आरोहति—प्राप्नोति, पाता है। पार्वती का छोटे पौधों में पुत्रवत् स्नेह था। अतः उनका कुशल पूछना बिल्कुल उचित था।

वाच्य परिवर्तन :—अपि त्वदावर्जितवारिसंभृतेन आसाम् वीरुधाम् प्रवालेन अनुबन्धिना (भूयते), येन चिरोज्झितालक्तकपाटलेन ते दन्तवाससा तुला आरुह्यते ॥ ३४ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अनुवाद :—तुम्हारे द्वारा दिये पानी से बढ़े हुए इन बेलों के पत्ते लगातार निकलते तो रहते हैं ? जो (पत्ते) तुम्हारे ओठ के समान हैं जो कि दीर्घकाल से लाख के रंग के (उपयोग के) छूट जाने पर भी लाल हैं।

संस्कृत में भावार्थ—अथ पार्वत्या स्वयम् सिञ्चितानाम् वृत्ताणाम् विषये पृच्छति—किम् त्वया सिच्यमाना एता लता निरन्तरम् नूतनपल्लवान्युत्पादयन्ति, यानि नूतनपल्लवानि रक्तवर्णत्वात् चिरात्यक्तलाक्षारसोपयोगेनापि स्वभावरक्तेन त्वदीयाधरेण साम्यम् दर्शयन्ति ? पार्वत्या अधरः स्वभावेनैव रक्त इति चाटूक्त्या शिवः पार्वतीरूपम् प्रशंसति ॥ ३४ ॥

अपि प्रसन्नं हरिणेषु ते मनः
करस्थदर्भप्रणयापहारिषु ।
य उत्पलाक्षि प्रचलैर्विलोचनै-
स्तवाक्षिसादृश्यमिव प्रयुञ्जते ॥३५॥

टीका :—अपीति। करस्थदर्भप्रणयापहारिषु करस्थान्दर्भान् प्रणयेन स्नेहेनापहरन्तीति ते तथोक्तेषु सापराधेष्वित्ति भावः। 'करस्थदर्भप्रणयापराधिषु' इति पाठे दर्भाणाम् प्रणयेन प्रार्थनयापराधिषु। हरिणेषु विषये ते मनः प्रसन्नम्' अपि। न क्षुभितम् किम्। सापराधेष्वपि न कोपितव्यम् तपस्विभिरिति भावः। हे उत्पलाक्षि ये हरिणाः प्रचलैः चञ्चलैः विलोचनैः नेत्रैः तवाक्षिसादृश्यम् प्रयुञ्जते इव अभिनयन्तीव। प्रसन्नत्वान्मृगनेत्राणि त्वन्नयनाभ्याम् साम्यमुपयान्तीति भावः। 'उत्पलक्षेपचलैः' इति पाठान्तरे उत्पलकम्पचलैः भावानयने द्रव्यानयनमिति न्यायेन क्षिप्यमाणोत्पलचलैरित्यर्थः ॥ ३५ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्वय :—करस्थदर्भप्रणयापहारिषु हरिणेषु ते मनः अपि प्रसन्नम् (हे) उत्पलाक्षि ! ये प्रचलैः विलोचनैः तव अक्षिसादृश्यम् प्रयुञ्जते इव ॥ ३५ ॥

टिप्पणी :—करस्थदर्भप्रणयापहारिषु—करस्थः—(कर + स्था + कः) करे तिष्ठतीति करस्थः । अपहारी—(अप + हृ + णिनि) अपहर्तुम् शीलम् अस्य, जो लेता है, ले लेने वाला । करस्थान् दर्भान् (कुशान्) प्रणयेन (स्नेहेन) अपहरन्ति (गृह्णान्ति) इति करस्थदर्भप्रणयापहारिणः तेषु— जो प्रेम से तुम्हारे हाथ के कुशा को ग्रहण कर लेते हैं । हरिणेषु हरिणों के प्रति । प्रसन्नम्—आनन्दित । उत्पलाक्षि—उत्पले (कमले) इव अक्षिणी यस्याः सा उत्पलाक्षी तस्याः सम्बोधने हे उत्पलाक्षि (उत्पल + अक्षि + षच + ङीप), कमल के समान नेत्रों वाली । प्रचलैः प्रकर्षेण चलैः इति प्रचलैः अतिचञ्चलैः, बड़े चञ्चल । अक्षिसादृश्यम्—सदृशस्य भावः सादृश्यम् (सदृश् + ष्यञ्) समानता, मिलना जुलना । प्रयुञ्जते—कुर्वन्ति, अभिनयन्ति, करते हैं । युज् (जोड़ना) इसका रूप चलता है—युनक्ति या युङ्क्ते, युञ्जाते, युञ्जते (लट्) । युयुजे (लिट्) । योक्ष्यति, योक्ष्यते (लृट्) । अयुजत्, अयौक्षीत्, अयुक्त (लुङ्) । जब प्र या उप उपसर्ग के साथ इसका प्रयोग होता है तो इसके माने "करने" के होते हैं और तब केवल आत्मनेपद में ही रूप होता है । "प्रोपाभ्याम् युजेरयज्ञपात्रेषु" पा० १.३.६४ । कहीं-कहीं उत्पलाक्षि प्रचलैः के स्थान में उत्पलाक्षेप चपलैः पाठ है । (उत्पलानाम् आक्षेपः तद्वत् चपलैः) फेंके हुये कमल के समान चञ्चल । ऐसे ही भाव के वास्ते श्लोक १५ व ३५ देखिये ।

वाच्य परिवर्तन :—करस्थदर्भप्रणयापहारिषु हरिणेषु ते मनसा अपि प्रसन्नेन (भूयते) ? (हे) उत्पलाक्षि, यैः प्रचलैः विलोचनैः तव अक्षिसादृश्यम् प्रयुज्यते इव ॥ ३५ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अनुवाद :—हाथ में पकड़े हुए कुशों को प्रेम के कारण ले जाने वाले मृगों की ओर से तुम्हारा मन प्रसन्न तो है? जो (मृग), हे कमल के समान नेत्रों वाली, अपने चंचल नेत्रों से तेरी आँखों की समता करते हैं ॥ ३५ ॥

संस्कृत में भावार्थ :—कच्चित्त्वमेषु मृगेषु प्रसन्ना तिष्ठसि, ये हि परिचयाधिक्येन ते हस्तधृतानपि कुशान् भक्षणार्थमाददति ये च हे कमलनेत्रे, तव नेत्रयोः सादृश्यम् स्वनेत्रेष्वलभमानाः निजनेत्राणीतस्ततश्चालयन्तस्तव विलोचनयोः समताम् कुर्वन्ति इव। वस्तुतस्तु हरिणानाम् नेत्राणि न पार्वतीनेत्रसमानि, परम् इतस्ततश्चालनेन तानि तत्समानि क्रियन्त इवेति भावः ॥ ३५ ॥

यदुच्यते पार्वति पापवृत्तये
न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वचः।
तथा हि ते शीलमुदारदर्शने
तपस्विनामप्युपदेशतां गतम् ॥ ३६ ॥

टीका :—यदिति। हे पार्वति! रूपम् सौम्याकृतिः पापवृत्तये पापाचरणाय न भवति। इति यदुच्यते। लोकैरिति शेषः। तद्वचः न व्यभिचरति न स्खलतीति अव्यभिचारि सत्यम्। 'यत्राकृतिस्तत्र गुणाः। न सुरूपाः पापसमाचाराः भवन्ति, इत्यादयो लोकवादाः न विसंवादमासादयन्तीत्यर्थः। किमिति ज्ञायते—तथा हि। हे उदारदर्शने आयताक्षि। सुरूपे इत्यर्थः। अथवा उन्नतज्ञाने। विवेकवतीत्यर्थः। ते तव शीलम् सद्वृत्तम् 'शीलम् स्वभावे सद्वृत्ते,' इत्यमरः। तपस्विनामपि उपदिश्यते अनेनेत्युपदेशः प्रवर्त्तकम् प्रमाणम् तत्ताम् उपदेशताम् गतम् प्राप्तम्। मुनयोऽपि त्वाम् वीक्ष्य स्ववृत्तम् प्रवर्त्तन्ते इति भावः ॥ ३६ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्वय :—(हे) पार्वति ! रूपम् पापवृत्तये न इति यदुच्यते तत् वचः अव्यभिचारि । तथाहि (हे) उदारदर्शने ! ते शीलम् तपस्विनाम् अपि उपदेशताम् गतम् ।

टिप्पणी :—रूपम् सौन्दर्यम्—सुन्दरता । पापवृत्तये— पापस्य वृत्तये (आचरणाय) पापवृत्तये, पाप करने के वास्ते । 'रूपम् पाप-वृत्तये न का अर्थ है' कि सुन्दरता मनुष्य से पापाचार नहीं कराती । सुन्दर होने से कोई पाप नहीं करता । "यत्राकृतिस्तत्र गुणाः वसन्ति" । "रूपम् शीलानुसारि" । "न ह्याकृतिः सुसदृशम् विजहाति शीलम्" । अव्यभिचारि—न व्यभिचरति इति अव्यभिचारि (वि+अभि+चर्+णिनिः) सत्यम्, सच्चा । उदारदर्शने—उदा-रम् (उत्कृष्टम्) दर्शनम् (रूपम्) यस्याः सा, तस्याः सम्बुद्धौ हे उदार-दर्शने (अति सुन्दरी), अतिसुन्दर रूपवाली । मल्लिनाथ दर्शन का अर्थ "आँख" करते हैं । इससे वे इसका अर्थ "आयताक्षि" करते हैं । शीलम्—सदाचारः, अच्छा चालचलन । तपस्विनाम्—तपस्वियों का (के वास्ते) (तपस्+विनिः) "अस्मायामेधास्रजो विनिः" पा० ५.२.१२१ से विनिः प्रत्यय हुआ । अपि शब्द यह प्रकट करता है कि पार्वती का चरित्र केवल सामान्य लोगों के लिये ही नहीं बल्कि तपस्वियों के लिये भी पथ-प्रदर्शक था । उपदेशताम्—(उप+दिश्+घञ्+ता) उपदिश्यते अनेन इति उपदेशः तस्य भावः उपदेशता ताम् उपदेशताम्, उपदेश देने वाला ।

वाच्य परिवर्तन :—(हे) पार्वति, रूपेण पापवृत्तये न (भूयते), इति यद् (जनाः) ब्रुवन्ति तेन वचसा अव्यभिचारिणा (भूयते) यथा हि (हे) उदारदर्शने, ते शीलेन तपस्विनाम् अपि उपदेशताम् गतेन अभूयत ॥३६ ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अनुवाद :—हे पार्वती, यह जो कहा जाता है कि सुन्दरता पापाचरण का कारण नहीं होती; सो सत्य है, क्योंकि हे सुन्दरि, तुम्हारा आचरण तपस्वियों को भी शिक्षा देने वाला है ॥३६॥

संस्कृत में भावार्थ :—हे पार्वती, न सौन्दर्यं पापस्य कारणम्, 'अथवा न सुरूपाः पापमाचरन्ति' इति कथनम् त्वाम् दृष्ट्वा मे सत्यमेव प्रतीयते, यतो यद्यपि त्वमत्यन्तम् रूपवती तथापि तवाचरणमीदृशम् यत्तपस्विभ्योऽपि शिक्षाप्रदमस्ति। तेऽपि तव चरित्रम् दृष्ट्वा स्वानि चरित्राणि शोधयन्ति किमुत साधारणजनाः ? ॥३६॥

विकीर्णसप्तर्षिबलिप्रहासिभि-
स्तथा न गाङ्गैः सलिलैर्दिवश्च्युतैः ।
यथा त्वदीयैश्चरितैरनाविलै-
र्महीधरः पावित एष सान्वयः ॥३७॥

टीका :—विकीर्णेति। एष महीधरः हिमवान् विकीर्णसप्तर्षिबलिप्रहासिभिः सप्त च ते ऋषयः। 'दिक्संख्ये संज्ञायाम्' इति समासः। विकीर्णैः पर्यस्तैः सप्तर्षीणाम् संबन्धिभिर्बलिभिः पुष्पोपहारैः प्रहसन्ति तैः तथोक्तैः दिवः अन्तरिक्षात् च्युतैः गाङ्गैः सलिलैः तथा न पावितः अनाविलैः अकलुषैः त्वदीयैः चरितैः यथा सान्वयः सपुत्रपौत्रः पावितः पवित्रीकृतः ॥३७॥

अन्वय :—एष महीधरः विकीर्णसप्तर्षिबलिप्रहासिभिः दिवः च्युतैः गाङ्गैः सलिलैः तथा न पावितः यथा अनाविलैः त्वदीयैः चरितैः सान्वयः (पावितः) ॥३७॥

टिप्पणी :—महीधरः—मह्याः (भूमेः) धरः महीधरः पर्वतः। धरः (धरतीति) (धृ+कः) "इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः" पा० ६. १. १६५ अर्थात् जिन धातुओं की उपधा इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ या

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

लॄ हो तथा ज्ञा, श्री, कॄ इन धातुओं में 'क' प्रत्यय लगता है। विकीर्णसप्तर्षिबलिप्रहासिभिः—विकीर्णः (वि+कॄ+क्त) पर्यस्तः —छितराया हुआ। सप्तर्षयः—सप्त च ते ऋषयश्च सप्तर्षयः सातों ऋषि। "दिक्संख्ये संज्ञायाम्" से कर्मधारय समास हुआ। संज्ञा के साथ दिग्वाची॰ शब्द और संख्यावाची शब्द का कर्मधारय समास होता है। परन्तु यह समास तभी होगा जब पूरा समश्रित पद संज्ञा हो। यहाँ पर यह सात तारों का बोधक है। उनके नाम ये हैं मरीचि, अङ्गिरस्, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वशिष्ठ। वे आकाश में रहते हैं और आकाशगङ्गा में स्नान करके देवताओं को फूल चढ़ाते हैं। देखिये "अत्राभिषेकाय तपोधनानाम् सप्तर्षिहस्तोद्धृतहेमपद्माम्। प्रवर्तयामास किलानुसूया त्रिस्रोतसम् त्र्यम्बकमौलिमालाम्" रघु० १३.५१। बलिः—पुष्पोपहारः—फूलों का उपहार। 'करोपहारयोः पुंसि बलिः' इत्यमरः। प्रहासिभिः—(प्र+हस्+णिनिः) प्रहसन्तीति —चमकते हुए। उपहार के फूल अपने सफेद रंग के कारण ऐसे मालूम पड़ते हैं जैसे गंगा के जल की चमक। विकीर्ण...प्रहासिभिः —विकीर्णैः सप्तर्षीणाम् बलिभिः प्रहसन्तीति विकीर्णसप्तर्षिबलि-प्रहासीनि तैः, जो सप्तर्षियों द्वारा की गई बलि से चमक रहे हैं। यह सलिलैः का विशेषण है। दिवः—स्वर्गात्,स्वर्ग से। अपादाने पञ्चमी है। गंगा का जल स्वर्ग से गिरता है ऐसा पुराणों में कहा गया है। च्युतैः (च्यु+क्त) पतितैः, गिरे हुए। दिवश्च्युतैः तथा विकीर्णसप्तर्षि-बलिप्रहासिभिः ये दोनों विशेषण गंगा के जल की पवित्रता के द्योतक हैं। गाङ्गैः—गङ्गायाः इमानि गाङ्गानि, तैः (गंगा+अण्)गंगा का तथा—तेन प्रकारेण—इतना, उतना; उस प्रकार से। पावितः (पू+णिच्+क्तः) पवित्रीकृतः, पवित्र किया गया। अनाविलैः—न आविलैः अनाविलैः—शुद्ध; पवित्र। यह त्वदीयैः चरितैः का विशे-षण है। यहाँ यह तात्पर्य है कि पार्वती का चरित्र गंगा के जल

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

से भी ज्यादा पवित्र है। यहाँ व्यतिरेक अलङ्कार है। यह अलङ्कार वहाँ होता है जहाँ उपमेय को उपमान से अच्छा बताते हैं। त्वदीयैः—तव इमानि त्वदीयानि तैः त्वदीयैः, तुम्हारे (चरित्र से) "वृद्धाच्छः" से छः प्रत्यय लगा (युष्मद्+छ+ईय) और "प्रत्ययोत्तरपदयोश्च" सूत्र से युष्मद् को त्व हो गया। चरितैः—कार्यों से। सान्वयः—अन्वयेन (कुटुम्बेन) सह इति सान्वयः, परिवार-सहित; इस श्लोक में पार्वती के पवित्र जीवन की प्रशंसा है।

वाच्य परिवर्तन :—एतम् महीधरम् विकीर्णसप्तर्षिबलिप्रहासीनि दिवः च्युतानि गाङ्गानि सलिलानि तथा न पूतयन्ति, यथा अनाविलानि त्वदीयानि चरितानि सान्वयम् एनम् (पूतयन्ति) ॥३७॥

अनुवाद :—यह (हिमालय) पहाड़ सप्तर्षियों के द्वारा दिये हुए पुष्पों के उपहार से चमकते हुए, आकाश से गिरे हुए गंगा के पानी से, उतना पवित्र नहीं हुआ था, जितना तुम्हारे पवित्र आचरण से यह कुटुम्बसहित पवित्र कर दिया गया है ॥३७॥

संस्कृत में भावार्थ :—पार्वत्याश्चरित्रम् प्रशंसन् पुनरप्याह—हिमालयस्य पृष्ठे स्वर्गात् गंगाप्रवाहः पतति, स च स्वर्गात्पतनेन सप्तर्षीणाम् पूजोपहारपुष्पाणाम् संसर्गेण चातिशयेन पावनः। परमयम् हिमालयो गङ्गायाः पवित्रजलेन न तथा पवित्रीकृतो यथेदानीम् तवाकलुषैश्चरित्रैः सकुटुम्बः पवित्रीकृतः। तव चरितानि पवित्रतायाम् तद्दाने च गंगाया जलान्यपि अतिशेरत इति भावः ॥३७॥

अनेन धर्मः सविशेषमद्य मे
त्रिवर्गसारः प्रतिभाति भाविनि।
त्वया मनोनिर्विषयार्थकामया
यदेक एव प्रतिगृह्य सेव्यते ॥३८॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

टीका :—अनेनेति। हे भाविनि प्रशस्ताभिप्राये ! अनेन कारणेन धर्मः सविशेषम् सातिशयम् अद्य मे। त्रिवर्गसारः त्रयाणाम् धर्मार्थकामानाम् वर्गस्त्रिवर्गः 'त्रिवर्गो धर्मकामार्थैश्चतुर्वर्गः समोक्षकैः' इत्यमरः। तत्र सारः श्रेष्ठः प्रतिभाति। यत् यस्मात् कारणात् मनो निर्विषयार्थकामया मनसो निर्विषयार्थकामौ यस्यास्तया त्वया एकः धर्मः एव प्रतिगृह्य स्वीकृत्य सेव्यते। यत्त्वयार्थकामौ विहाय धर्म एवावलम्बितः। अतः सर्वेषाम् नः स श्रेयानिति प्रतिपद्यत इत्यर्थः ॥३८॥

अन्वय :—(हे) भाविनि, अनेन अद्य मे धर्मः सविशेषम् त्रिवर्गसारः प्रतिभाति, यद् मनोनिर्विषयार्थकामया त्वया एक एव प्रतिगृह्य सेव्यते ॥३८॥

टिप्पणी :—भाविनि (भाव+इनि+ङीप्) प्रशस्तः भावः अभिप्रायः अस्याः अस्तीति भाविनी, तस्याः संबुद्धौ हे भाविनि। अच्छे विचार वाली। कहीं कहीं भामिनि पाठ है। अनेन—इससे। (तुम्हारा पवित्र चरित्र देखने से)। सविशेषम्—विशेषेण सह इति सविशेषम्, विशेष करके। त्रिवर्गसारः—त्रयाणाम् वर्गाणाम् समाहारः त्रिवर्गम् (धर्मार्थकामाः) (द्विगुसमास) त्रिवर्गे सारः त्रिवर्गसारः, त्रिवर्गों में उत्तम। धर्म, अर्थ, काम को त्रिवर्ग कहते हैं; तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों को चतुर्वर्ग कहते हैं। "त्रिवर्गो धर्मकामार्थैश्चतुर्वर्गः समोक्षकैः" इत्यमरः। प्रतिभाति—मालूम पड़ता है ॥भा—चमकना। जब प्रति उपसर्ग लग जाता है तो इसका अर्थ हो जाता है 'मालूम पड़ना"। मनोनिर्विषयार्थकामया। निर्विषयौ—निर्गतः विषयः ययोस्तौ—जिनसे मन हट गया है। मनसो निर्विषयौ अर्थः कामश्च यस्याः सा मनोनिर्विषयार्थकामा, तया, जिसका मन अर्थ और काम की चिन्ता से मुक्त है; जो अर्थ और काम का त्याग कर चुकी है। पार्वती जी तपस्विनी का जीवन

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

व्यतीत कर अर्थ और काम को त्याग चुकी थीं। उनका मन केवल धर्म में लगा था। एक एव—धर्म एव, केवल धर्म। प्रतिगृह्य—(प्रति+ग्रह+ल्यप्) स्वीकृत्य, स्वीकार करके; सेव्यते—आश्रीयते—सहारा लिया जाता है। केवल एक धर्म को पालती है।

वाच्य परिवर्तन :—(हे) भाविनि, अनेन अद्य मे धर्मेण सविशेषम् त्रिवर्गसारेण प्रतिभायते, यद् मनोनिर्विषयार्थकामा त्वम् एकम् एव प्रतिगृह्य सेवसे ॥३८॥

अनुवाद :—हे श्रेष्ठ अभिप्राय वाली, इससे तो आज मुझे धर्म ही विशेषतया तीनों वस्तुओं (धर्म, अर्थ, काम) में श्रेष्ठ ज्ञात होता है, क्योंकि अर्थ और काम से रहित मन वाली तुम (उसी) एक को ग्रहण कर पालती हो ॥३८॥

संस्कृत में भावार्थ : हे श्रेष्ठाभिप्रायवति पार्वति ! यतस्त्वम् बुद्धिमती धर्मार्थकामानाम् वर्ये अर्थकामावनादृत्य एकम् धर्ममेव कल्याण-करम् स्वीकृत्य पालयसि अतोऽहमद्य त्वदाचरणम् दृष्ट्वा मन्ये यदेषाम् त्रयाणाम् समूहे धर्मएव श्रेष्ठतमः अर्थकामानुसारिणी च लोकानाम् प्रवृत्तिरनुचिता ॥३८॥

प्रयुक्तसत्कारविशेषमात्मना
न मां परं संप्रतिपत्तुमर्हसि।
यतः सतां सन्नतगात्रि संगतं
मनीषिभिः साप्तपदीनमुच्यते ॥ ३९ ॥

टीका :—संप्रति मनोरथम् जिज्ञासुः प्रस्तौति । प्रयुक्तेति आत्मना त्वया प्रयुक्तः कृतः सत्कारविशेषः पूजातिशयो यस्य तम् प्रयुक्त-सत्कारविशेषम् माम् परम अन्यम् संप्रतिपत्तुम् अवगन्तुम् न अर्हसि। हे सन्नतगात्रि सन्नताङ्गि। 'अङ्गगात्रकण्ठेभ्यः' इति वक्त-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

व्यात् ङीष् । यतः कारणात् मनस ईषिभिः मनीषिभिः विद्वद्भिः । शकन्ध्वादित्वात्साधुः । सताम् संगतम् सख्यम् सप्तभिः पदैः आपद्यते इति साप्तपदीनम् सप्तपदोच्चारणसाध्यम् उच्यते । तच्चावयोस्त्वत्कृतसत्कार-प्रयोगादेव सिद्धमित्यर्थः । 'साप्तपदीनम् सख्यम्' इति निपातनात्साधुः ॥३६॥

अन्वय :—आत्मना प्रयुक्तसत्कारविशेषम् माम् परम् संप्रतिपत्तुम् न अर्हसि, (हे) सन्नतगात्रि, यतः मनीषिभि; सताम् संगतम् साप्तपदीनम् उच्यते ॥३६॥

टिप्पणी :—आत्मना—स्वयम्— खुद तुमसे, नकि किसी नौकर-चाकर से । प्रयुक्तसत्कारविशेषम्—प्रयुक्तः (कृतः) सत्कारस्य विशेषो यस्मैः सः तम् , जिसका विशेष प्रकार से सत्कार किया गया है । परम्—अन्यम् दूसरा व्यक्ति; अपरिचित । सम्प्रतिपत्तुम् (सम् + प्रति + पद् + तुमुन्) बोद्धुम् , समझना; जानना । सन्नतगात्रि—सम् (सम्यक्) नतानि गात्राणि यस्याः सा सन्नतगात्री, तस्याः सम्बोधने हे सन्नतगात्रि (सुन्दराङ्गि) सुन्दर शरीरवाली । "नतम् चारु सन्नतम्" इति भोजः । "अङ्गगात्रकण्ठेभ्यो वक्तव्यम्" इस वार्तिक से स्त्रीलिङ्ग बनाने के वास्ते ङीष् प्रत्यय लगा । जिन बहुव्रीहि समासों में अङ्ग, गात्र, या कण्ठ शब्द अन्त में रहते हैं उनका स्त्रीलिङ्ग आ या ई लगाकर बनता है । इसी से ङीष् प्रत्यय लगाकर सन्नतगात्री बना । दूसरा रूप सन्नतगात्रा भी होगा । मनीषिभिः—(मनीषा + इनिः) मनीषा—बुद्धिः अस्यास्तीति मनीषी ते तैः मनीषिभिः, बुद्धिमानों के द्वारा । "बुद्धिर्मनीषा धिषणा धीः प्रज्ञा शेमुषी मतिः" इत्यमरः । "व्रीह्यादिभ्यश्च" पा० ५. २. ११६ से इनि प्रत्यय लगा । सताम्—सज्जनानाम्, सज्जनों का । यह सत् शब्द की षष्ठी का ब० व० है । सन्—सन्तौ—सन्तः । सन्तम्—सन्तौ—सतः । सता—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सद्भ्याम्--सद्भिः आदि रूप चलेंगे। संगतम्-(सम्+गम्+क्त) सख्यम्, मित्रता, दोस्ती, मिलन। साप्तपदीनम्--सप्तपद+खञ्+ईन। सप्तानाम् पदानाम् समाहारः साप्तपदम् (द्विगुसमास), सप्तपदेन (सप्तभिः पदैः वा) अवाप्यते इति साप्तपदीनम्। पद शब्द के दो अर्थ हैं (१) शब्द (२) कदम। अतः इसके दो अर्थ हैं (१) जो सात शब्दों के बोलने से हो जाय, (२) जो सात कदमों के चलने से हो जाय। ऐसी मित्रता। यह शाब्दिक अर्थों में नहीं प्रयुक्त होता। यह मित्रता के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसका रूप अनियमित है। "साप्तपदीनम् सख्यम्" पा० ४. २. २२ "सख्यम् साप्तपदीनम् स्यात्" इत्यमरः। और भी देखिये "सम्बन्धमाभाषणपूर्वमाहुः" रघु० २. ५८. और "सतां सप्तपदा मैत्री सत्सतां त्रिपदा स्मृता। सत्सतामपि ये सन्तस्तेषाम् मैत्री पदे पदे"। शिवजी के कहने का अर्थ प्रायः यह है कि चूँकि उनकी व पार्वती की कुछ बातचीत हो गई है इस वास्ते वे मित्र हो गये और आपस में एक दूसरे से अपरिचित नहीं रह गए। अतः उन (शिव) को यह अधिकार है कि अब और भी पार्वती के विषय में पूछें।

वाच्य परिवर्तन :—आत्मना प्रयुक्तसस्कारविशेषः अहं परः संप्रतिपत्तुम् न अर्हो' (हे) सन्नतगात्रि, यतः मनीषिणः सताम् संगतं साप्तपदीनम् ब्रुवन्ति॥३६॥

अनुवाद :—(तुमने) अपने आप जिसका विशेष आदर किया है ऐसे मुझको कोई दूसरा (अजनबी) मत समझो, क्योंकि हे सुन्दरी, बुद्धिमान् लोग सज्जनों की मित्रता को सात शब्दों के बोलने (या सात कदमों के चलने) से होने वाली कहते हैं॥३६॥

संस्कृत में भावार्थ :—हे सुन्दरि, अहमत्रागतस्त्वया यथाविधि सत्कृतः त्वया सह मे वार्त्तालापश्च जातः, अतोऽहम् त्वदीयो जनो

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जातः । अधुना त्वयाहम् स्वमित्रमेव मन्तव्यः, यतः सज्जनानाम् मैत्री परस्परम् सप्तपदोच्चारणेन सप्तपदगमनेन वा सिध्यतीति विद्वज्जनानाम् सम्मतिः । इदानीम् तव मित्रत्वान्मे तव हार्दिकीमिच्छाम् ज्ञातुमधिकारोऽस्तीति भावः ॥ ३६ ॥

अतोऽत्र किञ्चिद्भवतीं बहुक्षमां
द्विजातिभावादुपपन्नचापलः ।
अयं जनः प्रष्टुमनास्तपोधने
न चेद्रहस्यं प्रतिवक्तुमर्हसि ॥ ४० ॥

टीका :—अत इति । हे तपोधने अतः सख्याद्धेतोः अत्र प्रस्तावे बहुक्षमाम् बहूक्तिसहाम् । यद्वा क्षमावतीम् भवतीम् त्वाम् द्विजातिभावाद् ब्रह्मत्वाद् उपपन्नचापलः सुलभधाष्टर्यः अयम् जनः । स्वयमित्यर्थः । किञ्चित् प्रष्टुम् मनो यस्य स प्रष्टुमनाः प्रष्टुकामः । 'तुम् काममनसोरपि' इति मकारलोपः । रहसि भवम् रहस्यम् गोप्यम् न चेत् प्रतिवक्तुम् अर्हसि ॥ ४० ॥

अन्वयः—(हे) तपोधने, अत्र द्विजातिभावात् उपपन्नचापलः अयम् जनः बहुक्षमाम् भवतीम् किञ्चित् प्रष्टुमनाः (अस्ति) चेद् रहस्यम् न, प्रतिवक्तुम् अर्हसि ॥ ४० ॥

टिप्पणी :—तपोधने—तप एव धनं यस्याः सा तपोधना तत्सम्बोधने हे तपोधने, तपस्या ही है धन जिसका । अत्र—तपःसम्बन्धे, अपनी तपस्या के बारे में द्विजातिभावात्—(जन् + क्तिन्) = जातिः द्वे जाती (जन्मनी) यस्य सः द्विजातिः तस्य भावः द्विजातिभावः तस्मात् मेरे ब्राह्मण होने के कारण । द्विजाति—जिनका दो जन्म हो—एक तो गर्भ से जन्म, दूसरा गुरु के द्वारा संस्कार करने पर जन्म । इस वास्ते द्विज से तीन वर्ण यानी ब्राह्मण, क्षत्रिय, तथा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वैश्य का अर्थ होता है "मातुर्यदग्रे जायन्ते द्वितीयम् मौञ्जिबन्धनात् । ब्राह्मणक्षत्रियविशस्तस्मादेते द्विजाः स्मृताः" मनु० २.१६६ । परन्तु यहाँ पर केवल ब्राह्मण से अर्थ है । यहाँ "कारणे" पञ्चमी है । शिवजी के कहने का मतलब है कि ब्राह्मण होने के कारण उनको उत्सुकता पैदा हो गई है । उपपन्नचापलः—उपपन्नम् (उप + पद् + क्त) संभाव्यम् प्राप्तम् । चापलम् (चपल + अण्) चपलस्य भावः चापलम् (धृष्टता) चञ्चलता, उत्सुकता । उपपन्नम् चापलम् यस्य सः उपपन्नचापलः । जो उत्सुक हो गया है । अयम् जनः—मैं । बहुक्षमाम्—बहुः क्षमा यस्याम् सा तां बहुक्षमाम् या बहुक्षाम्यतीति बहुक्षमा ताम्—जिसमें बड़ी सहनशीलता हो; जिसमें दुःख सहन करने की शक्ति हो; जो क्षमा करने वाली हो । यही कारण है कि शिव कुछ और पूछने को उत्सुक हो जाते हैं । प्रष्टुमनाः—(प्रच्छ + तुमुन् + मनाः) प्रष्टुम् मनो यस्य सः प्रष्टुमनाः, जो और कुछ पूछना चाहता है । 'तुं काममनसोरपि" से प्रष्टुम् के मकार का लोप हो गया । रहस्यम् (रहस् + यत्) रहसि भवम् रहस्यम् (गोप्यम्) गुप्त बात । प्रतिवक्तुम्—(प्रति + वच + तुमुन्) कहने को । कहीं-कहीं प्रतिवक्तुमर्हसि के स्थान में प्रतिबोधयिष्यसि पाठ है । प्रतिबोधयिष्यसि—(तुम बताओगी) ।

वाच्य परिवर्तन :—(हे) तपोधने, अतः 'अत्र द्विजातिभावाद् उपपन्नचापलेन अनेन जनेन बहुक्षमाम् भवतीम् किञ्चित् प्रष्टुमनसा (भूयते), चेद् रहस्येन न (भूयते) तर्हि (त्वया) प्रतिवक्तुमर्ह्यते ॥ ४० ॥

अनुवाद :—हे तपस्विनि, इसलिये इस (तुम्हारी तपस्या) के बारे में ब्राह्मण होने के कारण प्रगल्भ हुआ यह व्यक्ति (मैं) अत्यन्त सहनशील आपसे कुछ पूछने की इच्छा वाला है । यदि कोई गुप्त बात न हो तो आप उत्तर देने की कृपा करें ॥ ४० ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

संस्कृत में भावार्थ :—यतोऽहम् त्वत्तोऽभिन्नः, ब्राह्मणत्वाच्च तव विषये ज्ञातुम् मे महत्कुतूहलम्, अतोऽहम् त्वाम् किञ्चित्प्रष्टुमिच्छामि । त्वया च क्रोधो न कार्यो यतस्त्वम् तपस्विनी बहुक्षमायुक्ता च । हे तपस्विनि पार्वति, अधुना यद्यस्मिन् विषये किञ्चिद् गोप्यम् न भवेत् तर्हि कृपया कथनीयम् ।। ४० ।।

कुले प्रसूतिः प्रथमस्य वेधस-
स्त्रिलोकसौन्दर्यमिवोदितं वपुः ।
अमृग्यमैश्वर्यसुखं नवं वय-
स्तपःफलं स्यात्किमतः परं वद ।। ४१ ।।

टीका :—प्रष्टव्यमाह । कुल इति । प्रथमस्य वेधसः हिरण्यगर्भस्य कुले अन्वये । प्रसूतिः उत्पत्तिः 'यज्ञार्थं हि मया सृष्टो हिमवानचलेश्वरः' इति ब्रह्मपुराणवचनात् । वपुः शरीरम् त्रिलोकसौन्दर्यम् त्रयाणाम् लोकानाम् सौन्दर्यम् इव उदितम् एकत्र समाहृतम् । ऐश्वर्यसुखम् संपत्सुखम् अमृग्यम् अन्वेषणीयम् न भवति किन्तु तु सिद्धमेवेत्यर्थः । वयः नवम् । यौवनमित्यर्थः अतः परम् अतोऽन्यत् किम् तपःफलम् स्यात् वद अस्ति चेदिति शेषः । न किञ्चिदस्तीत्यर्थः ।। ४१ ।।

अन्वय :—प्रथमस्य वेधसः कुले प्रसूतिः, वपुः त्रिलोकसौन्दर्यम् इव उदितम् ऐश्वर्य-सुखम् अमृग्यम्, वयः नवम् अतः परं किं तपःफलं स्यात् वद ।

टिप्पणी :—प्रथमस्य—सर्वाद्यस्य—सब से पहले का । ब्रह्मणः—ब्रह्मा का; मनुष्य जाति के पैदा करने वाले का । "स्रष्टा प्रजापतिर्वेधा विधाता विश्वसृड् विधिः" इत्यमरः । वेधस् का रूप—वेधाः—वेधसौ—वेधसः । वेधसम्, वेधसौ, वेधसः । वेधसा, वेधोभ्याम्,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वेधोभिः इत्यादि । प्रसूतिः—जन्म । पार्वती के पिता हिमालय को ब्रह्मा ने रचा था । "यज्ञाथ हि मया सृष्टो हिमावानचलेश्वरः" । त्रिलोकसौन्दर्यम्—त्र्यवयवो लोकस्त्रिलोकः तस्य सौन्दर्यम् त्रिलोक-सौन्दर्यम्, तीनों लोकों की सुन्दरता । त्रिलोक—त्रयाणां लोकानाम् समाहारः त्रिलोकी । सौन्दर्यम् (सुन्दर+ष्यञ्) सुन्दरस्य भावः सौन्दर्यम्, सुन्दरता । उदितम्—उद्+इ+क्त; उत्पन्नम्—एकत्र समाहृतम्, एक जगह इकट्ठी कर दी गई । यही भाव देखिये :—'सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्ना देकस्थ सौन्दर्यदिदृक्षयेव' कुमारसम्भवम् १.४९. पार्वती इतनी सुन्दर थीं कि कवि ने यह उत्प्रेक्षा की है कि मानों तीनों लोकों की सुन्दरता एक जगह एकत्र कर दी गई हो । ऐश्वर्यसुखम्—(ईश्वर+ष्यञ्) ऐश्वर्यस्य सम्पत्तेः सुखम् ऐश्वर्य का सुख । ऐश्वर्य—अनेक प्रकार की सम्पत्ति । अमृग्यम्—न मृग्यम् अमृग्यम् (मृग्+यत्) जो खोजा न जाय, जिसे खोजने की जरूरत न हो । "अचो यत्" पा० ३.१.९७ से यत् प्रत्यय हुआ । पार्वती को धन खोजने की आवश्यकता न थी । क्योंकि उनके पिता के घर में सभी सम्पत्तियाँ उपलब्ध थीं । वयः—अवस्था । नवम्—नूतनम्, नई । अतः परम्—इसके अलावा; इससे ज्यादा । जो तीन चीजें ऊपर गिनाई गई हैं । तपः-फलम्—तपसः फलम्, तपस्या का फल ।

शिव के कहने का तात्पर्य यह है कि पार्वती को सुन्दर वंश में जन्म मिला ही था, रूप मिला ही था, नई अवस्था उनकी थी ही । ऐश्वर्य का सारा सुख प्राप्त ही था । इन्हीं वस्तुओं के वास्ते लोग तपस्या करते हैं । तो फिर वह क्यों तपस्या कर रही थी ? इसी वास्ते शिव ने प्रश्न किया ।

वाच्य परिवर्तन :—प्रथमस्य वेधसः कुले प्रसूत्या (भूयते) वपुषा त्रिलोकसौन्दर्येण इव उदितेन (भूयते), ऐश्वर्यसुखेन

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अमृग्येन (भूयते), वयसा नवेन (भूयते), अतः परम् केन तपः-फलेन भूयते इति (उच्यताम्) ॥ ४१ ॥

अनुवाद :—(मनुष्य जाति के) प्रथम उत्पादक ब्रह्मा के वंश में (तुम्हारा) जन्म है, शरीर में मानो तीनों लोकों की सुन्दरता एकत्रित हो गई हो, सम्पत्ति का सुख (तुम्हें) ढूँढ़ना ही नहीं है, आयु नई है, तो बताओ इससे बढ़ कर और क्या तपस्या का फल हो सकता है ? ॥ ४१ ॥

संस्कृत में भावार्थ :—संसारे प्रायेण जनाः श्रेष्ठकुल-जन्मार्थम् सौन्दर्यार्थम्, सम्पत्त्यर्थम्, यौवनार्थम् वा नानाविधानि तपांसि कुर्वन्ति । परम् तानि सर्वाण्यपि तव स्वभावतः सिद्धानि—आद्यब्रह्मणः कुले ते जन्म जातम्, तव देहस्त्रयाणामपि लोकानाम् एकत्रीकृतम् लावण्यमिवास्ति । तव पितुः गृहमखिलैश्वर्यस्य निधानम्, आयुश्च ते नूतनम् । तर्हि त्वम् किमर्थम् कठिनम् तप आचरसि ? त्वम् बुद्धिमती कारणम् विना न तपस्यसि—तदेव कारणमहं ज्ञातुकामः ॥ ४१ ॥

भवत्यनिष्टादपि नाम दुस्सहा-
न्मनस्विनीनां प्रतिपत्तिरीदृशी ।
विचारमार्गप्रहितेन चेतसा
न दृश्यते तच्च कृशोदरि त्वयि ॥ ४२ ॥

टीका :—भवतीति । दुःसहात् सोढुमशक्यात् अनिष्टाद् भर्त्रादिकृतात् अपि मनस्विनीनाम् धीरस्त्रीणाम् ईदृशी तपश्चरण-लक्षणा प्रतिपत्तिः प्रवृत्तिः । 'प्रतिपत्तिस्तु गौरवे । प्रवृत्तौ प्राप्तौ प्रागल्भ्ये' इति केशवः । भवति नाम । नामेति संभावनायाम् ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विचारमार्गप्रहितेन विचारमार्गे प्रहितेन चेतसा चित्तेन तद् अनिष्टम् च हे कृशोदरि त्वयि न दृश्यते विचार्यमाणे तदपि नास्त्यसंभावितत्वादित्यर्थः ॥ ४२ ॥

अन्वय :—दुस्सहाद् अनिष्टादपि मनस्विनीनाम् ईदृशी प्रतिपत्तिः भवति नाम, (परम्) (हे) कृशोदरि, विचारमार्गप्रहितेन चेतसा तत् च त्वयि न दृश्यते ॥ ४२ ॥

टिप्पणी :—दुःसहात्—(दुर्+सह+खल्) दुःखेन सहते इति दुस्सहः; तस्मात्, जो कठिनता से बर्दाश्त किया जा सके। यह अनिष्टात् का विशेषण है। इष्टात् (इष्+क्त) न इष्टात्, बुराई से। पति द्वारा दी गई तकलीफ। ताः मनस्विन्यः तासाम् (अभिमानवतीनाम्), गुणवती अथवा मानिनी औरतों का। ईदृशी—(इदम्+दृश्+कञ्+ङीप्) इयमिव दृश्यते इति ईदृशी। इस प्रकार से। "त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च" पा० ३.२.६० प्रतिपत्तिः—(प्रति+पद्+क्तिन्) प्रवृत्ति :—झुकाव; स्वभाव। "प्रतिपत्तिस्तु गौरवे। प्राप्तौ प्रवृत्तौ प्रागल्भ्ये" इति केशवः। नाम—संभाव्यते यह अव्यय है। इसका अर्थ है "सम्भव है"। कृशोदरि, (कृश+उदर+ङीप्) कृशम् उदरम् (कटिप्रदेशः) यस्याः सा कृशोदरी तत्सम्बोधने हे कृशोदरि, पतली कमर वाली। "नासिकोदरोष्ठ जंघादन्त कर्ण श्रृङ्गाच्च" पा० ४. १. ५५ से "ङीप"; प्रत्यय लगा। अर्थात् यदि कोई बहुव्रीहि समास नासिका आदि शब्दों पर खतम होता है तो उसमें विकल्प से ङीप् प्रत्यय लगता है। दूसरा रूप कृशोदरा है। विचार-मार्ग-प्रहितेन—विचारस्य मार्गे प्रहितम् विचारमार्गप्रहितम् तेन, विचार करने के बाद। चेतसा—चित्तेन। चित्त से। तत्—तदनिष्टम्, तुम्हारे साथ किया हुआ अन्याय। त्वयि—तुम्हारे सम्बन्ध में। न ज्ञायते—नहीं मालूम पड़ता ॥ ४२ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वाच्य परिवर्तन :—दुःसहाद् अनिष्टाद् अपि मनस्विनीनाम् ईदृश्या प्रतिपत्त्या भूयते नाम, (हे) कृशोदरि, विचारमार्गप्रहितम् चेतः तत् च त्वयि न पश्यति ॥ ४२ ॥

अनुवाद :—न सहने योग्य बुराई से भी मानिनी स्त्रियों का ऐसा (कार्य करने को) मन का झुकाव हो सकता है, (परन्तु) हे सुन्दर कटिवाली, विचार करने वाले मन से तुम्हारे बारे में वह भी (संभव) नहीं दीखता ॥ ४२ ॥

संस्कृत में भावार्थ :—लोके कदाचिद् भर्त्रादिभिः संबन्धिभिस्तिरस्कृताः मानिन्यो नार्यः तपोजीवनम् स्वीकुर्वन्ति, परम् हे सुमध्यमे, त्वामन्तरेण तु एतदपि तपस्यायाः कारणम् न ज्ञायते ॥४२॥

अलभ्यशोकाभिभवेयमाकृति-
विमानना सुभ्रु कुतः पितुर्गृहे ।
पराभिमर्शो न तवास्ति कः करं
प्रसारयेत् पन्नगरत्नसूचये ॥ ४३ ॥

टीका :—अनिष्टाभावमेव प्रपञ्चयति । अलभ्येति । सुभ्रु, इयम् त्वदीया आकृतिः मूर्तिःअलभ्यशोकाभिभवा अलभ्यो लब्धुमनर्हः शोकेन भर्त्राद्यवमानेन दुःखेनाभिभवस्तिरस्कारो यस्याः सा तथोक्ता दृश्यतइति शेषः असंभावितश्चायमर्थ इत्याह । पितुर्गृहे विमानना अपमानः कुतः। न संभाव्यत एवेत्यर्थः । न चाप्यन्यस्माद्भावीत्याह पराभिमर्शः परधर्षणम् तु तव नास्ति । पन्नगरत्नसूचये फणिशिरोमणिशलाकाम् ग्रहीतुमित्यर्थः । 'क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः' इति चतुर्थी । करम् हस्तम् कः प्रसारयेत् । सुभ्र इत्यत्र भ्रूशब्दस्योवङ् स्थानीयत्वात् 'नेयङुवङ् स्थानावस्त्री' इति नदीसंज्ञाप्रतिषेधात् । 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः' इति ह्रस्वत्वम् नास्ति । तेन ह्रस्वः प्रामादिकः इति केचित् । अन्ये तु

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'अप्राणिजातेश्चारज्ज्वादीनाम्' इत्यत्र अलाबूः कर्कन्धूः इत्युकारान्ताद-प्यूङ् प्रत्ययमुदाजहार। भाष्यकारः एतस्मादेव ज्ञापकात् क्वचिदूकारा-न्तस्याप्यूङन्तत्वान्नदीत्वे ह्रस्वत्वमित्याहुः। अत एवाह वामनः—'ऊकारान्तादप्यूङ् प्रवृत्तेः' इति। 'सुभ्रूः कुतस्तातगृहेऽवमाननम्' इति पाठान्तरकरणम् तु साहसमेवोक्तोपपत्तिसंभवात्। अन्यत्रापि 'सुभ्रु त्वम् कुपितेत्यपास्तमशनम् त्यक्ता कथा योषिताम्' इत्यादिप्रयोगदर्श-नाद्वंशस्थवृत्ते पादादौ जगण-भङ्गप्रसङ्गाच्चेत्यलं गोष्ठीभिः ॥४३॥

अन्वय :—(हे) सुभ्रु, इयम् आकृतिः अलभ्यशोकाभिभवा; (किञ्च) पितुः गृहे विमानना कुतः, तव पराभिमर्शः न अस्ति, कः पन्नगरत्नसूचये करम् प्रसारयेत् ? ॥ ४३ ॥

टिप्पणी :—सुभ्रु—शोभने भ्रुवौ यस्याः सा सुभ्रूः, तस्याः संबोधने। सुन्दर भौंह वाली। सिद्धान्तकौमुदी के लेखक के अनु-सार 'सुभ्रू' का संबोधन एकवचन 'सुभ्रु' होगा, न कि 'सुभ्रू' जैसा कि पुस्तक में दिया गया है, क्योंकि केवल 'नदीसंज्ञक' शब्दों के दीर्घ 'ऊ' को सम्बोधन के एकवचन में ह्रस्व 'उ' हो जाता है। इसके लिए यह सूत्र है 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः' पा० १. ३. १०७ अर्थात् जिन शब्दों का अर्थ माता हो (अम्बार्थ) उनका और नदीसंज्ञक शब्दों का रूप सम्बोधन एकवचन में ह्रस्व हो जाता है; और चूँकि 'सुभ्रू' नदीसंज्ञक शब्द नहीं है और न तो अम्बार्थ है क्योंकि उसमें 'नेयङुवङ्स्थानावस्त्री' पा० १४. ४ नियम लगता है अर्थात् स्त्री शब्द को छोड़कर जिस शब्द को 'ऊ' के स्थान में 'इयङ्' या 'उवङ्' हो जाता है वे 'नदीसंज्ञक' नहीं कहलाते। इसलिए इसके भी 'ऊ' को ह्रस्व नहीं होना चाहिए था। किन्तु मल्लिनाथ यह कह-कर इसका समर्थन करते हैं कि भाष्यकार पतञ्जलि के अनुसार कहीं-कहीं अन्तिम स्वर को ह्रस्व करने का विधान है, क्योंकि

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'अप्राणिजातेश्चारज्ज्वादीनामुपसंख्यानम्' का टीका करते समय 'अलाबू' और 'कर्कन्धू' शब्दों का उदाहरण दिया है। इस प्रकार से उन्होंने यह दर्शाया है कि कभी कभी ऊकारान्त शब्दों में भी 'ऊङ्' आदेश हो जाता है और वे भी नदीसंज्ञक हो जाते हैं और इस प्रकार संबोधन के एकवचन में उनके स्वर का भी ह्रस्व हो जाता है। वामन भी 'ऊकारान्तादप्यूङ् प्रवृत्तेः' कहकर इसी बात का समर्थन करते हैं। इस प्रकार सुभ्रू में ऊङ् जोड़ दिया जायगा। और जब इसके ऊ के स्थान में उवङ् न होगा तो यह भी नदीसंज्ञक होगा और सम्बोधन ए० व० में इसका ह्रस्व हो जायगा। और कवियों ने भी इसको ह्रस्व उ में ही लिखा है। उदाहरणार्थ "सुभ्रु त्वम् कुपितेत्य-पास्तमशनम्"। इयम्—यह (तुम्हारी)। अलभ्यशोकाभिभवा—(लभ् + यत्) न लभ्यः अलभ्यः। अलभ्यः शोकश्च अभिभवश्च (तिरस्कारश्च) यया सा अलभ्यशोकाभिभवा, जो शोक व अपमान के योग्य नहीं है। अथवा न लभ्यः शोकेन अभिभवो यस्याः सा, जो अपमानजन्य दुःख के योग्य नहीं है। यह समझा जाता है कि सुन्दर पुरुषों को दुःख नहीं हो सकता। विमानना (मान् + युच्) —अपमानः, अपमान, निरादर। कुतः—कैसे; कहाँ से (किम् + तसिल्)। "कुति होः" पा० ७.२.१४ से किम् को कु हो गया। पराभिमर्शः—परेण अभिमर्शः पराभिमर्शः, दूसरे के द्वारा छुआ जाना, दूसरा छू भी नहीं सकता। (मृश् + घञ्)। पन्नगरत्नसूचये—पन्नगः– (पन्न + गम् + ड) पन्नम् गच्छतीति पन्नगः—सर्पः, साँप। रत्नस्य सूचिः रत्नसूचिः, रत्न की नोक। पन्नगस्य रत्नसूचिः पन्नगरत्न-सूचिः तस्यै पन्नगरत्नसूचये (सर्पमणिशलाकामादातुम्), सर्प की मणि की नोक को छूने के लिये। "क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः" पा० २.३.१४ से सूचये में चतुर्थी हुई है। जहाँ पर तुमुन् का अर्थ होता है वहाँ तुमुन् के कर्म में चतुर्थी होती है। सूचये यानी सूचिम् ग्रहीतुम्।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

करम्—हस्तम् , हाथ को। प्रसारयेत—(प्र+सृ+णिच+लिङ्), फैला सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार सर्प की मणि की नोक को छूना असम्भव है उसी प्रकार पार्वती के शरीर को भी कोई छू नहीं सकता।

वाच्य परिवर्तन :—(हे) सुभ्रु, अनया आकृत्या अलभ्य-शोकाभिभवया (भूयते), पितुः गृहे विमाननया कुतः (भूयते), तव पराभिमर्शेण न भूयते, केन पन्नगरत्नसूचये करः प्रसार्येत ? ॥४३॥

अनुवाद :—(हे) सुन्दर भौं वाली, यह तुम्हारा रूप दुःख से पीड़ित होने योग्य नहीं है, (और फिर) पिता के घर पर अपमान कैसा ? तुम्हें कोई दूसरा व्यक्ति छू (धमका) भी नहीं सकता, (क्योंकि) कौन साँप की मणि की नोक के (लेने के) लिये हाथ बढ़ायेगा ? ॥४३॥

संस्कृत में भावार्थ :—हे शोभनभ्रूयुक्ते पार्वति, 'सामुद्रिक-लक्षणयुक्ता आकृत्याऽनिष्टभाजो न दृष्टाः' इति न्यायात् शुभलक्षणोपेतम् ते सुन्दरम् रूपम् दुःखयोग्यम् नास्ति। कुमारित्वात् भर्तृकृतानिष्टस्य तु शङ्कैव नास्ति, परम् ते पिताऽपि त्वयि नितराम् स्निह्यति अतस्तव जनकस्य गृहेऽपि तेऽपमानः केनापि कर्त्तुं न शक्यते। भर्तृपित्राद्यतिरिक्तः कश्चिदन्यस्त्वाम तिरस्कुर्यादिति शङ्कयाप्यलम्। न हि कश्चिदपि सर्पस्य शिरोमणिम् ग्रहीतुम उद्यमम् करोति। यथा हि सर्पमणेर्ग्रहणम् दुष्करमेवमेव ते धर्षणमपीति तात्पर्यम्॥४३॥

किमित्यपास्याभरणानि यौवने
धृतं त्वया वार्धकशोभि वल्कलम्।
वद प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका
विभावरी यद्यरुणाय कल्पते ॥४४॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

टीका :—किमिति। हे गौरि किमिति केन हेतुना यौवने त्वया आभरणानि अपास्य विहाय। वृद्धस्य भावो वाधकम्। मनोज्ञादित्वात् वुञ्प्रत्ययः। 'वार्धकम् वृद्धसंघाते वृद्धत्वे वृद्धकर्मणि' इति विश्वः। तत्र शोभत इति वार्धकशोभि वल्कलम् धृतम्। प्रदोषे रजनीमुखे स्फुटाः प्रकटाश्चन्द्रस्तारकाश्च यस्याः सा स्फुटचन्द्रतारका विभावरी रात्रिः अरुणाय सूर्यसुताय कल्पते यदि अरुणम् गन्तुम् कल्पते किम् वदब्रूहि। 'क्रियार्थोपपदस्य' इत्यादिना चतुर्थी। दीप्यमानशशाङ्कतारके प्रदोषे यद्यरुण उदेति ततो विभूषणापहारेण तव वल्कलधारणम् संघटत इति भावः ॥४४॥

अन्वय :—(हे गौरि) त्वया यौवने आभरणानि अपास्य वार्धकशोभि वल्कलम् किम् इति धृतम् ? यदि स्फुटचन्द्रतारका विभावरी प्रदोषे अरुणाय कल्पते (तर्हि) वद ॥४४॥

टिप्पणी :–यौवने (युवन्+अण्)—यूनो भावः यौवनम् तस्मिन्, जवानी में; युवावस्था में। अपास्य—(अप+अस्+ल्यप्), त्यक्त्वा, छोड़कर; त्यागकर। वार्द्धकशोभि—वार्द्धकम् वृद्धस्य भावः वार्द्धकम्, (वृद्ध+वुञ्) बुढ़ाई। "द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च" पा० ५. १. १३३ से वुञ् प्रत्यय हुआ; वुञ् का अक हो गया। वार्द्धके शोभते इति वार्द्धकशोभि—बुढ़ाई में अच्छा लगने वाला। वृद्धावस्था में पहनने के योग्य। यह वल्कलम् का विशेषण है। वल्कल पेड़ की छाल है, इसको प्रायः तपस्वी लोग पहनते हैं। स्फुटचन्द्रतारका—स्फुटाः (प्रकाशमानाः) चन्द्रः तारकाश्च यस्याम् सा स्फुटचन्द्रतारका, जिसमें तारे और चन्द्रमा चमक रहे हों। विभावरी—रात, (वि+भा+वनिप्+ङीप्), विभाति इति विभावरी। "विभावरीतमस्विन्यौ रजनी यामिनी तमी" इत्यमरः। "वनोरच" पा० ४१. ७ से स्त्रीलिङ्ग वनाने के लिये ङीप् प्रत्यय लगा। इसी सूत्र से वनिप्

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

के "न" को "र" हो जाता है। प्रदोषे–रात्रिमुखे; रात्रेः पूर्वभागे; रात के पहले पहर में, जब रात का प्रारम्भ हो। 'प्रदोषो रजनीमुखम्' इत्यमरः। अरुणाय—प्रातःकाल के वास्ते। अरुण कश्यप और विनता का पुत्र है और गरुड़ का बड़ा भाई। इसके जंघे नहीं हैं। इससे इसको अनूरु भी कहते हैं। यह सूर्य का सारथि है। अरुण माने लाल रंग भी होता है। चूँकि सूर्योदय के पहले आकाश लाल रहता है, इस वास्ते अरुण को सुबह का दूत भी कहते हैं। अरुणाय—अरुणम् गन्तुम्, अरुणोदयम् कर्त्तुम्, अरुणोदय करने के वास्ते। "क्रियार्थोपपदस्य च" से चतुर्थी हुई है। कल्पते—प्रभवति—समर्थ हो सकती है। योग्य हो सकती है। शिव के कहने का अभिप्राय यह है कि जैसे प्रथम भाग में रात सुबह होने की बात नहीं सोच सकती, उसी प्रकार पार्वती को युवावस्था में ही वल्कल-धारण करने की बात नहीं सोचना चाहिये था। एक तरफ तो चन्द्रमा, तारे और अरुण और दूसरी तरफ आभूषण और वल्कल। उनका सम्बन्ध अधिक प्रभावशाली प्रतीत होता है जब उनकी चमक और रंग का विचार किया जाता है। आभूषण तो चन्द्रमा तथा तारों की भाँति चमकते हैं और वल्कल का वही रंग है जो अरुण का अतः यह उपमा अधिक प्रभावशालिनी है।

वाच्य परिवर्तन :—(हे गौरि), त्वम् यौवने आभरणानि अपास्य वार्धकशोभि वल्कलम् किमिति धृतवती ? यदि स्फुटचन्द्र-तारकया विभावर्या प्रदोषे अरुणाय कल्प्यते तर्हि (त्वया) उह्यताम् ॥४४॥

अनुवाद :—(हे पार्वति), तुमने युवावस्था में आभूषणों को छोड़ कर वृद्धावस्था में अच्छी लगने वाली वृक्ष की छाल क्यों धारण कर ली है ? बता तो सही, कहीं चमकते हुए चन्द्रमा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तथा तारों वाली रात्रि प्रारम्भ में ही प्रभात में परिणत हो सकती है ? ॥४४॥

संस्कृत में भावार्थ :—एष ते भूषणधारणसमयो, न तु वल्कल-धारणस्य। तर्हि, हे पार्वति ! केन कारणेन त्वया भूषणानि त्यक्त्वा वृद्धावस्थायोग्यं वल्कलधारणम् कृतम् ? किं कदाचिदेतद् भवितुं शक्नोति यच्चन्द्रतारकैः शोभमाना रात्रिः अकाल एव प्रभाते परिणता भवेत् ? यथा हि रात्रेः प्रारम्भ एव शशाङ्कतारका अस्तम् गच्छेयुः अरुणश्चोदयम् गच्छेदिति असंगतमेव। एवमेव नवे वयसि आभर-णानि त्यक्त्वा तव वल्कलधारणमसंगतम् ॥४४॥

दिवं यदि प्रार्थयसे वृथा श्रमः
पितुः प्रदेशास्तव देवभूमयः।
अथोपयन्तारमलं समाधिना
न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत् ॥४५॥

टीका :—तपःप्रयोजनम् निराकर्त्तुमाह। दिवमिति। दिवम् स्वर्गम् प्रार्थयसे कामयसे यदि तर्हि श्रमः तपश्चरणप्रयासः वृथा निष्फलः। यदि स्वर्गार्थम् तप्यसे ततः श्रमम् मा कार्षीः। कुतः, तव पितुः हिमवतः प्रदेशाः देवभूमयः। स्वर्गपदार्थाः तत्रत्या इत्यर्थः। अथ उपयन्तारम् वरम् प्रार्थयसे तर्हि समाधिना तपसा अलम्। न कर्त्तव्यमित्यर्थः। निषेध्यस्य निषेधम् प्रति करणत्वात्तृतीया। तथा हि। रत्नम्। कर्तृ। न अन्विष्यति न मृगयते। ग्रहीतारमिति शेषः। किन्तु तत् रत्नम् मृग्यते। ग्रहीतृभिरिति शेषः। न हि वरार्थम् त्वया तपसि वर्तितव्यम्, किन्तु तेनैव त्वदर्थमिति भावः ॥४५॥

अन्वय :—यदि दिवम् प्रार्थयसे (तर्हि) श्रमः वृथा, (यतः) तव पितुः प्रदेशाः देवभूमयः (सन्ति), अथ उपयन्तारम् (प्रार्थयसे

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तर्हि) समाधिना अलम् रत्नम् न अन्विष्यति, हि तद् मृग्यते ॥४५॥

टिप्पणी :—दिवम्—स्वर्गम्—स्वर्ग । प्रार्थयसे—अभिलषसि—चाहती हो। श्रमः—मिहनत; तपस्या। 'अभ्यासे शस्त्रविद्यादौ वेदे तपसि च श्रमः' इति भोजः। पितुः—जनकस्य—पिता (हिमालय) के। देवभूमयः—देवानाम् भूमयः देवभूमयः, देवताओं का निवासस्थान। अगर तुम स्वर्ग पाने के वास्ते तपस्या करती हो तो व्यर्थ है, क्योंकि तुम्हारे पिता की भूमि तो देवताओं का निवास-स्थान है। उपयन्तारम्—(उप+यम्+तृच्) वरम्, पति। अलम्—न कर्त्तव्यमित्यर्थः, बस, मत करो। न अन्विष्यति—न मृगयते, नहीं खोजता। अन्विष्यति का कर्त्ता 'रत्नम्' है। तत्—वह रत्न। मृग्यते—अन्विष्यते, खोजा जाता है। न-रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्' यह सामान्य उक्ति है। इसका अर्थ यह है कि रत्न ग्राहक को नहीं खोजता, बल्कि ग्राहक खुद ही रत्न को खोजता है। सारांश यह है कि पार्वती जो इतनी सुन्दरी हैं उन्हें पति (योग्य पति) खोजने की आवश्यकता नहीं है अर्थात् सुन्दर पति पाने के वास्ते उन्हें तपस्या की आवश्यकता नहीं है। उनके रूप व गुणों से प्रसन्न होकर योग्य पति उन्हें स्वयम् ही वरण करेगा।

वाच्य परिवर्तन :—यदि (त्वया) द्यौः प्रार्थ्यते तर्हि श्रमेण वृथा (भूयते) (यतः) तव पितुः प्रदेशैः देवभूमिभिः (भूयते); अथ उपयन्ता (प्रार्थ्यते तर्हि) समाधिना अलम्, रत्नेन (ग्रहीता) न अन्विष्यते, हि (ग्रहीता) तत् मृगयते ॥४५॥

अनुवाद :—यदि तुम स्वर्ग की इच्छा करती हो तो तपस्या व्यर्थ है (क्योंकि) तुम्हारे पिता की भूमि देवताओं का निवास-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

स्थान है । और यदि किसी वर को चाहती हो तो तपस्या मत करो, (क्योंकि) रत्न (या श्रेष्ठ वस्तु) खोजा नहीं करता, अपितु वह तो (ग्राहक से) खोजा जाता है ॥ ४५ ॥

संस्कृत में भावार्थ :—जनाः स्वर्गप्राप्त्यर्थमपि तपः कुर्वन्ति, परम् यदि त्वम् तत्प्राप्त्यर्थम् तपस्यामाचरसि तर्हि ते प्रयासो वृथैव, यतस्ते पितुर्हिमालयस्य भूमयो देवानाम् स्थानानि सन्ति । स्वर्गश्च तदेव यत्र देवा निवसन्ति । यदि च त्वं योग्यवरप्राप्त्यर्थम् तपः करोषि तदप्यकरणीयम् यतस्त्वम् रूपादिगुणयुक्ता रत्नभूतासि, त्वामेव जना एषिष्यन्ति, न तु त्वया तेषामन्वेषणे प्रयत्नः करणीयः तथा हि—महार्घम् रत्नादिकम् ग्राहकान् न मृगयतेऽपि तु ग्राहका एव तन्मृगयन्ते ॥ ४५ ॥

निवेदितं निःश्वसितेन सोष्मणा
मनस्तु मे संशयमेव गाहते ।
न दृश्यते प्रार्थयितव्य एव ते
भविष्यति प्रार्थितदुर्लभः कथम् ॥ ४६ ॥

टीका :—वरवाचकात्तरश्रवणानन्तरमेव देव्या उष्णोच्छ्वास-मालक्ष्य प्रश्नेषु च प्रत्युत्तरमनुपलभ्य स्वयमेवाशङ्क्याह—निवेदित-मिति । सोष्मणा निःश्वसितेन निःश्वासवायुना निवेदितम् । चिन्तानु-भावेनोष्णोच्छ्वासेन ते वरार्थित्वम् सूचितमित्यर्थः । तर्हि किं प्रश्नव्यसनेनेत्याह । मे मनः तु तथापि संशयमेव गाहते प्राप्नोति । कुतः । ते तव । 'कृत्यानाम् कर्त्तरि वा' इति षष्ठी । प्रार्थयितव्यः एव प्रार्थयितुमर्हः न दृश्यते । प्रार्थितदुर्लभः प्रार्थितो दुर्लभः स कथम् भविष्यति । नास्त्येवेत्यर्थः ॥ ४६ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्वय :—(यद्यपि) सोष्मणा निःश्वसितेन निवेदितम् (तथापि) मे मनः तु संशयम् एव गाहते, ते प्रार्थयितव्य एव न दृश्यते, प्रार्थितदुर्लभः कथम् भविष्यति ? ॥ ४६ ॥

टिप्पणी :—'पति' शब्द के सुनने पर पार्वती ने कोई उत्तर न दिया बल्कि उन्होंने लम्बी साँस ली। इससे शिव जी समझ गये कि वह योग्य पति पाने के वास्ते तपस्या कर रही हैं। परन्तु उनका यह निर्णय संदिग्ध था, अतः उन्होंने फिर पूछा। सोष्मणा—ऊष्मणा सह वर्तते सोष्म तेन सोष्मणा (उष्णेन) गरम। ऊष्मन् (आग) का रूप इस प्रकार चलेगा—ऊष्मा—ऊष्माणौ—ऊष्माणः। ऊष्माणम्—ऊष्माणौ—ऊष्मणः। ऊष्मणा—ऊष्मभ्याम्—ऊष्मभिः। निःश्वसितेन—(निस्+श्वस+क्तः) निःश्वासेन—साँस से। निःश्वसितम्—साँस बाहर निकालना। उच्छ्वसितम्—गहरी साँस (भीतर) लेना। निवेदितम्—सूचितम्—जाहिर होता है। मालूम पड़ता है। गाहते—प्राप्नोति, पड़ जाता है। संशयमेव गाहते—संशय में पड़ जाता है। प्रार्थयितव्य—(प्र+अर्थ+णिच् +तव्य प्रार्थयितुमर्हः—प्रार्थना किये जाने योग्य, खोजे जाने योग्य। ते—तव—तुम्हारा। "कृत्यानाम् कर्त्तरि वा" पा० २.३.७१ से कर्त्ता के अर्थ में षष्ठी हुई है। प्रार्थितदुर्लभः—प्रार्थितश्चासौ दुर्लभश्च प्रार्थितदुर्लभः—खोजने पर अप्राप्य। शिव के कहने का अभिप्राय यह है कि तुम्हें पति खोजने की आवश्यकता नहीं है; वह स्वयं तुम्हें खोजेगा और यदि तुम उसे खोजती हो तो वह तुम्हारे खोजने पर दुर्लभ नहीं हो सकता। अवश्य मिलेगा।

वाच्य परिवर्तन :—(यद्यपि) सोष्म निःश्वसितम् निवेदितवत्, (तथापि) मे मनसा तु संशय एव गाह्यते, ते प्रार्थयितव्यम् एव (अहं) न पश्यामि, प्रार्थितदुर्लभेन कथम् भविष्यते ॥ ४६ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अनुवाद :—यद्यपि (तुम्हारे) गर्म साँस ने (मुझे) बता दिया, परन्तु फिर भी मेरा मन सन्देह करता है। तुम से चाहा जाने योग्य कोई दीखता ही नहीं। (तो) चाहा हुआ कठिनता से मिले—ऐसा कैसे हो सकता है ? ॥ ४६ ॥

संस्कृत में भावार्थ :—वरशब्दश्रवणेन पार्वत्या किञ्चिदुत्तरमदत्त्वैव दीर्घोष्णो निःश्वासो गृहीतः। तं दृष्ट्वा शिवः कथयति—यद्यपि तव दीर्घोष्णनिःश्वासेनाहम् विज्ञापितो यत्त्वम् वरप्राप्त्यर्थमेव तप आचरसि, तथाप्यस्मिन् विषये मे चित्तम् सन्देहरहितम् नास्ति, यतो मन्मतौ तु संसारे कश्चिदपि नैतादृशः पुमान् यस्त्वया प्राध्यत (अभ्यर्थनामर्हति), पुनरेतादृशस्तु को यस्तव प्रार्थनानन्तरमपि सुलभतया न लभ्येत। सर्वोत्कृष्टगुणोपेता त्वमेव प्रार्थनीया, न तु त्वयान्ये प्रार्थनीयाः। यदि च त्वम् कमपि विशेषम् जनमिच्छसि तर्हि तेन सुलभेन भवितव्यम् ॥ ४६ ॥

अहो स्थिरः कोऽपि तवेप्सितो युवा
चिराय कर्णोत्पलशून्यतां गते।
उपेक्षते यः श्लथलम्बिनीर्जटाः
कपोलदेशे कलमाग्रपिङ्गलाः ॥ ४७ ॥

टीका :—अथ पतिप्रार्थनामेव सिद्धवत्कृत्वाह। अहो इति। अहो चित्रम्। तव ईप्सितः आप्तुमिष्टः युवा कः अपि स्थिरः कठिनः। वर्तते इति शेषः। यः युवा चिराय चिरात्प्रभृति कर्णोत्पलशून्यताम् गते प्राप्ते कपोलदेशे गण्डस्थले श्लथाः शिथिलबन्धनाः अत एव लम्बिन्यस्ताः श्लथलम्बिनीः कलमाग्रपिङ्गलाः कलमाः शालिविशेषास्तेषामग्राणि तद्वत्पिङ्गलाः जटा उपेक्षते। यस्त्वामीदृशीं दृष्ट्वा न व्यथते स नूनम् वज्रहृदय इत्यर्थः ॥ ४७ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्वय :—तव ईप्सितः कः अपि युवा स्थिरः (अस्ति) अहो, यः चिराय कर्णोत्पलशून्यताम् गते कपोलदेशे श्लथलम्बिनीः कलमाग्र-पिङ्गलाः जटाः उपेक्षते ॥ ४७ ॥

टिप्पणी :—ईप्सितः—(आप् + सन् + क्त) प्राप्तुम् काङ्क्ष्यमाणः, चाहा हुआ, सन् प्रत्यय रहने पर आप् के आ को ई हो जाता है। इसके लिये सूत्र है "आप् ज्ञप्यधामीत्" पा० ७. ४. ५६ से यहाँ पर क्त प्रत्यय वर्त्तमान अर्थ में लगाया गया है। और "क्तस्य च वर्त्तमाने" सूत्र से "तव" में षष्ठी हुई। कः अपि—अविज्ञातनामधेयः, यः कोऽपि भवेत्, जो कोई भी हो। स्थिरः—अतिकठिन हृदयः, कठोर हृदय वाला; जो जल्दी न पिघले। अहो—आश्चर्यमिदम्—हाय; आश्चर्य की बात है। चिराय—बहोः कालात्—बहुत समय से। "चिराय चिररात्राय चिरस्याद्याश्चिरार्थकाः" इत्यमरः। कर्णोत्पलशून्यताम्—कर्णयोः उत्पलाभ्याम् (कर्णावतंसीकृताभ्याम् कमलाभ्याम्) शून्यः (रहितः) कर्णोत्पलशून्यः, तस्य भावः कर्णोत्पल-शून्यता, ताम्। अथवा कर्णालङ्कारभूतम् उत्पलम् तेन शून्यः कर्णो-त्पलशून्यः, तस्य भावः कर्णोत्पलशून्यता ताम् कर्णोत्पलशून्यताम्—जिससे कर्णफूल के कमल हटा लिये गये हैं। कभी-कभी आश्रमों में रहने वाली स्त्रियाँ फूलों को कान में शोभा के लिये पहनती हैं। पार्वती भी ऐसा ही करती थीं। परन्तु जब से वह तपस्विनी हुईं तब से उन्होंने ऐसा करना छोड़ दिया था। कपोलदेशे—कपोल एव देशः कपोलदेशः तस्मिन्—गालों के ऊपर। श्लथलम्बिनीः—श्लथाश्च ताः लम्बिन्यश्च श्लथलम्बिन्यः ताः—खुली हुई, ढीली पड़ी हुई तथा लटकने वाली। लम्बिनीः—द्वितीया बहुवचन (लम्ब + णिनिः + ङीप्) कलमाग्र-पिङ्गलाः—द्वितीया बहुवचन कलमानाम् शालिविशेषाणाम् अग्रवत् पिङ्गलाः—धान के अग्रभाग के समान कपिश; यह जटा का विशेषण

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

है। कलम एक प्रकार का धान। उपेक्षते—अनादरेण सहते—उपेक्षा की दृष्टि से देख रहा है। उप+ईक्ष्=उपेक्षते। शिव के कहने का भाव यह है कि जिस व्यक्ति को पार्वती चाह रही हैं वह कोई बड़ा निर्दय व्यक्ति होगा जो पार्वती की इस प्रकार की दशा पर दया नहीं करता।

वाच्य परिवर्तन :—तव ईप्सितेन केन अपि यूना स्थिरेण (भूयते) अहो, येन चिराय कर्णोत्पलशून्यताम् कपोलदेशे श्लथ-लम्बिन्यः कलमाग्रपिङ्गलाः जटा उपेक्ष्यन्ते ॥४७॥

अनुवाद :—तुम्हारा चाहा हुआ युवक, चाहे कोई भी हो, कठोर हृदय का है, क्योंकि आश्चर्य है कि वह दीर्घ काल से कर्ण फल की तरह प्रयुक्त कमलों से रहित गालों पर खुली हुई लटकने वाली तथा धानविशेष की नोक के समान कपिल वर्ण वाली जटाओं को उदासीनता से देखता है ॥४७॥

संस्कृत में भावार्थ :—यम् लक्ष्यीकृत्य त्वम् तपः करोषि स जनो नितराम् पाषाणवत् कठोरहृदयः प्रतीयते, यतो यद्यपि त्वया दीर्घ-कालम् कमलिनीनाम् पुष्पैः कर्णयोर्मण्डनम् त्यक्तम् तत्स्थाने च कपोल-योरुपरि शालिविशेषवदीषद्रक्तवर्णाः शिथिलबन्धनाः जटाः धार्यन्ते—सर्वप्रकारेण ते तपस्विनामिव दयनीयाकृतिः—तथापि स त्वयि दयाम् न दर्शयति ॥ ४७ ॥

मुनिव्रतैस्त्वामतिमात्रकर्शितां
दिवाकराप्लुष्टविभूषणास्पदाम् ।
शशाङ्कलेखामिव पश्यतो दिवा
सचेतसः कस्य मनो न दूयते ॥ ४८ ॥

टीका :—मुनिव्रतैरिति। मुनिव्रतैः चान्द्रायणादिभिः अतिमात्र-कर्शिताम् अतिमात्रमत्यन्तम् कर्शिताम कृशीकृताम् दिवाकराप्लुष्ट-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विभूषणास्पदाम् दिवाकरेण सूर्येण आप्लुष्टानि दग्धानि वातातपसंस्पर्शान्मृदुत्वाच्च श्यामीकृतानि विभूषणास्पदानि भूषणस्थानानि यस्यास्ताम् तथोक्ताम् । अत एव दिवा अहनि शशाङ्कलेखामिव स्थिताम् त्वाम् पश्यतः सचेतसः जीवतः कस्य पुंसः मनः न दूयते न परितप्यते ? अपि तु सर्वस्यैवेत्यर्थः ।।४८।।

अन्वय :—मुनिव्रतैः अतिमात्रकर्शिताम् दिवाकराप्लुष्टविभूषणास्पदाम् दिवा शशाङ्कलेखाम् इव त्वाम् पश्यतः सचेतसः कस्य मनः न दूयते ।।४८।।

टिप्पणी :—मुनिव्रतैः मुनिजनोचितैः व्रतैः—मुनियों के योग्य व्रतों से । अतिमात्रकर्शिताम् अत्येव अतिमात्रम् अथवा अतिक्रान्ता मात्रा यस्मिन् कर्मणि तदतिमात्रम् (अव्ययीभावः), अतिमात्रम् कर्शिताम् अतिमात्रकर्शिताम्—बहुत दुबली पतली । दिवाकराप्लुष्टविभूषणास्पदाम्—करोतीति करः (कृ+टः) दिवा करोतीति दिवाकरः (सूर्यः) सूर्य । आप्लुष्ट—(आ+प्लुष+क्त) दग्धम्, जलाया हुआ । विभूषणम्—(वि+भूष+ल्युट), विभूषयत्यनेन इति विभूषणम्, आभूषण, गहना । आस्पदम्—स्थानम्, जगह । दिवाकरेण आप्लुष्टानि विभूषणानाम् आस्पदानि यस्याः सा दिवाकराप्लुष्टविभूषणास्पदा ताम्, जिसके आभूषण धारण करने वाले अङ्ग सूर्य से जला दिये गये हैं । जिन-जिन अङ्गां में वह आभूषण पहनती थीं वे तपस्या करने से, सूर्य की गरमी से, जल गये हैं । दिवा—दिवसे—दिन में । यह अव्यय है । शशाङ्कलेखाम्—शशः विद्यते अंके यस्य स शशाङ्कः (चन्द्रः) चन्द्रमा । शशाङ्कस्य लेखा शशाङ्कलेखा—चन्द्रमा की कला । उपमा बड़ी ही सुन्दर है । जिस प्रकार दिन में सूर्य की किरणों से चन्द्रमा की कला क्षीण हो जाती है उसी प्रकार पार्वती भी तपस्या और व्रत के कारण क्षीण तथा दुर्बल दिखाई

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पड़ती थीं। पश्यतः—अवलोकयतः, देखने वाले का। सचेतसः—चेतसा सह वर्तते इति सचेताः तस्य सचेतसः (सहृदयस्य), भावुकस्य; दिल रखने वाले का; सहृदय का। दूयते—(दूङ् परितापे + लट्) दुःखी होता है। यह प्रकट होता है कि शिव का मन पार्वती की इस दशा को देखकर दुःखी हुआ होगा।

वाच्य परिवर्तन :—मुनिव्रतैः अतिमात्रकर्शिताम् दिवाकराप्लुष्टविभूषणास्पदाम् दिवा शशाङ्कलेखामिव त्वाम् पश्यतः सचेतसः कस्य मनसा न दूयते ॥ ४८ ॥

अनुवाद :—मुनियों के योग्य व्रतों (के करने) से अत्यधिक कृश की हुई, सूर्य (की गर्मी) से झुलसे हुए आभूषण पहिनने के स्थान वाली, तथा दिन में चन्द्रमा की कला जैसी तुम को देखने वाले किस भावुक का मन दुःखी न होगा ? ॥ ४८ ॥

संस्कृत में भावार्थ :—त्वम् मुनिसम्बन्धिकठोरव्रतपालनेन नितराम् कृशा जाता, तव भूषणस्थानीयानि गात्राणि च सूर्यस्य तापेन दग्धानि। तव दशा तु दिवसकाले सूर्यप्रकाशेन मन्दीकृतायाः क्षीणायाश्चन्द्ररेखाया इव दयनीयास्ति, तर्हि, क एतादृशो भावुको यस्त्वामीदृशीम् दृष्ट्वापि दुःखी न भवेत् ॥ ४८ ॥

अवैमि सौभाग्यमदेन वञ्चितं
तव प्रियं यश्चतुरावलोकिनः।
करोति लक्ष्यं चिरमस्य चक्षुषो
न वक्त्रमात्मीयमरालपक्ष्मणः ॥४९॥

टिप्पणी :—अवैमीति। तव प्रियम् वल्लभम् सौभाग्यमदेन सौन्दर्यगर्वेण। कर्त्रा। वञ्चितम् विप्रलब्धम् अवैमि वेद्मि। यः प्रियश्चतुरम् मधुरमवलोकत इति चतुरावलोकिनः अरालपक्ष्मणः

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कुटिलरोम्णः । 'अरालम् वृजिनम् जिह्मम्' इत्यमरः । अस्य त्वदीयस्य चक्षुषः आत्मीयम् वक्त्रम् मुखम् चिरम् लक्ष्यं विषयम् न करोति । दृष्टिपथम् न गच्छतीत्यर्थः । तदयम् गर्वेण हतो निष्फलात्मलाभो जात इति भावः ॥ ४६ ॥

अन्वय :—तव प्रियम् सौभाग्यमदेन वञ्चितम् अवैमि, यः आत्मीयम् वक्त्रम् चतुरावलोकिनः अरालपक्ष्मणः अस्य चक्षुषः चिरम् लक्ष्यम् न करोति ॥ ४६ ॥

टिप्पणी :—तव प्रियम्—तुम्हारा; प्यारा; जिस व्यक्ति को तुमने पति बनाने को सोचा है। सौभाग्यमदेन—(सुभग्+ष्यञ्) सुभगस्य भावः सौभाग्यम् तस्य मदः सौभाग्यमदः तेन—सौन्दर्यगर्वेण; अपनी सुन्दरता के मद से । वञ्चितम्—प्रतारितम्, ठगा हुआ । वह इस वास्ते वञ्चित कहा गया है कि अपने को बहुत सुन्दर समझ कर वह पार्वती की सुन्दरता को नहीं देख रहा है और इस प्रकार पार्वती के सुन्दर मुख को देखने के आनन्द से वह वञ्चित हो रहा है। पार्वती का प्यारा होने में जो सौभाग्य है वह सौभाग्य उसे नहीं प्राप्त है। अवैमि—(अव+इ+लट्), जानता हूँ; समझता हूँ। यों तो 'इण्' धातु का अर्थ जाना होता है, परन्तु "अव" के साथ उसका अर्थ 'जानना' हो जाता है। आत्मीयम्—स्वकीयम्—अपने (आत्मन्+छः+ईय) आत्मनः इदम् आत्मीयम् । वक्त्रम्—मुखम् । चतुरावलोकिनः—(अव+लोक्+णिनिः) अवलोकि । चतुरम् सुन्दरम् अवलोकते इति चतुरावलोकि तस्य चतुरावलोकिनः; सुन्दर चितवन वाले । अरालपक्ष्मणः—अरालानि कुटिलानि पक्ष्माणि (नेत्रलोमानि) यस्य तत् अरालपक्ष्म तस्य अरालपक्ष्मणः, जिसकी बरौनियाँ (आँखों पर के बाल) टेढ़ी हैं। अराल—टेढ़ा; "अरालं कुटिलं जिह्मम्" इत्यमरः । टेढ़ी बरौनियाँ सुन्दर मानी गई हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पक्ष्म—बरौनियाँ, यह नपुं० है। पक्ष्म पक्ष्मणी पक्ष्माणि इत्यादि रूप चलेगा। चतुरावलोकिनः तथा अरालपक्ष्मणः ये दोनों चक्षुषः के विशेषण हैं। अस्य—तुम्हारी (इस) आँख के। चिरम्—बहुत समय तक। लक्ष्यम्—दर्शनविषयम्, लक्ष्य; निशाना; (अपने को) तुम्हारी आँखों का निशाना नहीं बनाता।

वाच्य परिवर्तन :—(मया) तव प्रियः सौभाग्यमदेन वञ्चितः अवेयते (अव + ईयते), येन आत्मीयम् वक्त्रम् चतुरावलोकिनः अरालपक्ष्मणः अस्य चक्षुषः चिरम् लक्ष्यम् न क्रियते ॥ ४९ ॥

अनुवाद :—(मैं) तेरे प्यारे को (उसकी) सुन्दरता के गर्व से ठगा हुआ समझता हूँ, जो कि चिरकाल तक अपने चेहरे को सुन्दर चितवन तथा टेढ़े रोमोंवाली इन (तेरी) आँखों का निशाना नहीं बनाता॥ ४९॥

संस्कृत में भावार्थ :—त्वया काङ्क्षितो जनस्तु सत्यमेव विचित्र-चरित्रवान्। स निजसौन्दर्यदर्पेण वृथैवात्यन्तम् गर्वितो दृश्यते—अनेन कारणेनैव स तव प्रार्थनाम् प्रतीक्षमाणस्तव सम्मुखम् नायाति। यदि हि स अत्रागमिष्यत् तर्हि तव मधुरावलोकनेन युक्ते सुन्दररोमसहिते च नेत्रे विलोक्य नूनमेव हृतदर्पोऽभविष्यत् यथार्थम् सौभाग्यसुखञ्चाप्स्यति। असत्येन सौभाग्यमदेन तस्येदम् वास्तविकम् सौभग्यम् प्रतिरुद्धमिति स वञ्चित एव मया मन्यते॥ ४९॥

कियच्चिरम् श्राम्यसि गौरि विद्यते
ममापि पूर्वाश्रमसंचितं तपः।
तदर्धभागेन लभस्व काङ्क्षितं
वरं तमिच्छामि च साधु वेदितुम् ॥५०॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

टीका :—कियदिति। हे गौरि। कियत् किंप्रमाणकम् चिरम् श्राम्यसि तपस्यसि। अत्यन्तसंयोगे द्वितीया। ममापि पूर्वाश्रम-संचितम् पूर्वाश्रमः प्रथमाश्रमो ब्रह्मचर्याश्रमस्तत्र संचितम् संपादितम् तपः विद्यते। तदर्धभागेन अर्धश्चासौ भागश्च तेन तस्य तपसोऽर्ध-भागेनैकदेशेन काङ्क्षितम् इष्टम् वरम् उपयान्तरम् लभस्व। तम् वरम् साधु सम्यक् वेदितुम् ज्ञातुम् इच्छामि च। यद्यसौ योग्यो भवति तदा ममापि सम्मतिरिति भावः ।। ५० ।।

अन्वय :—गौरि, कियच्चिरम् श्राम्यसि। पूर्वाश्रमसञ्चितम् मम तपः अपि विद्यते, तदर्धभागेन काङ्क्षितम् वरम् लभस्व। तम् च साधु वेदितुम् इच्छामि ॥ ५० ॥

टिप्पणी :—कियत्—(किम्+वतु) किं परिमाणमस्येति कियत्, कितना, वतुप् के व को घ हो गया। इसका सूत्र है "किमिदंभ्याम् वो घः" पा० ५. २. ४०. और घ को फिर इय् हो गया। "इदंकिमो-रीश्की" पा० ६. ३. ९० से किम् को 'कि' हो गया अर्थात् दृग्, दृश्, वतु यदि पहले हों तो किम् को 'कि' हो जाता है। चिरम्—बहुत समय तक। "कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे द्वितीया" से चिरम् में द्वितीया हुई। समय तथा रास्ता बताने वाली संज्ञाओं में द्वितीया होती है जब अत्यन्त संयोग बताया जाय। श्राम्यसि—तपस्यसि, तपस्या करोगी; कष्ट उठाओगी। वि उपसर्ग के साथ श्रम् धातु का अर्थ 'विश्राम करना' होता है। पूर्वाश्रमसंचितम्—पूर्वस्मिन् आश्रमे (ब्रह्मचर्या-श्रमे) संचितम् पूर्वाश्रमसंचितम्, ब्रह्मचर्याश्रम में इकट्ठा किया हुआ। तदर्धभागेन, तस्य अर्धभागः तदर्धभागः तेन तदर्ध-भागेन, उसके आधे भाग से। उस तपस्या के आधे से। काङ्क्षितम् (काङ्क्ष्+क्त), स्वाभिलषितम्, चाहा हुआ, अपने मन की वस्तु। वरम्—दुलहा; पति। साधु—सम्यक्, पूर्णतया, पूरी तौर से।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वेदितुम्—ज्ञातुम्, जानने के लिये। कुछ टीकाकारों ने तपः का अर्थ शरीर लगाया है। शरीर तपस्या का साधन है। उनके कहने का अभिप्राय यह है कि शिव ने पार्वती को अपनी अर्धाङ्गिनी बनाना चाहा था। तपःशब्दो लक्षणया तपःसाधनभूतस्य शरीरस्य बोधकः। शरीरमाद्यम् खलु धर्मसाधनम् इत्युक्तत्वात्। परन्तु यह अर्थ बहुत खींचातानी करने पर लगता है।

वाच्य परिवर्तन :—गौरि, (त्वया) कियच्चिरम् श्रम्यते। पूर्वाश्रमसञ्चितेन मम तपसा अपि विद्यते; तदर्धभागेन काङ्क्षितः वरः (त्वया) लभ्यताम्। स च (मया) साधु वेदितुम् इष्यते ॥५०॥

अनुवाद :—हे पार्वती, कब तक तपस्या करोगी? प्रथम आश्रम में एकत्रित किया हुआ मेरा तप भी है; उसके आधे अंश से (तुम अपने) चाहे वर को प्राप्त कर लो, परन्तु उस (वर) को मैं पूरी तरह जानना चाहता हूँ ॥५०॥

संस्कृत में भावार्थ :—हे पार्वति! त्वया दीर्घकालम् तपस्या कृता, इदानीमितोऽधिकतपस्यायाः काप्यावश्यकता न दृश्यते। यदि चाधिकतपसैव तेऽभीष्टम् साध्यम् तर्हि ममापि ब्रह्मचर्याश्रमे कृतम् तपोऽस्ति। तस्यार्धमहम् तुभ्यम् दातुमुद्यतः, त्वम् तत्सहायतया स्वेच्छितम् लब्धुम् शक्नोषि। परम् पूर्वमहम् तस्य वरस्य विषये सर्वमपि ज्ञातुमिच्छामि ॥५०॥

इति प्रविश्याभिहिता द्विजन्मना
मनोगतं सा न शशाक शंसितुम्।
अथो वयस्यां परिपार्श्ववर्त्तिनीं
विवर्त्तितानञ्जननेत्रमैक्षत ॥५१॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

टीका :—इतीति । इति इत्थम् द्विजन्मना द्विजेन प्रविश्य अन्तर्गत्वा । आप्तवद्रहस्यमुद्भाव्येत्यर्थः । अभिहिता उक्ता सा पार्वती मनोगतम् हृदिस्थम् वरम् शंसितुं वक्तुम् न शशाक समर्था नाभूत् । लज्जयेति शेषः । अथो अनन्तरम् परिपार्श्ववर्त्तिनीम् वयस्याम् सखीम् विवर्तितानञ्जननेत्रम् विवर्त्तितम् विचलितमनञ्जनम् व्रतवशाद्वर्जित-कज्जलम् नेत्रम् यस्मिन् कर्मणि तत्तथा ऐक्षत । नेत्रसंज्ञयेव प्रत्युत्तरम् वाचयाञ्चकारेत्यर्थः ॥५१॥

अन्वय :—द्विजन्मना प्रविश्य इति अभिहिता सा मनोगतम् शंसितुम् न शशाक, अथो परिपार्श्ववर्त्तिनीम् वयस्याम् विवर्तिता-नञ्जननेत्रम् ऐक्षत ॥५१॥

टिप्पणी :—द्विजन्मना—द्वे जन्मनी यस्य सः द्विजन्मा तेन, विप्रेण, ब्राह्मण से । प्रविश्य—अन्तर्गत्वा—उसके दिल में बैठकर; उसके दिल की बात जानकर । अभिहिता—कथिता—कही गई (अभि+धा+क्त+आ) । 'दधातेर्हिः' सूत्र से धा को हि हो गया । अभि+धा—कहना । अकेले धा माने धारण करने के होते हैं । मनो-गतम्—मनसि गतम् (हृदयस्थम् भावम् वरम् वा), मन की बात या मन का भेद । शंसितुम् (शंस्+तुमुन्) कहने को । शशाक—समर्था अभूत्, समर्थ हुई । उच्च कुल में जन्म लेने वाली स्त्रियों के योग्य लज्जा के कारण पार्वती साफ-साफ उस ब्राह्मण से बात न कर सकीं । अथो—अनन्तरम्, बाद में, यह अव्यय है । परिपार्श्ववर्ति-नीम्—(परिपार्श्व+वृत्+णिनिः+ङीप्), पार्श्वे समीपे वर्त्तते इति परिपार्श्ववर्त्तिनी ताम्—जो उसके पास में थी । वयस्याम्—(वयस+यत्+आ), वयसा आयुषा तुल्या तां सखीम् (वयस्याम्), जो उम्र में बराबर हो यानी सहेली । "नौवयोधर्मविषमूलमूलसीता तुलाभ्यास्तार्यतुल्यप्राप्यवध्यानाम्यसमसमितसम्मितेषु" पा० ४. ४. ६१-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सूत्र से यत् प्रत्यय लगा। नौ, वयम् इत्यादि शब्दों में तार्य, व तुल्य अर्थ में यत् प्रत्यय होता है। विवर्तितानञ्जननेत्रम्—विवर्तितम्+अनञ्जन+नेत्रम्। अविद्यमानम् अञ्जनम् ययोः (नेत्रयोः) ते अनञ्जने। विवर्तिते अनञ्जने नेत्रे यस्मिन् कर्मणि यथा भवति तथा विवर्तितानञ्जननेत्रम्—काजल-रहित नेत्रों को उसकी ओर घुमाती हुई। पार्वती ने सखी की ओर आँख करके यह संकेत किया कि सखी ब्राह्मण का उत्तर दे। पार्वती ने अपनी आँखों में अञ्जन (काजल) नहीं लगाया था, क्योंकि तपस्विनी के वास्ते यह निषिद्ध है। यह 'ऐक्षत' का क्रिया-विशेषण है।

वाच्य परिवर्तन :—द्विजन्मना प्रविश्य इति अभिहितया तया मनोगतम् शंसितुम् न शेके। अथ परिपार्श्ववर्तिनी वयस्या विवर्तितानञ्जननेत्रम् ऐक्ष्यत ॥५१॥

अनुवाद :—(उसके हृदय) में घुस कर उस ब्राह्मण से पूछी हुई वह अपने मन की बात को न कह सकी। तब उसने अपने पास में स्थित सखी की ओर अञ्जन-रहित नेत्रों को मोड़ कर देखा ॥५१॥

संस्कृत में भावार्थ :—एवं स ब्राह्मणः पार्वतीम् तस्याः हार्दिकभावमपृच्छत्, परम् सा लज्जावशात् स्वहृदयस्थम् भावम् कथयितुम् समर्था नाभूत्। स्वयमुत्तरमदत्वैव स्वसमीपवर्त्तिनीम् निजसखीम् प्रति स्वीयाञ्जनरहिताभ्याम् नेत्राभ्याम् दृष्ट्वा च ताम् शिवाय निवेदयितुम् प्रेरयामास ॥५१॥

सखी तदीया तमुवाच वर्णिनं
निबोध साधो तव चेत्कुतूहलम्।
यदर्थमम्भोजमिवोष्णवारणं
कृतं तपःसाधनमेतया वपुः ॥५२॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

टीका :—सखीति। तस्याः पार्वत्या इयम् तदीया। सखी वयस्या ताम्। 'वर्णः प्रशस्तिः' इति क्षीरस्वामी। सोऽस्यास्तीति वर्णिनम् ब्रह्मचारिणम्। 'वर्णाद्ब्रह्मचारिणि' इतीनिप्रत्ययः। उवाच ब्रूते स्म। किमिति। साधो विद्वन् तव कुतूहलम् चेत् श्रोतुमस्तीति शेषः। तर्हि निबोध अवगच्छ। आकर्णयेत्यर्थः। बुध 'अवगमने' इति धातोर्भौवादिकाल्लोट्। श्रोतव्यम्। किं तदाह—यस्मै लाभायेदम् यदर्थम्। 'अर्थेन सह नित्यसमासः सर्वलिङ्गता चेति वक्तव्यम्' इति वार्तिकनियमात्क्रियाविशेषणम्। एतया पार्वत्या अम्भोजम् पद्मम् उष्णवारणम् आतपत्रम् इव वपुः शरीरम् तपःसाधनम् कृतम्। तपःप्रवृत्तिकारणमुच्यते श्रूयतामित्यर्थः ॥५२॥

अन्वय :—तदीया सखी तम् वर्णिनम् उवाच, (हे) साधो, तव चेत् कुतूहलम् (तर्हि) निबोध, एतया यदर्थम् अम्भोजम् उष्णवारणमिव वपुः तपःसाधनम् कृतम् ॥५२॥

टिप्पणी :—तदीया—(तद्—छः+ईय्+आ) तस्या इयम् तदीया, उसकी; पार्वती की। तदीयम् पर टिप्पणी २१ श्लोक में देखिये। वर्णिनम्—(वर्ण+इनिः), वर्णः प्रशस्तिः अस्यास्तीति वर्णी। तम् वर्णिनम्—ब्रह्मचारी से। वर्णः—प्रशस्तिः; शारीरिक आनन्दों से विरक्ति। या वेदाध्ययनार्थम् ब्रह्मचर्यम् या रंग। 'वर्णो द्विजादिशुक्लादियज्ञे गुणकथासु च स्ततौ ना' इति मेदिनी। 'वर्णाद् ब्रह्मचारिणि' पा० ५. २. १३४ से ब्रह्मचारी अर्थ में 'इनि' प्रत्यय लगा। जब ब्रह्मचारी का अर्थ न होगा तब यह प्रत्यय न लगेगा और उस समय 'वर्णवान्' ऐसा रूप होगा। प्रशस्ति का अर्थ देखिये— "स्मरणम् कीर्त्तनम् केलिः प्रेक्षणम् गुह्यभाषणम्। संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृतिरेव च। एतन्मैथुनमष्टाङ्गम् प्रवदन्ति मनीषिणः।" एतदष्टविधमैथुनाभावः प्रशस्तिः। साधो—साध्नोति परेषाम्

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कार्याणि इति साधुः तस्य सम्बोधने (सज्जन), महात्मन् । कुतूहलम् —उत्सुकता, उत्कट इच्छा । पार्वती के ईप्सित पति के जानने की इच्छा । निबोध—जानीहि—जानो । यदर्थम्—यस्मै इति यदर्थम्—जिसके लिये । 'अर्थ' के साथ जो समास होता है वह "नित्य समास" है । जिस संज्ञा का यह "विशेषण" होता है उसी का वचन व लिङ्ग इसका भी होता है । अर्थेन सह नित्यसमासः सर्वलिङ्गता चेति वक्तव्यम् । नित्यसमास (अविग्रहो नित्यसमासः अस्वपदविग्रहो वा) के अर्थ के लिये श्लोक ३३ में क्रियार्थम् पर जो टिप्पणी दी है उसे देखो । अम्भोजम्—अम्भसि जातम् अम्भोजम्, जल में पैदा होने वाला (कमल) । उष्णवारणम्—उष्णस्य वारणम् उष्णवारणम् (अर्थात् छत्रम्), धूप को निवारण करने वाला (छाता) । तपःसाधनम्—तपसः साधनम् तपःसाधनम्—तपस्या का साधन । जिस प्रकार धूप को रोकने को कमल के पत्तों का प्रयोग है उसी प्रकार पार्वती का तपस्या में अपने शरीर का लगाना है ।

वाच्य परिवर्तन :—तदीयया सख्या स वर्णी ऊचे—(हे) साधो, चेत् तव कुतूहलम्, (तर्हि त्वया) निबुध्यताम् एषा यदर्थम् अम्भोजम् उष्णवारणमिव वपुः तपः साधनं कृतवती ॥ ५२ ॥

अनुवाद :—उसकी सहेली उस ब्रह्मचारी से बोली—(हे) साधु, यदि तुम्हें उत्सुकता हो तो सुनो (या जानो) जिस लिये इसने (अपने) शरीर को (उसी प्रकार) तप करने का साधन बनाया है जिस प्रकार कमल धूप दूर करने के लिये बनाया जाता है ॥ ५२ ॥

संस्कृत में भावार्थ :—ब्राह्मणजिज्ञासां दृष्ट्वा तस्याः वयस्या ब्राह्मणम् प्रत्युवाच 'हे महाशय, यदि ते महती जिज्ञासा तर्हि मया कथ्यमानम् तत्प्रयोजनम् शृणु यदर्थम् अनया स्वशरीरम् तथैव शीता-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तपादिसहने नियुक्तम् यथा कश्चित्पुरुषस्तापदूरीकरणाय कमलदलमेकम् प्रयुङ्क्ते ॥ ५२ ॥

इयं महेन्द्रप्रभृतीनधिश्रिय-
श्चतुर्दिगीशानवमत्य मानिनी ।
अरूपहार्यं मदनस्य निग्रहात्
पिनाकपाणिं पतिमाप्तुमिच्छति ॥ ५३ ॥

टीका :—'दृङ् मनःसङ्गसंकल्पा जागरः कृशताऽरतिः । ह्रीत्यागोन्मादमूर्छान्ता इत्यनङ्गदशा दश ।' इति । तत्रास्याः काश्चिद्दशाः क्रममनादृत्यैव योजयति—इयमित्यादिभिः षड्भिः श्लोकैः ।

इयमिति । मानिनी इन्द्राणीप्रभृतीरतिशय्य वर्तितव्यमित्यभिमानवती इयम् पार्वती अधिश्रिय अधिकैश्वर्यान् महेन्द्रप्रभृतीन् इन्द्रादींश्चतसृणाम् दिशामीशान् चतुर्दिगीशान् इन्द्रवरुणयमकुबेरान् । 'तद्धितार्थ'—इत्यादिनोत्तरपदसमासः । अवमत्य अवधूय मदनस्य निग्रहात् निबर्हणाद्धेतोः । अकामुकत्वादित्यर्थः । रूपेण सौन्दर्येण हार्योवशीकरणीयो न भवतीति अरूपहार्यः । पिनाकः पाणौ यस्य तम् पिनाकपाणिं हरम् । "प्रहरणार्थेभ्यः परे निष्ठासप्तम्यौ भवतः" इति साधु पतिम् भर्त्तारम् आप्तुम् इच्छति एतेन संकल्पावस्था सूचिता ॥ ५३ ॥

अन्वय :—मानिनी इयम् अधिश्रियः महेन्द्रप्रभृतीन् चतुर्दिगीशान् अवमत्य मदनस्य निग्रहाद् अरूपहार्यं पिनाकपाणिं पतिम् आप्तुम् इच्छति ॥ ५३ ॥

टिप्पणी :—मानिनी (मन्+इनि+ङीप्) मानोऽस्या अस्तीति मानिनी (अभिमानवती); अभिमानिनी, मान वाली; । अधिश्रियः—अधिका श्रीः ऐश्वर्यम् येषां ते; अधिगता वा श्रीः यैस्ते तान् अधिश्रियः; अत्यधिक ऐश्वर्य वाले । यह चतुर्दिगीशान् का विशेषण है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

महेन्द्रप्रभृतीन्—महांश्चासौ इन्द्रश्च महेन्द्रः, महेन्द्रः प्रभृतिः आदिः येषां ते महेन्द्रप्रभृतयः तान् महेन्द्रप्रभृतीन्, इन्द्र तथा अन्य देवताओं को। चतुर्दिगीशान्—चतुर्दिक्+ईशान्, चतसृणाम् दिशाम् समाहारः चतुर्दिक् तस्य ईशान् चतुर्दिगीशान् या चतसृणाम् दिशाम् ईशाः (स्वामिनः) चतुर्दिगीशाः तान् चतुर्दिगीशान्, चारों दिशाओं के स्वामी इन्द्र, वरुण, यम और कुबेर। ये क्रमशः पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर के स्वामी हैं। यहाँ पर उत्तरपदसमास है। उसका सूत्र है "तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च" पा० २. ५. ५१ अवमत्य–(अव+मन्+ल्यप्), अनादृत्य, अनादर कर। मदनस्य निग्रहात्—कामदेव के दण्डित होने से। अरूपहार्यम्—(हृ+ण्यत्), हर्तुम् शक्यः हार्यः, रूपेण हार्यः रूपहार्यः, न रूपहार्यः अरूपहार्यः, तम्, जो रूप से प्रसन्न नहीं किया जा सकता। चूँकि कामदेव शंकर जी को मोहित नहीं कर सका था इसलिये यह कहना ठीक है कि श्री शंकर जी सुन्दरता से वश में नहीं किए जा सकते। यही कारण है कि पार्वती उनको तपस्या द्वारा मोहित करना चाहती थी। पिनाकपाणिम्—पिनाकः (धनुर्विशेषः) पाणौ यस्य सः पिनाकपाणिः (शिवः) तम् शिवम्। शंकर के धनुष का नाम पिनाक है। "पिनाकोऽस्त्री रुद्रचापे पांसुवर्षत्रिशूलयोः' इति मेदिनी। इस समास में 'पाणौ' बाद में प्रयुक्त हुआ है। इसके वास्ते सूत्र है "प्रहरणार्थेभ्यः परे निष्ठासप्तम्यौ।" आप्तुम्—अधिगन्तुम्, पाने के वास्ते। इस श्लोक में तथा आगे के पाँच श्लोकों में कवि ने पार्वती की उन दस अवस्थाओं का वर्णन किया है जो कि शङ्कर जी के प्रेम के कारण हो गई थीं। इन्हें अनङ्गदशा कहते हैं। मनुष्य की उन अवस्थाओं को अनङ्ग-दशा कहते हैं जो कि किसी से प्रेम करने पर होती हैं। वे ये हैं "दृङ्-मनः-सङ्ग-संकल्पा जागरः कृशता रतिः'। ह्रीत्यागोन्मादमूर्च्छान्ता इत्यनङ्ग-दशाः दश" इस श्लोक में पार्वती का शंकर को प्राप्त करने का संकल्प लक्षित होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वाच्य परिवर्तन :—मानिन्या अनया अधिश्रियः महेन्द्रप्रभृतीन् चतुर्दिगीशान् अवमत्य मदनस्य निग्रहात् अरूपहार्यः पिनाकपाणिः पतिः आप्तुम् इष्यते ॥ ५३ ॥

अनुवाद :—अभिमान वाली यह (पार्वती) अत्यधिक ऐश्वर्यशाली इन्द्रादि चारों दिशाओं के स्वामियों का अपमान करके कामदेव को जलाने के कारण सुन्दरता के वश में न होने वाले (जाने गये) महादेव को पति (रूप में) प्राप्त करना चाहती है ॥ ५३ ॥

संस्कृत में भावार्थ :—पर्वतराजस्य पुत्री गौरी इन्द्रादिषु देवेषु कमपि वरीतुम् न इच्छति स्म, परमभिमानवती सा शिवम् तेभ्योऽधिकम् मन्यमाना ऐश्वर्यशालिन इन्द्रादीन् दिशामीशान् तिरस्कृत्य सर्वेषामधिपतिम शिवमेव स्वस्वामिनम् कर्त्तुम् कामयते, यो हि शिवः केनापि सौन्दर्येण वशीकर्त्तुमशक्यो यतः सोऽनुपमसौन्दर्यशालिनम् काममपि भस्मसात् कृतवान् ॥ ५३ ॥

असह्यहुंकारनिवर्तितः पुरा
पुरारिमप्राप्तमुखः शिलीमुखः ।
इमां हृदि व्यायतपातमक्षिणो-
द्विशीर्णमूर्तेरपि पुष्पधन्वनः ॥५४॥

टीका :—असह्येति । पूर्वम् पुरा असह्यः हुंकारनिवर्तितः असह्येन सोढुमशक्येन हुङ्कारेण रौद्रेण निवर्तितः । अतएव पुरारिम् हरम् अप्राप्तमुखः अप्राप्तफलः विशीर्णमूर्तेः नष्टशरीरस्य अपि पुष्पधन्वनः कामस्य शिलीमुखः बाणः इमाम् पार्वतीम् हृदि व्यायतपातम् व्यायतः सुदूरावगाढ इति यावत् । तादृक्पातः प्रहारो यस्मिन् कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा अक्षिणोत् अकर्षत् । दग्धदेहस्यापि मार्गणे लग्नः । 'मृदुः सर्वत्र बाध्यते' इति भावः । अनेन 'विवृणवती शैलसुतापि भावम्'

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(३ । ६८) इत्यत्रोक्तं चक्षुः-प्रीतिमनः-सङ्गाख्यमवस्थाद्वयमनन्तरावस्थोपयोगितयानूद्य कार्श्यावस्था सूचिता ॥५४॥

अन्वयः—पुरा विशीर्णमूर्तेः अपि पुष्पधन्वनः शिलीमुखः असह्यहुङ्कारनिवर्तितः पुरारिम् अप्राप्तमुखः इमाम् हृदि व्यायतपातम् अक्षिणोत् ॥ ५४ ॥

टिप्पणी :—पुरा—पूर्वम्—पहले। यह उस समय के विषय में है जब कामदेव ने शिव को मोहित करने का प्रयत्न किया था पर असफल रहा था और शिव के द्वारा भस्म कर दिया गया था। विशीर्णमूर्तेः—(वि+शॄ+क्त) विशीर्णा नष्टा मूर्तिः यस्य सः तस्य विशीर्णमूर्तेः, जिसका अङ्ग नष्ट कर दिया गया था। अपि—तब भी। यद्यपि कामदेव भस्म कर दिया गया था तथापि उसके बाण अब भी लोगों को व्याकुल कर रहे थे। पुष्पधन्वनः—(पुष्प+धनुष्+अनङ्), पुष्पाण्येव धनुर्यस्य स पुष्पधन्वा तस्य पुष्पधन्वनः, जिसका धनुष फूलों का है। यह कामदेव का नाम है। बहुव्रीहि समास के अन्त में अनङ् के जोड़ने से धनुष् का धन्वन् हो जाता है। इसका सूत्र है "धनुषश्च" पा० ५. ४. १३२। जब समास बनने से कोई संज्ञा होती है तो यह परिवर्तन करना या न करना ऐच्छिक है। इससे दूसरा रूप पुष्पधनुः होगा। शिलीमुखः—शिली (शल्यम्) मुखे यस्य सः शिलीमुखः (बाणः) बाण। इसका अर्थ भौंरा भी होता है। "अलिबाणौ शिलीमुखौ' इत्यमरः। असह्यहुंकारनिवर्तितः—असह्यम्—सोढुम् योग्यम् सह्यम् (सह्+यत्), न सह्यम् असह्यम्, जो सहा न जा सके। हुङ्कार—हुं कहना। असह्येन हुङ्कारेण निवर्तितः असह्यहुङ्कारनिवर्तितः, असह्य हुङ्कार से जो रोक दिया गया था अथवा लौटा दिया गया था। पुरारिम्—पुराणाम् (दैत्यगणानाम्) अरिं पुरारिम्, शिव को। नगरों के शत्रु को। शंकर को पुरारि और त्रिपुरारि कहते

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हैं क्योंकि उन्होंने तीन नगरों को नष्ट किया था। एक सोने का, दूसरा चाँदी का, तीसरा लोहे का, जिनमें तीन राक्षस-मय विद्युन्माली और तारकासुर रहते थे। अप्राप्तमुखः—अप्राप्तम् मुखम् (बाणाग्र-फलकं) यस्य सः, जिसका अग्रभाग शिव तक न पहुँचा क्योंकि वह बीच ही से लौटा दिया गया। इमाम्—पार्वतीम्—पार्वती को; जब तक शिव अजेय थे तब तक पार्वती कामदेव के बाणों का शिकार हो रही थी। व्यायतपातम्—(वि+आ+यम्+क्तः—व्यायतः) (अतितीव्रः दीर्घः) पातः प्रहारः यस्मिन् कर्मणि यथा भवति तथा व्यायतपातम्—गहरा घाव करके। अक्षिणोत् का विशेषण है। अक्षिणोत्—विव्याध, घाव किया, चोट किया। इस श्लोक में कवि ने दृक्संग, मनःसंग और कृशता का भाव दिखाया है। दृक्संग (आँखों से प्रेम), मनःसंग (मन से प्रेम), कृशता (दुर्बलता)।

वाच्य परिवर्तन :—पुरा विशीर्णमूर्तेः अपि पुष्पधन्वनः शिलीमुखेन असह्यहुङ्कारनिवर्तितेन पुरारिम् अप्राप्तमुखेन इयं हृदि व्यायतपातम् अक्षीयत ॥ ५४ ॥

अनुवाद :—पहिले समय में नष्ट शरीर वाले भी पुष्प के धनुष वाले (कामदेव) के बाण ने, जो (शिव की) न सहने योग्य हुङ्कार से लौटा दिया गया था और महादेव तक जिसकी नोक नहीं पहुँच पाई, इसके हृदय में गहरा घाव कर दिया ॥ ५४ ॥

संस्कृत में भावार्थ :—पूर्वस्मिन् काले कन्दर्पः शिवम् विजेतुम् तस्योपरि स्वबाणममुञ्चत्। परम् स बाणस्तेन गम्भीरेण हुंशब्देन परावर्तितः; कामश्च दग्धः; ततो नष्टस्यापि कामस्य बाणः कोमलहृदयामिमाम् पार्वतीम् हृदयेऽतितीव्रतया विव्याध। शिवेऽप्राप्तसाफल्यः कामः पार्वतीहृदये शिवप्रीतिमजीजनत् इति तात्पर्यम् ॥ ५४ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तदा प्रभृत्युन्मदना पितुर्गृहे
ललाटिकाचन्दनधूसरालका ।
न जातु बाला लभते स्म निर्वृतिं
तुषारसंघातशिलातलेष्वपि ॥ ५५ ॥

टीका :—तदेति । तदेति च्छेदः तदाप्रभृति । तत आरभ्येत्यर्थः सप्तम्यर्थस्यापि दाप्रत्ययस्य पञ्चम्यर्थे लक्षणप्रभृतियोगे पञ्चमीनियमात् । पितुः गृहे उन्मदना उत्कटमन्मथा । ललाटिकाचन्दनधूसरालका ललाटस्थालंकारो ललाटिका तिलकः । 'कर्णललाटात्कनलङ्कारे' इति कन्प्रत्ययः । तस्याश्चन्दनेन धूसरा धूसरवर्णा अलकाश्चूर्णकुन्तला यस्याः सा तथोक्ता । बाला पार्वती जातु कदाचिदपि तुषारसंघातशिलातलेषु तुषारसंघातास्तुषारघनास्त एव शिलास्तासाम् तलेषूपरिभागेषु अपि निर्वृतिम् सुखम् न लभते स्म । एतेनारत्यपरसंज्ञा विषयविद्वेषावस्था द्वादशावस्थापक्षे संज्वरश्च व्यज्यते ।। ५५ ।।

अन्वय :—तदाप्रभृति पितुः गृहे उन्मदना ललाटिकाचन्दनधूसरालका बाला तुषारसंघातशिलातलेषु अपि जातु निर्वृतिम् न लभते स्म ।। ५५ ।।

टिप्पणी :—तदाप्रभृति—तत आरभ्य, उस दिन से लेकर, जब तत् शब्द समय के अर्थ में प्रयुक्त होता है और सप्तमी में रहता है तब उसमें दा जोड़ देते हैं और 'तदा' बन जाता है । तस्मिन् काले तदा । इसका सूत्र है "सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दाः', पा० ५.३.५१—यहाँ पर तत् शब्द का प्रयोग सप्तमी में है अर्थात् (तस्मिन् काले) इस अर्थ में प्रयोग होने से तदा का प्रयोग प्रभृति के साथ न होना चाहिये था । उन्मदना—तत् (उत्कटः) मदनः कामः यस्याः सा उन्मदना—उत्कट कामदेव वाली । ललाटिकाचन्दनधूसरालका—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ललाटिका—(ललाट + कन्) ललाटस्य अलङ्कारो ललाटिका तिलकः, मस्तक पर एक शृंगार-विशेष। यह चन्दन से किया हुआ एक विशेष चिह्न था। गर्मी की शान्ति के लिये यह माथे पर लगाया जाता था। "कर्णललाटात्कन् अलङ्कारे" पा० ४. ३. ६५. से कन् प्रत्यय लगा। धूसरा—मलिनवर्ण अथवा धूसरित (सफेद व पीला लिये हुए)। अलकाः—चूर्णकुन्तलाः—घुँघराले बाल। ललाटिकायाश्चन्दनेन (अथवा ललाटिकारूपेण चन्दनेन) धूसरा अलका यस्याः सा, माथे के तिलक के चन्दन से सफेद हो गये हैं बाल जिसके। तुषारसंघातशिलातलेषु—तुषाराणाम् (हिमानां) संघाताः (समूहाः) एव शिलाः तुषारसंघातशिलाः तासाम् तलेषु तुषारसंघात-शिलातलेषु—बर्फ की चट्टानों पर (लेटने पर भी)। कामजन्य गर्मी को शान्त करने के लिये पार्वती बर्फ की चट्टानों पर लेटा करती थी। न जातु—कदाचित् अपि न—कभी भी नहीं, बिलकुल नहीं। निर्वृतिम्—सुखम्—आनन्द। "निर्वृतिः सुखदुःखयोः" इत्यमरः। स्म को वर्तमान काल के साथ जोड़ने से भूत काल का अर्थ होता है। इस श्लोक में पार्वती की अरति (सांसारिक आनन्दों से विरक्ति) दिखलाई गई है।

वाच्य परिवर्तन :—तदाप्रभृति पितुः गृहे उन्मदनया ललाटिकाचन्दनधूसरालकया बालया तुषारसंघातशिलातलेष्वपि जातु निर्वृतिः न लभ्यते स्म ॥ ५५ ॥

अनुवाद :—तभी से लेकर पिता के घर में उत्कट काम वाली, माथे के तिलक के चन्दन से सफेद बालों वाली वह युवती बर्फ की चट्टानों पर भी सुख न पाती थी ॥ ५५ ॥

संस्कृत में भावार्थ :—तस्मादेव कालात् शिवप्राप्त्यै समुत्सुका कामेनातितराम पीडिता पार्वती स्वजनकस्य हिमालयस्यापि शीत-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रधाने भवने शान्तिं नालभत; हिमशिलासु शयनमपि तं दाहम् शमयितुम् नाशक्नोत्। तापशान्तये तस्याः मस्तके लिप्तम् चन्दनञ्च क्षणादेव शुष्कम् सत् तत्केशान् धूसरवर्णान् अकरोत्। गौरी नितराम् कामपीडितासीत्। तस्यास्तापशान्त्यै कृताश्चन्दनलेपादिरूपा उपचारा व्यर्था एवाभवन् इति भावः ॥५५॥

उपात्तवर्णे चरिते पिनाकिनः
सवाष्पकण्ठस्खलितैः पदैरियम् ।
अनेकशः किन्नरराजकन्यका
वनान्तसङ्गीतसखीररोदयत् ॥५६॥

टीका :—उपात्तेति। इयम् पिनाकिनः शंभोः चरिते त्रिपुरविजयादिचेष्टिते उपात्तवर्णे प्रारब्धगीतक्रमे। 'गीतक्रमे स्तुतौ वेदे वर्णशब्दः प्रयुज्यते' इति हलायुधः। सबाष्पकण्ठस्खलितैः सबाष्पे गद्गदे कण्ठे स्खलितैः विशीर्णैः पदैः। सुप्तिङन्तरूपैः। करणैः वनान्तसंगीतसखीः वनान्तेसंगीतेन निमित्तेन सखीर्वयस्याः किन्नरराजकन्यकाः अनेकशः बहुशः अरोदयत्। अश्रुमोक्षमकारयत्। हरचरितगानजनितमदनवेदनामेनाम् वीक्ष्य किन्नर्योऽपि रुरुदुरिति भावः। अत्र वर्णस्खलनलक्षणकार्योक्त्या पुनः पुनस्तत्कारणीभूतमूर्च्छावस्थाप्रादुर्भावो व्यज्यतेऽन्यथा सखीरोदनानुपपत्तेरिति द्वादशावस्थापक्षे तु प्रलापावस्था व्यज्यते। 'प्रलापो गुणकीर्त्तनम्' इत्यालंकारिकाः ॥५६॥

अन्वय :—इयम् पिनाकिनः चरिते उपात्तवर्णे (सति) सबाष्पकण्ठस्खलितैः पदैः वनान्तसंगीतसखीः किन्नरराजकन्यकाः अनेकशः अरोदयत् ॥५६॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

टिप्पणी :—पिनाकिनः—(पिनाक + इनिः) पिनाकः अस्यास्तीति पिनाकी, तस्य पिनाकिनः शंकर के। पिनाकिनः चरिते—शङ्कर जी का चरित। उपात्तवर्णे—उपात्तः (उप + आ + दा + क्त = उपात्तः) गृहीतः आरब्धः। उपात्तः वर्णः यस्मिन् स तस्मिन् उपात्तवर्णे-प्रारम्भ होने पर। उपात्तवर्णे चरिते पिनाकिनः—शङ्कर जी के चरित्र के गाये जाने पर। वर्णः गीतिक्रमः "शुक्लादौ ब्राह्मणादौ च शोभायामक्षरे तथा। गीतिक्रमे स्तुतौ वेषे वर्णशब्दः प्रयुज्यते" इति हलायुधः। सबाष्पस्खलितैः—बाष्पेण सह वर्तमानः सबाष्पः (गद्गदः)। सबाष्पे कण्ठे स्खलितैः (अस्पष्टोच्चारितैः) सबाष्पकण्ठस्खलितैः, बाष्पपूर्ण कण्ठ से अस्पष्ट निकलने वाले। शङ्कर जी के चरितों को गाते समय पार्वती का गला भर आता था। पदैः—शब्दों से। वनान्तसंगीतसखीः—वनान्ते (वनप्रदेशे) संगीते संगीतेन या सख्यः वनान्तसंगीतसख्यः ताः वनान्तसंगीतसखीः, वन में गाए हुए गीतों में साथ देने वाली सखियाँ। संगीत—(गै + क्त), गै का गी हो जाता है। इसके लिये सूत्र है "घुमास्थागापाजहातिसां हलि" पा० ६.४.६६। किन्नरराजकन्यकाः—किन्नराणां राजा किन्नरराजः किन्नरराजस्य कन्यकाः किन्नरराजकन्यकाः ताः, किन्नरराज की कन्याओं को। किन्नर एक प्रकार की गंधर्वों की जाति है। इनका काम गाना-बजाना है। कन्याः एव कन्यकाः (कन्या + कन्) "स्वार्थे" कन् प्रत्यय हुआ। अनेकशः—एकम् एकम् इति एकशः, न एकशः, इति अनेकशः (बहुशः), बहुत बार; "संख्यैकवचनाच्च वीप्सायाम्" पा० ५. ४. ४३ से वीप्सा अर्थ में शस् प्रत्यय हुआ। अरोदयत्—(रुद् + णिच् + लङ्), रुलाया। प्रेरणार्थक क्रिया। इस श्लोक में पार्वती की मूर्छावस्था या प्रलापावस्था का वर्णन है। प्रियतम का गुणानुवाद करना प्रलापावस्था कहलाता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वाच्य परिवर्तन :—अनया पिनाकिनः चरिते उपात्तवर्णे सबाष्पकण्ठस्खलितैः पदैः वनान्तसंगीतसख्यः किन्नरराजकन्यकाः अरोद्यन्त ॥५६॥

अनुवाद :—महादेव की वीरता के गीतों के गाने पर यह अश्रु सहित (गद्गद) कण्ठ से अस्पष्ट निकलने वाले शब्दों के द्वारा वन-प्रदेश में साथ गाने वाली अपनी सहेलियों, किन्नर राजाओं की कन्याओं को बार-बार रुलाती थीं ॥५६॥

संस्कृत में भावार्थ :—शिवप्रीतिमग्ना पार्वती वन-प्रदेशेषु गत्वा शिवस्तुतिगीतान्यगायत्, परम् मध्य एव शिवविषयकभावेनाभिभूता गद्गदकण्ठाभूत्, गातुञ्चासमर्था अश्रुपूर्णनेत्रावर्तत। तस्या इमाम् करुणाम् दशाञ्चावलोक्य किन्नराणाम् राजपुत्र्यस्तत्सख्योऽत्यन्तम् अरोदिषुः ॥५६॥

त्रिभागशेषासु निशासु च क्षणं
निमील्य नेत्रे सहसा व्यबुध्यत।
क्व नीलकण्ठ व्रजसीत्यलक्ष्यवा-
गसत्यकण्ठार्पितबाहुबन्धना ॥५७॥

टीका :—त्रिभागेति। च किं च इति चार्थः। त्रिभागशेषासु शिष्यते इति शेषः। कर्मणि घञ्। त्रिभ्यो भागेभ्यः शेषास्ववशिष्टासु। यद्वा रात्रेस्त्रियामत्वेन प्रसिद्धत्वात् तृतीयो भागस्त्रिभागः। संख्या शब्दस्य वृत्तिविषये पूरणार्थत्वमिष्यते। यथा शतांशः सहस्रांश इति। त्रिभागः शेषो यासाम् तासु निशासु क्षणमात्रम् नेत्रे निमील्य मीलयित्वा सहसा सद्यः हे नीलकण्ठ क्व व्रजसि कुत्र गच्छसि इति अलक्ष्यवाक् अलक्ष्या निर्विषया वाग्वचनम् यस्याः सा तथोक्ता। तथा असत्यकण्ठार्पितबाहुबन्धना असत्ये मिथ्याभूते कण्ठे अर्पितम् बाहु-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

बन्धनम् यस्याः सा तथा सती व्यबुध्यत विबुद्धवती। एतेन जागरोन्मादौ सूचितौ ॥५७॥

टिप्पणी :—त्रिभागशेषासु—शिष्यते इति शेषः (शिष्+घञ्) बचा हुआ। त्रिभागशेषासु में दो प्रकार से समास होगा (१) त्रिभ्यो भागेभ्यः शेषासु (उत्तरपदो द्विगुः), तीन पहर रात बीतने पर जो रात बची थी। रात के चौथे पहर में। (२) तृतीयो भागः त्रिभागः, त्रिभागः शेषो यासाम् ताः त्रिभागाः तासु, उन रातों में जिनका केवल तीसरा भाग (पहर) बचा हो। ऐसी अवस्था में रात के केवल तीन ही भाग माने गये हैं। सारी रातभर पार्वती को गाढ़ी नींद नहीं आती थी और रात के पिछले पहर में वह शङ्कर जी के सोच में बिलकुल जाग जाती थीं। निमील्य—(नि+मील्+ल्यप्), बन्द करके। क्षणम् नेत्रे निमील्य क्षण भर के वास्ते आँख बन्द करके। यानी थोड़ी देर तक सो लेने के बाद। उत् के साथ मील् का अर्थ खोलना होता है। सहसा—अकस्मात्, यकायक। नीलकण्ठ—नीलः कण्ठो यस्य स नीलकण्ठः तस्य संबोधने हे नीलकण्ठ, शिवजी। उनका नाम नीलकण्ठ इस वास्ते पड़ा कि जब उन्होंने विष पान किया था तो उनका गला नीला पड़ गया था। क्व व्रजसि—कहाँ जा रहे हो? इस प्रकार के शब्द पार्वती अपनी मूर्च्छावस्था में कहा करती थीं। अलक्ष्यवाक्—अविद्यमानम् लक्ष्यम् यस्याः सा अलक्ष्या (वाक् का विशेषण है), अलक्ष्या वाक् यस्याः सा अलक्ष्यवाक्, जो ऐसे वचन बोलती थीं जिसका सुननेवाला नहीं था; जो बिना श्रोता के असम्बद्ध वचन बोलती थीं। असत्यकण्ठार्पितबाहुबन्धना—न सत्यः असत्यः (अविद्यमानः), असत्ये कण्ठे अर्पितम् (दत्तम्) बाह्वोः बन्धनम् यस्याः सा—एक काल्पनिक (व्यक्ति के) गले में बाहुयें डालने वाली। यद्यपि उस समय पार्वती के पास कोई आदमी नहीं था फिर भी वह इस प्रकार बातें करती थीं मानों कि कोई व्यक्ति उनके पास विद्यमान

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

है, और वह उस काल्पनिक व्यक्ति के गले में हाथ डालने को उत्सुक हो जाती थीं। व्यबुध्यत—(वि+बुध्+लङ्) जाग जाती थीं। साहित्यदर्पण में यह श्लोक प्रलाप के उदाहरणों में उद्धृत किया गया है। (अलक्ष्यवाक् प्रलापो स्यात् चेतसो भ्रमणाद् भृशम्) मल्लिनाथ इसे जागर (नींद का न आना) और उन्माद कहते हैं (अर्थात् ऐसा पागलपन जिससें असम्बद्ध शब्द कहे जाते हैं)

वाच्य परिवर्तन :—(किं) च, त्रिभागशेषासु निशासु क्षणम् नेत्रे निमील्य सहसा—हे नीलकण्ठ ! (त्वया क्व व्रज्यते, इति अलक्ष्य-वाचा असत्यकण्ठार्पितबाहुबन्धनया (अनया) व्यबुध्यत ॥ ५७ ॥

अनुवाद :—और, रात्रि के तीसरे (या चौथे) भाग के शेष रह जाने पर मुहूर्त्तमात्र के लिये आँखों को बन्द करके (अर्थात् सोकर) अकस्मात् 'हे नीलकण्ठ (शिव) ! कहाँ जाते हो ?' इस प्रकार असंगत वाणी बोलती हुई (तथा) एक काल्पनिक गले में ही अपने बाहुओं को लपेटती हुई जग पड़ती थीं ॥ ५७ ॥

संस्कृत में भावार्थ :—शिवेऽत्यन्तमनुरक्ता पार्वती दिवानिशम् तमेव ध्यायन्ती रात्रावपि गाढनिद्रामलभमाना स्वल्पशयनानन्तरमेव अकस्मादेव विबुध्यते स्म, उन्मादाभिभूता चाविद्यमानमपि शिवम् लक्ष्यीकृत्य 'हे शिव ! त्वम् कुत्र गच्छसि ? किमर्थम् मत्समीपम् नायासि ? इत्यादिकमालपन्ती काल्पनिकम् शिवमालिङ्गितुञ्च तस्य ग्रीवाम् परितः स्वबाहू प्रसारयति स्म ॥ ५७ ॥

यदा बुधैः सर्वगतस्त्वमुच्यसे
न वेत्सि भावस्थमिमं कथं जनम् ।
इति स्वहस्तोल्लिखितश्च मुग्धया
रहस्युपालभ्यत चन्द्रशेखरः ॥ ५८ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

टीका :—स्वप्नसादृश्यप्रतिकृतिदर्शनतदङ्गस्पृष्टस्पर्शाख्याश्चत्वारो विरहिणो विनोदाः । तत्र स्वप्नसंदर्शनमुक्त्वा प्रतिकृतिदर्शनमाह । यदेति । यदा यत इत्यर्थः । 'यदेति हेतौ' इत्युक्त्वा गणव्याख्यानेऽस्योदाहृतत्वात् । त्वम् बुधैः मनीषिभिः सर्वगतः सर्वव्यापीति उच्यसे । तत इत्यध्याहारः भावे रत्याख्ये तिष्ठतीति भावस्थम् । त्वय्यनुरागिणमित्यर्थः । इमम् जनम् । इममित्यात्मनिर्देशः । कथम् न वेत्सि न जानासि । इति मुग्धया मूढया । अकिञ्चित्करश्चित्रगतोपालम्भ इत्यजानानयेत्यर्थः । तया स्वहस्तोल्लिखितः स्वहस्तेनोल्लिखितश्चित्रे लिखितः चन्द्रशेखरः रहसि एकान्ते । सखीमात्रसमक्षमित्यर्थः । उपालभ्यत साधिक्षेपमुक्तः च । उक्तसमुच्चयार्थश्चकारः । यद्यपि रहसीत्युक्तं तथापि सखीसमक्षकरणाल्लज्जात्यागो व्यज्यत एव ।। ५८ ।।

अन्वय :—यदा त्वम् बुधैः सर्वगतः उच्यसे, (ततः) भावस्थम् इमम् जनम् कथम् न वेत्सि ? इति मुग्धया (अनया) स्वहस्तोल्लिखितः चन्द्रशेखरः रहसि उपालभ्यत ।। ५८ ।।

टिप्पणी :—यदा—जब । कहीं-कहीं पर 'सदा' पाठ है । बुधैः—(बुध+कः) पण्डितैः, पण्डितों द्वारा । सर्वगतः—सर्वम् गतः (प्राप्तः) सर्वगतः (सर्वान्तर्यामी , सब कुछ जानने वाला, सर्वत्र रहने वाला । इसमें द्वितीया तत्पुरुष समास है । इसका सूत्र है "द्वितीयाश्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः" पा० २. १. २४ । उच्यसे —कथ्यसे, कहे जाते हो । वच् धातु कर्म-वाच्य म. पु. ए. व. । भावस्थम्—(त्वदनुरागिणम्), जो तुमसे प्रेम करता है । "सुपिस्थः" पा० ३. २. ४ से 'कः' प्रत्यय लगा । यह उपपद समास है । इसम् जनम्—मां पार्वतीम् । मुग्धया—(मुह+क्त), ह् का घ हो गया तब ग् हो गया; फिर त का ध हो गया । मुग्धा—बेवकूफ, सीधी सादी । पार्वती को ठीक ही मुग्धा कहा गया है, क्योंकि प्रेमासक्त

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

होने के कारण उनको यह न मालूम पड़ा कि चित्र से बातचीत करना व्यर्थ है। अलंकार की पुस्तकों में मुग्धा एक प्रकार की नायिका कही गई है। स्वहस्तोल्लिखित:—उल्लिखित:—(उत् + लिख + क्त), चित्रित:, चित्र बना कर। स्वेन हस्तेन उल्लिखित: स्वहस्तोल्लिखित:, अपने हाथों से खींचा गया। चन्द्रशेखर:—चन्द्र: शेखरो यस्य अथवा चन्द्र: शेखरे यस्य स: चन्द्रशेखर:, चन्द्रमा है शिर में जिसके अर्थात् शंकर जी। रहसि—एकान्ते, अकेले में, एकान्त में। उपालभ्यत—(उप + लभ् + य + लङ्), अधिक्षिप्यते स्म, उलाहना दिया गया, उप + आ के साथ "लभ्" माने उलाहना के होते हैं।

प्रिय के चित्र का खींचना उन चार उपायों में से एक है जिनसे कि वियोगी प्रेमिकाएँ अपनी इच्छा की पूर्ति करती हैं। अन्य तीन तरीके ये हैं—स्वप्नदर्शन, सादृश्यदर्शन, और तदङ्गस्पृष्टस्पर्श। "वियोगावस्थासु प्रियजनसदृशानुभावनम्, ततश्चित्रम् कर्म स्वप्नसमये दर्शनमपि। तदङ्गस्पृष्टानामुपगतवताम् स्पर्शनमपि, प्रतीकार: कामव्यथितमनसाम् कोऽपि कथित:"। यहाँ पर प्रेमी की दशों अवस्थाओं में ह्री-त्याग अवस्था है।

वाच्य परिवर्तन :—यदा त्वाम् बुधा: सर्वगतम् ब्रुवन्ति, (तत:) भावस्थ: अयम् जन: (त्वया) कथम् न वेद्यते ? इति मुग्धा (सा) स्वहस्तोल्लिखितं चन्द्रशेखरं रहसि उपालभत ॥ ५८ ॥

अनुवाद :—'जब कि ज्ञानी लोग तुम्हें सर्व-व्यापक बताते हैं तो अपने प्रेमी इस व्यक्ति को तुम क्यों नहीं जानते ?'—इस प्रकार वह (प्रेम में) भोली (पार्वती जी) अपने हाथ से चित्रित महादेव को एकान्त में उलाहना देती थीं ॥ ५८ ॥

संस्कृत में भावार्थ :—निजमनोविनोदार्थम् पार्वती स्वप्रियस्य शिवस्य चित्रमुल्लिख्य तेन सह नानाप्रकारेण वार्त्तालापम् विदधत्य-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कथयत्—'हे शिव ! विद्वांसो जनास्त्वां सर्वव्यापकं कथयन्ति, तर्हि त्वं मम हृदये विद्यमानोऽपि स्वविषयकं मेऽनुरागं कथं न जानासि ?' ॥ ५८ ॥

यदा च तस्याधिगमे जगत्पते-
रपश्यदन्यं न विधिं विचिन्वती ।
तदा सहास्माभिरनुज्ञया गुरो-
रियं प्रपन्ना तपसे तपोवनम् ॥ ५९ ॥

टीका :—यदेति । जगत्पतेः तस्य ईश्वरस्य अधिगमे प्राप्तौ अन्यम् विधिम् उपायम् विचिन्वती मृगयमाणा यदा न अपश्यत् तदा इयम् पार्वती गुरोः पितुः अनुज्ञया अस्माभिः सह तपसे तपश्चरितुम् तपोवनम् प्रपन्ना प्राप्ता च ॥ ५६ ॥

अन्वय :—(अथ) च जगत्पतेः तस्य अधिगमे विचिन्वती यदा अन्यं विधिं न अपश्यत्, तदा गुरोः अनुज्ञया अस्माभिः सह तपसे तपोवनं प्रपन्ना ॥ ५६ ॥

टिप्पणी :—जगत्पते—जगतां संसारस्य पतिः जगत्पतिः तस्य जगत्पतेः, संसार के स्वामी का । जब किसी के साथ पति शब्द का समास हो जाता है, तो उसका रूप हरि के समान चलता है । अतः 'जगत्पतेः' रूप हुआ, न कि 'जगत्पत्युः' । अधिगमे –(अधि + गम् + अप्), सूत्र है "ऋदोरप" प्राप्तौ, पाने में । अधि पूर्वक गम् के अर्थ पाने के होते हैं । विचिन्वती—(वि + चिञ् + शतृ + ङीप्), मृगयमाणा, खोजती हुई, सोचती हुई । विधिम्—उपायम्, साधन । विधि पुंलिङ्ग है । गुरोः—पितुः, पिता का । "गुरुः गीष्पति पित्रादौ" इत्यमरः । अनुज्ञया—आज्ञया, आज्ञा से । तपसे—तपः कर्तुम्,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तपस्या करने के वास्ते। तुमुन् के अर्थ में चतुर्थी हुई है। श्लोक ३३ देखिये। प्रपन्ना—(प्र+पद्+क्त+टाप्), प्राप्ता, आगता, आयी।

वाच्य परिवर्तन :—(अथ) च जगत्पतेः तस्य अधिगमे विचिन्वत्या (तया) यदा अन्यः विधिः न अदृश्यत, तदा गुरोः अनुज्ञया (अनया) अस्माभिः सह तपसे तपोवनम् प्रपन्नम्॥ ५६॥

अनुवाद :—फिर, जब संसार के स्वामी (शिव) की प्राप्ति के लिये खोज करती हुई (उसने) कोई दूसरा उपाय न देखा, तब पिता जी की आज्ञा लेकर तप करने के लिये हमारे साथ इस तपोवन में आ गयी॥ ५६॥

संस्कृत में भावार्थ :—संसारस्वामिनः शिवस्य प्राप्त्यर्थम् सा नानाविधानुपायानकरोत्, परम् सर्वेषूपायेषु विफलेषु सत्सु 'सर्वमपि तपसाधिगम्यम्' इति विचारयन्ती पार्वती पितुराज्ञामादाय स्वसखीभिरस्माभिः सार्धम् तप आचरितुमिदम् तपोवनमागता॥ ५६॥

द्रुमेषु सख्या कृतजन्मसु स्वयं
फलं तपःसाक्षिषु दृष्टमेष्वपि।
न च प्ररोहाभिमुखोऽपि दृश्यते
मनोरथोऽस्याः शशिमौलिसंश्रयः॥ ६०॥

टीका :—द्रुमेष्विति। सख्या पार्वत्या स्वयं कृतजन्मसु कृतम् जन्म येषाम् तेषु। स्वयं रोपितेष्वित्यर्थः। तपःसाक्षिषु तपसः साक्षिषु साक्षात् द्रष्टेषु एषु द्रुमेषु अपि फलम् दृष्टम्। जनितमित्यर्थः। अस्याः पार्वत्याः च शशिमौलिसंश्रयः चन्द्रशेखरविषयः मनोरथः तु प्ररोहाभिमुखः अङ्कुरोन्मुखः अपि न दृश्यते। 'प्ररोहस्त्व-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ङ्कुरः' इति वैजयन्ती। स्वयम् रोपितवृक्षफलकालेऽप्यस्या मनोरथस्य नाङ्कुरोदयोऽप्यस्ति। फलाशा तु दूरापास्तेत्यर्थः॥ ६०॥

अन्वय :—सख्या स्वयम् कृतजन्मसु तपःसाक्षिषु एषु द्रुमेषु अपि फलम् दृष्टम्, शशिमौलिसंश्रयः अस्याः मनोरथः च प्ररोहाभिमुखः अपि न दृश्यते॥ ६०॥

टिप्पणी :—सख्या—सखी (पार्वती) द्वारा। कृतजन्मसु—कृतम् जन्म येषां ते, तेषु, जो उसके द्वारा लगाये गये थे; जिन पौधों को उसने लगाया था। तपःसाक्षिषु—तपसः साक्षिषु, जो उसकी तपस्या के साक्षी थे। साक्षिन् पर टिप्पणी के लिये तपःसाक्ष्ये (श्लोक २५) की टिप्पणी देखिये। वृक्ष पार्वती की तपस्या के साक्षी कहे गये हैं, क्योंकि जब पार्वती वन में तपस्या करने आयी थीं तब वे वृक्ष उनसे लगाये गये थे और जब यह तपस्या करती थीं तो वे दिन रात उनके पास रहकर उनकी तपस्या को देखा करते थे। शशिमौलिसंश्रयः—शशिमौलिः—शशः अस्यास्तीति शशी (शश+इनि) चन्द्रः, शशी मौलौ (मस्तके) यस्य सः, अथवा शशी मौलिः (शेखरः) यस्य सः शशिमौलिः शिवः। मौलि—शिर; चोटी। संश्रयः—(सम्+श्रि+अच्), संश्रीयते इति संश्रयः (अवलम्बः), सहारा। शशिमौलिसंश्रयः—शशिमौलिः संश्रयो यस्य सः शशिमौलिसंश्रयः—शिवसम्बन्धी। मनोरथः—अभिलाषः इच्छा; मनोरथ, (शिव को पाने की इच्छा)। प्ररोहाभिमुखः—प्ररोहः (प्र+रुह+घञ्), प्ररोहतीति प्ररोहः (अङ्कुरः); अँखुआ। "प्ररोहस्त्वङ्कुरः" इति वैजयन्ती कोशः। प्ररोहस्य अभिमुखः प्ररोहाभिमुखः—अङ्कुरित होने वाला। न दृश्यते—नहीं दिखाई पड़ता। यद्यपि पार्वती द्वारा लगाये हुए वृक्षों में फल लग गये, परन्तु इनका मनोरथ अभी अंकुरित होने वाला भी नहीं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दिखाई पड़ता। पार्वती की इच्छा में तथा उनके लगाये वृक्षों में जो अन्तर है वह कितना सुन्दर है।

वाच्य परिवर्तन :—सख्या स्वयम् कृतजन्मसु तपःसाक्षिषु एषु द्रुमेषु अपि (वयम्) फलम् दृष्टवत्यः, (परम्) शशिमौलि-संश्रयम् अस्याः मनोरथम् च प्ररोहाभिमुखम् अपि न पश्यामः ॥ ६० ॥

अनुवाद :—हमारी सहेली द्वारा अपने आप लगाये हुए, तप के साक्षीभूत इन वृक्षों में भी फल लग गये, (परन्तु) शिव-सम्बन्धी इनकी इच्छा अभी अंकुरित होने वाली भी नहीं दीखती ॥ ६० ॥

संस्कृत में भावार्थ :—तपश्चरन्त्याः अस्याः पार्वत्याः दीर्घः कालो जातः। अत्रागत्य चानया स्वहस्तेनैव ये वृक्षा आरोपितास्ते फलिताः दृश्यन्ते, परमेतावत्तपस्याचरणानन्तरमपि शिव-सम्बन्धिनी अस्याः भावना लेशमात्रमपि साफल्योन्मुखी न दृश्यते ॥ ६० ॥

न वेद्मि स प्रार्थितदुर्लभः कदा
सखीभिरस्रोत्तरमीक्षितामिमाम्।
तपःकृशामभ्युपपत्स्यते सखीं
वृषेव सीतां तदवग्रहक्षताम् ॥ ६१ ॥

टीका :—नेति। प्रार्थितः सन्दुर्लभः प्रार्थितदुर्लभः स देवः तपः-कृशाम् तपसा कृशाम् क्षीणाम् अतएव सखीभिः अस्रोत्तरम् अश्रुप्रधा-नम् यथा भवति तथा ईक्षिताम् इमाम् नः सखीम् तदवग्रहक्षताम् तस्ये-न्द्रस्यावग्रहेणानावृष्ट्या क्षताम् पीडिताम्। 'वृष्टिवर्षम् तद्विघातेऽवग्राहा-वग्रहौ समौ' इत्यमरः। 'अवे ग्रहो वर्षप्रति बन्धे' इत्यप् प्रत्ययः।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सीताम् कृष्टभुवम् । 'सीता लाङ्गलपद्धतिः' इत्यमरः । वृषा वासवः इव । 'वासवो-वृत्रहा वृषा' इत्यमरः । कदा अभ्युपपत्स्यते कदा अनुग्रहीष्यति न वेद्मि । अत्र वाक्यार्थः कर्म । तदवग्रहक्षतामित्यत्रावग्रहक्षतामित्यनेनैव गतार्थत्वे तत्पदस्य वैयर्थ्यापत्तेस्तदिति भिन्नम् पदम् वेद्मीत्यस्य कर्मेति युक्तमुत्पश्यामः ॥ ६१ ॥

अन्वय :—प्रार्थितदुर्लभः सः तपःकृशाम् सखीभिः अस्रोत्तरम् ईक्षिताम् इमाम् सखीम् तदवग्रहक्षताम् सीताम् वृषा इव कदा अभ्युपपत्स्यते (इति) न वेद्मि ॥ ६१ ॥

टिप्पणी :—प्रार्थितदुर्लभः—(प्र + अर्थ् + क्त) (दुर् + लभ् + खल) प्रार्थितश्चासौ दुर्लभश्च इति प्रार्थितदुर्लभः, जो याचना करने पर भी कठिनता से प्राप्त हो । यह "भविष्यति प्रार्थितदुर्लभः कथम्" का उत्तर है । स—शिवः । तपःकृशां—तपसा कृशा तपःकृशा ताम् तपःकृशाम्, तपस्या से पतली दुबली; कृश—(कृश् + क्तः । अस्रोत्तरम्—अस्रम् (अश्रु) उत्तरम् प्रधानम् यस्मिन् कर्मणि तद् अस्रोत्तरम् अथवा अस्रैः उत्तरम् यथा स्यात्तथा अस्रोत्तरम्, आँसुओं के साथ । ईक्षिताम्—देखी गई । तदवग्रहक्षताम्—अवग्रहः—(अव + ग्रह् + अप), वर्षप्रतिबन्धः—अकालः सूखा पड़ना; पानी का न बरसना । "अवे ग्रहो वर्षप्रतिबन्धे" पा० ३. ३. ५१ से अप् प्रत्यय हुआ । दूसरा रूप अवग्राह है जो घञ् प्रत्यय लगाने से बनता है । तस्य (इन्द्रस्य) अवग्रहेण (अनावृष्ट्या) क्षताम् (पीडिताम्) तदवग्रहक्षताम्, उसके (इन्द्र के) पानी न बरसाने के कारण दुःखी । मल्लिनाथ "तद् न वेद्मि" ऐसा अन्वय करते हैं । परन्तु यह अर्थ बहुत खींचकर लगता है । तद् समास का एक भाग है और इससे वृषन् का मतलब होता है । सीताम्—लाङ्गलरेखाम्, कृष्टाम् भुवम्, क्यारी, जोती हुई जमीन । "सीता लाङ्गलरेखा स्याद् व्योमगङ्गा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

च जानकी" । वृषा—वर्षति इति वृषा—वृष्टि करने वाला, इन्द्र ।, "वासवो वृत्रहा वृषा" इत्यमरः । अभ्युपपत्स्यते—अनुग्रहीष्यति; कृपा करेंगे, अनुग्रह करेंगे । अभि+उप+पद्—कृपा करना, अनुग्रह करना । इस श्लोक में शिव की उपमा इन्द्र से और पार्वती की उपमा पृथ्वी से दी गई है । जिस प्रकार वृष्टि न होने से पृथ्वी दुःखी होती है उसी प्रकार शिव की कृपा न होने से पार्वती दुखी हो रही थीं ।

वाच्य परिवर्तन :—प्रार्थितदुर्लभेन तेन तपःकृशा सखीभिः अस्रोत्तरम् ईक्षिता इयम् सखी तदवग्रहक्षता सीता वृष्णा इव कदा अभ्युपपत्स्यते (इति) (मया) न वेद्यते ॥ ६१ ॥

अनुवाद :—चाहे हुए होने पर भी कठिनता से मिलने वाला वह, तपस्या के कारण दुर्बल तथा सहेलियों से आँसुओं के साथ देखी हुई इस सहेली (पार्वती) को, इन्द्र के द्वारा वर्षा के रोके जाने से दुखी, हल चली हुई पृथ्वी को इन्द्र की तरह कब अनुगृहीत करेगा— (यह) मैं नहीं जानती ॥ ६१ ॥

संस्कृत में भावार्थ :—सत्यमेवाभिलषितोऽपि शिवो दुष्प्रापः, यतः सा इयता समयेनापि पार्वत्या न लब्धः । तस्येमाम् चित्तवृत्तिम् दृष्ट्वा मया ज्ञातुम् न शक्यते यत् स कियत्कालानन्तरम् वर्षाभावादत्यन्तम् पीडिताम् महीम् इन्द्र इवेमाम् तपश्चरणात्कृशीभूतामस्माकम् सखीमनुग्रहीष्यति याम् दृष्ट्वा वयम् तत्सख्यो निरन्तरमश्रूणि मुञ्चामः ॥ ६१ ॥

अगूढसद्भावमितीङ्गितज्ञया
निवेदितो नैष्ठिकसुन्दरस्तया ।
अपीदमेवं परिहास इत्युमा-
मपृच्छदव्यञ्जितहर्षलक्षणः ॥ ६२ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

टीका:—अगूढेति । इङ्गितज्ञया पार्वतीहृदयाभिज्ञया 'इङ्गितम् हृद्गतो भाव:' इति सज्जन: । तथा गौरीसख्या इति एवम् अगूढसद्भावम् प्रकाशितसदभिप्रायम् यथा तथा निवेदित: ज्ञापित: । नैष्ठिकसुन्दर: निष्ठा मरणमवधिर्यस्य स नैष्ठिको यावज्जीवनब्रह्मचारी सुन्दरो विलासी । नैष्ठिकश्चासौ सुन्दरश्चेति तथोक्त: । द्वयोरन्यतरस्य विशेषणत्वविवक्षायाम् विशेषणसमास: । किन्तु नैष्ठिकत्वविशेषणेन कामित्वविरोध: । अथवा देवस्यालौकिकमहिमत्वादुभयम् तात्त्विकमिति न विरोध: । अभ्यञ्जितहर्षलक्षणम् अभ्यञ्जितम् हर्षलक्षणम् मुखरागादि हर्षलिङ्गम् यस्य तथाभूत: सन् । अयि गौरि । अयीति कोमलामन्त्रणे । इदम् त्वत्सखीभाषितम् । एवम् सत्यम् किमित्यर्थ: । परिहास: केलिर्वा । 'द्रवकेलिपरीहासा:' इत्यमर: । इति एवम् उमाम् अपृच्छत् पृष्टवान् ॥ ६२ ॥

अन्वय :—इङ्गितज्ञया तया इति अगूढसद्भावाम् निवेदित: नैष्ठिकसुन्दर: अभ्यञ्जितहर्षलक्षण: (सन्) अयि ! इदम् एवम् (अथवा) परिहास इति उमाम् अपृच्छत् ॥ ६२ ॥

टिप्पणी :—इङ्गितज्ञया—(इङ्गित+ज्ञा+क:+आ) 'इङ्गितम् (हृद्गतम् भावम्) जानाति इति इङ्गितज्ञा तया इङ्गितज्ञया—आन्तरिक भाव को जानने वाली । इङ्गित का अर्थ संकेत भी होता है । परन्तु यहाँ पर "अन्तर का भाव" अर्थ है । 'इङ्गितं हृद्गतो भाव:' इति सज्जन: । तया—पार्वती की उस सहेली से । अगूढसद्भावम्—(गुह+क्त=गूढ) सन् भाव:, इति सद्भाव:, न गूढ: सद्भाव: (यथार्थाभिप्राय:) यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा अगूढसद्भावम् , निवेदित: का क्रियाविशेषण है । अगूढसद्भावम्—सुन्दर अभिप्राय को न छिपाते हुए । निवेदित:—उक्त:, कहा गया । नैष्ठिकसुन्दर:—(निष्ठा+ठन्) । निष्ठा (मरणम्),

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तत्पर्यन्तम् ब्रह्मचर्येण तिष्ठति इति नैष्ठिकः (यावज्जीवन-ब्रह्मचारी)। अथवा निष्ठाकालम् यावदस्य ब्रह्मचर्यमिति नैष्ठिकः (यावज्जीवन ब्रह्मचारी), जो जन्मपर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत धारण करता है। निष्ठा का अर्थ है अन्त, अन्तिम अवस्था, मौत। 'निष्ठानिष्पत्ति-नाशान्ताः' इत्यमरः। 'तदस्य ब्रह्मचर्यम्' पा० ५. १. ५७ से ठञ् प्रत्यय लगा। ठञ् का इक हो गया। नैष्ठिकश्चासौ सुन्दरश्च नैष्ठिकसुन्दरः—सुन्दर ब्रह्मचारी (शिव)। अव्यञ्जितहर्षलक्षणः न व्यञ्जितम् (प्रकटितम्) हर्षस्य लक्षणम् (चिह्न) येन सः अव्यञ्जित-हर्षलक्षणः—जिसने खुशी का चिह्न नहीं दिखाया। यद्यपि शिव को यह देखकर कि पार्वती उनको इतना प्रेम करती हैं, बड़ी खुशी हुई फिर भी उन्होंने अपने हर्ष के चिह्नों को प्रकट नहीं किया। एवम्—सत्य। क्या यह बात ऐसी ही है, जैसा सखी कहती है। परिहासः—मजाक; (परि+हस्+घञ्)। अपृच्छत्—पूछा, प्रच्छ धातु के दो कर्म होते हैं। अपृच्छत् का एक कर्म "उमाम्" है और दूसरा कर्म "अपि इदम् एवम्, (उत) परिहासः" है।

वाच्य परिवर्तन :—इङ्गितज्ञया तया इति अगूढसद्भावम् निवेदितेन नैष्ठिकसुन्दरेण अव्यञ्जितहर्षलक्षणेन अयि अनेन एवम् (भूयते), अथवा, परिहासेन इति एवम् अपृच्छयत ॥६२॥

अनुवाद :—(पार्वती के) आन्तरिक भाव को जानने वाली उस सखी के द्वारा इस प्रकार (पार्वती के) श्रेष्ठ अभिप्राय को स्पष्ट करके कहे हुए उस सुन्दर आजन्म ब्रह्मचारी ने प्रसन्नता के चिह्नों को सूचित न करते हुए ही पार्वती से पूछा—क्यों जी, क्या यह ऐसा ही है अथवा हँसी है ? ॥६२॥

संस्कृत में भावार्थ :—पार्वत्यभिप्रायवेदिन्या तत्सख्या पार्वत्याः अनुरागविषये स्पष्टमुक्तः स्वरूपवान् स ब्रह्मचारी नितराम् हृष्टो

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जातः, परम् स्वहर्षम् निगूहन् स पार्वतीमपृच्छत्—यत्तत्सख्या कथितम् वृत्तम् सत्यमासीत् उताहो हास्यमात्रमेव ॥६२॥

अथाग्रहस्ते मुकुलीकृताङ्गुलौ
समर्पयन्ती स्फटिकाक्षमालिकाम् ।
कथंचिदद्रेस्तनया मिताक्षरं
चिरव्यवस्थापितवागभाषत ॥६३॥

टीका :—अथेति अथ अनन्तरम् अद्रेः तनया पार्वती मुकुलीकृताङ्गुलौ संपुटीकृताङ्गुलौ । अग्रश्चासौ हस्तश्चेति समानाधिकरणसमासः । 'हस्ताग्राग्रहस्तयोर्गुणगुणिनोर्भेदाभेदात्' इति वामनः । तस्मिन् अग्रहस्ते स्फटिकाक्षमालिकाम् स्फटिकानाम् अक्षमालिकाम् समर्पयन्ती आमुञ्चती कथञ्चित् महता कष्टेन चिरव्यवस्थापितवाक् चिरेण स्वीकृतवाक् । एतेन लज्जोपरोधो व्यज्यते । मिताक्षरम् परिमितवर्णम् यथा तथा अभाषत बभाषे ॥६३॥

अन्वय :—अथ अद्रेः तनया मुकुलीकृताङ्गुलौ अग्रहस्ते स्फटिकाक्षमालिकाम् समर्पयन्ती चिरव्यवस्थापितवाक् कथञ्चिद् मिताक्षरम् अभाषत ॥६३॥

टिप्पणी :—अद्रेः पर्वतस्य; पहाड़ की; 'अद्रिगोत्रगिरिग्रावाचलशैलशिलोच्चयाः' इत्यमरः । तनया—पुत्री (पार्वती) । मुकुलीकृताङ्गुलौ—मुकुलीकृताः—(मुकुल + च्विः + कृताः) अमुकुलाः मुकुलाः कृताः इति मुकुलीकृताः (संपुटीकृताः), जो कलियों की तरह सटा हुआ हो, (जुड़ा हो,) कली के रूपवाला । मुकुल—कली । जब कोई वस्तु या व्यक्ति उस वस्तु या व्यक्ति के समान बताया जाता है जो वह वास्तव में नहीं है तब च्वि प्रत्यय लगता है । यहाँ पर यह बताया गया है कि उँगलियाँ जो वास्तव में कलियों के समान नहीं थीं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जोड़कर उस रूप में बनाई गई । इस वास्ते च्वि प्रत्यय लगाकर मुकुलीकृत बनाया गया । इसका सूत्र है "अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे संपद्यकर्तरि च्विः"; पा० ५. ४. ५० । च्वि के पहले के अ या आ को इ हो जाता है । परन्तु अव्यय का अ या आ नहीं बदलता । इ और उ को दीर्घ हो जाता है तब च्वि का लोप हो जाता है और कृ, भू, अस धातुओं के कोई भी रूप (तिङन्त या कृदन्त) उस शब्द में जोड़ दिये जाते हैं । मुकुलीकृताङ्गुलौ—मुकुलीकृताः अङ्गुलयो यस्य स तस्मिन्, जिसकी उँगलियाँ कली के समान जुड़ी थीं । अग्रहस्ते–अग्रश्चासौ हस्तश्च इति अग्रहस्तः तस्मिन्—हाथ के अग्रभाग में । यह कर्मधारय समास है । यहाँ पर अग्र और हस्त में अवयव और अवयवीभाव सम्बन्ध है । इस वास्ते यहाँ कर्मधारय समास है । देखिये "हस्ताग्र अग्रहस्तायाः गुणगुणिनोर्भेदाभेदात्" वामनः । अथवा हस्तस्य अग्रे इति अग्रहस्ते । इस समास को यदि राजदन्तादि वर्ग का मान लें तो 'हस्त' बजाय पूर्व पद के उत्तर पद हो जायगा । स्फटिकाक्षमालिकाम्—स्फटिकानाम् स्फटिकनिर्मिता वा अक्षमालिका इति स्फटिकाक्षमालिका, ताम्, स्फटिक मणि की बनी हुई माला । यहाँ पर अक्षमालिका का केवल माला अर्थ है । समर्पयन्ती—आमुञ्चती—पकड़ती हुई (अर्प + णिच् + शतृ + ङीप्) । चिरव्यवस्थापितवाक्—चिरेण व्यवस्थापिता वाक् यया सा चिरव्यवस्थापितावाक्—बहुत देर तक वचनों को सोच कर; क्या कहना चाहिये, क्या न कहना चाहिये इस बात को खूब देर तक सोचकर । कथञ्चित्—किसी प्रकार । पार्वती बहुत शर्मिन्दा हो रही थीं, इस वास्ते किसी प्रकार (बड़ी मुश्किल से) वे बोलीं । मिताक्षरम्—(मा + क्त = मितम्), मितानि अक्षराणि यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा मिताक्षरम्, थोड़े से शब्दों (में) । अभाषत—बोली । (भाष् + लङ् प्र. पु. ए० व०) ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वाच्य परिवर्तन :—अथ अद्रेः तनयया मुकुलीकृताङ्गुलौ अग्रहस्ते स्फटिकाक्षमालिकाम् समर्पयन्त्या चिरव्यवस्थापितवाचा कथञ्चिद् मिताक्षरम् अभाष्यत ॥६३॥

अनुवाद :—इसके अनन्तर पर्वत की पुत्री (पार्वती) स्फटिक की जपमाला को जुड़ी हुई (एकत्रीकृत) अङ्गुलियों वाले हाथ के अग्रभाग में पकड़ कर, देर तक वचनों को ठीक करके, जैसे-तैसे थोड़े से अक्षरों में बोलीं ॥६३॥

संस्कृत में भावार्थ :—ब्रह्मचारिणः प्रश्नानन्तरम् पार्वती स्फटिकनिर्मिताम् स्वजपमालाम् कुड्मलाकाराङ्गुलौ स्वहस्तस्याग्रभागे निश्चलीकृत्य—जपमालाचालनात्किञ्चित्कालम् विरम्य—चिराय कथनीयविषयम् कथनप्रकारञ्च निश्चित्य संक्षिप्तमुत्तरम् दातुमुद्यताभूत् ॥६३॥

यथा श्रुतं वेदविदां वर त्वया
जनोऽयमुच्चैःपदलङ्घनोत्सुकः ।
तपः किलेदं तदवाप्तिसाधनं
मनोरथानामगतिर्न विद्यते ॥६४॥

टीका :—किमुवाचेत्याह यथेति। हे वेदविदाम् वर वैदिकश्रेष्ठ। त्वया यथा श्रुतम् सम्यक् श्रुतम्। श्रुतार्थमेवाह—अयम् जनः स्वयमित्यर्थः। उच्चैः पदलङ्घनोत्सुकः उच्चैः पदस्य शिवलाभरूपोन्नतस्थानस्य लङ्घने आक्रमणे उत्सुकः। किमत्रायुक्तमित्यत्राह—इदम् तपः तदवाप्तिसाधनम् किल। किलेत्यलीके। अतितुच्छत्वादसाधकमेवेत्यर्थः। तर्हि त्यज्यतामित्याशङ्क्य दुराशा माम् न मुञ्चति इत्याशयेनाह—मनोरथानाम् कामानाम् अगतिः अविषयः न विद्यते। न हि स्वशक्तिपर्यालोचनया कामाः प्रवर्तन्त इति भावः ॥६४॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्वय :—हे वेदविदाम् वर ! त्वया यथा श्रुतम् अयम् जनः उच्चैःपदलङ्घनोत्सुकः, इदम् तपः तदवाप्तिसाधनम् किल, मनोरथानाम् अगतिर्न विद्यते ।।६४।।

टिप्पणी :—वेदविदाम्—(विद्—जानना+क्विप्=वित्), वेदम् विदन्ति इति वेदविदः; तेषाम्, वेद जानने वालों का। इसका रूप यों चलेगा—वेदवित्, वेदविदौ, वेदविदः आदि । वर—श्रेष्ठ उत्तम। त्वया यथा श्रुतम्—जैसा आपने सुना है। अथवा आपने ठीक ही सुना है। त्वया सम्यक् आकर्णितम्। मल्लिनाथ का कथन है कि यथा माने ठीक के हैं। इसका अर्थ ऐसे भी किया जा सकता है—त्वया यथा श्रुतम् अयं जनः आदि—जैसा आपने सुना है, यह जन उच्च पद प्राप्त करने को उत्सुक है। अथवा यथा के बाद तथा कर दें तो अर्थ हो जायगा कि जैसा आपने सुना है वह ठीक है। यथा श्रुतं तत्तथा। उच्चैः पदलङ्घनोत्सुकः—उच्चैः पदस्य स्थानस्य लङ्घने (प्राप्तौ) उत्सुकः, ऊँचे स्थान को पाने का उत्सुक। यह उच्च स्थान शिव की स्त्री बनना है। लङ्घन—पार करना या ऊपर उठना। तदवाप्तिसाधनम्—तस्य (उच्चैः पदस्य) अवाप्तेः (प्राप्तेः) साधनम् (उपायः) तदवाप्तिसाधनम्, उसके प्राप्त करने का साधन। किल—निश्चय। परन्तु मल्लिनाथ इसका अर्थ करते हैं अलीके, अर्थात् व्यर्थ। उनके कहने का अर्थ यह है कि तपस्या जो उसको प्राप्त करने का साधन है व्यर्थ प्रतीत होती है। अगतिः—अवरोधः, विश्रान्ति, रुकावट; 'मनोरथानामगतिर्न विद्यते' यह एक सामान्य कथन है जिसका अर्थ है कि मनोरथ सब जगह पहुँच सकता है अर्थात् इच्छाओं की रुकावट नहीं है, प्राणी हर एक इच्छित वस्तु को प्राप्त कर सकता है।

वाच्य परिवर्तन :—(हे) वेदविदाम् वर ! त्वम् यथा श्रुतवान् अनेन जनेन उच्चैः पदलङ्घनोत्सुकेन (भूयते)। अनेन तपसा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तदवाप्तिसाधनेन (भूयते) किल, मनोरथानाम् अगत्या न विद्यते ।।६४।।

अनुवाद :—हे वेद के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ ! तुमने जैसा सुना है (वह ठीक है) कि यह व्यक्ति ऊँचे पद की प्राप्ति का इच्छुक है; यह तपस्या उसकी प्राप्ति का उपाय है; इच्छाओं की विफलता नहीं होती है ।।६४।।

संस्कृत में भावार्थ :—वर्णिनः प्रश्नमाकर्ण्य पार्वती तम् प्रति वदति—'वेदज्ञातॄणाम् श्रेष्ठ ! साधो ! त्वया मे सखीमुखात् यत्किञ्चिदप्याकर्णितम् तत् यथार्थमेव; अहम् सत्यमेव शिवप्राप्तिरूपमुच्चस्थानमधिगन्तुम् कृतनिश्चया उन्मनाश्चास्मि । इयम् मे तपस्या निश्चयमेव तस्य मे मनोरथस्य पूर्त्यर्थम् विद्यते, मम कामना चावश्यम् सफला भविष्यति, यतो मनोरथेन सर्वमपि लब्धुम् शक्यते ।।६४।।

अथाह वर्णी विदितो महेश्वर-
स्तदर्थिनी त्वं पुनरेव वर्त्तसे ।
अमङ्गलाभ्यासरतिं विचिन्त्य तं
तवानुवृत्तिं न च कर्त्तुमुत्सहे ।।६५।।

टीका :—अथेति । अथ वर्णी ब्रह्मचारी । 'वर्णिनो ब्रह्मचारिणः' इत्यमरः । आह उवाचेत्यर्थः । 'आहेति भूतार्थे लट् प्रयोगो भ्रान्तिमूलः' इत्याह वामनः । किमित्याह—महेश्वरः महादेवः विदितः । मया ज्ञायत इत्यर्थः । बुद्ध्यर्थत्वात् वर्त्तमाने क्तः प्रत्ययः । तद्योगात् षष्ठी च । येन त्वम् प्रभग्नमनोरथा कृतेति भावः । पुनरेव त्वम् तमीश्वरमर्थयसे, तदर्थिनी एव तत्कामैव वर्तसे । तत्प्रभावमनुभूयापीति भावः । अनुसरणे को दोषस्तत्राह—अमङ्गलाभ्यासरतिम् अमङ्गलाचारे रतिर्यस्य तम् तथोक्तम् तम् ईश्वरम् विचिन्त्य विचार्य

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तवानुवृत्तिम् अनुसरणम् कर्तुम् न उत्सहे च। नानुमन्तुम् शक्नोमीत्यर्थः ॥ ६५ ॥

अन्वय :—अथ वर्णी आह—महेश्वरः विदितः, त्वम् पुनः एव तदर्थिनी वर्तसे, च तम् अमङ्गलाभ्यासरतिं विचिन्त्य तव अनुवृत्तिम् कर्तुम् न उत्सहे ॥ ६५ ॥

टिप्पणी :—वर्णी—ब्रह्मचारी। आह—उवाच, बोला। ब्रू धातु के प्र. पु. लट् का ए० व० है। यह वर्तमान काल की क्रिया है। इसको भूतकाल के अर्थ में न प्रयोग करना चाहिये। किन्तु कुछ टीकाकारों का कहना है कि 'अथ' के साथ 'आह' का प्रयोग हो सकता है। 'तदादौ च' (भोजसूत्रम्), इसी के बल पर "आह" को भूत काल के अर्थ में प्रयोग कर सकते हैं। वर्तमान काल के प्र० पु० सब वचनों में और म. पु. के ए० व० तथा द्विव० में ब्रू का "आह" हो जाता है। इसका सूत्र है "ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः"। पा० ३. ४. ४८। इस प्रकार ब्रू के दो रूप होंगे (केवल प्र० पु० के सब वचनों में और म. पु. के ए. व. तथा द्वि. व० में) आह आहतुः आहुः। आत्थ आहथुः ब्रूथ। साथ ही साथ ब्रवीति ब्रूतः ब्रुवन्ति ब्रवीषि ब्रूथः ब्रूथ। ब्रवीमि ब्रूवः ब्रूमः। महेश्वरः-(महा + ईश्वरः), महांश्चासौ ईश्वरः महेश्वरः, शिव। जब महत् शब्द किसी कर्मधारय या बहुव्रीहि का पूर्व पद होता है तो महत् को महा हो जाता है। विदितः—ज्ञातः, मालूम है (विद् + क्त) "मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च"; पा० ३. २. १८८ से क्त प्रत्यय लगा। यह वर्तमान काल के अर्थ में लगा है। विदितः का कर्ता "मनस्" है जो प्रकट नहीं है। ब्रह्मचारी ने कहा—हाँ, महादेव को हम जानते हैं। उसके कहने का अभिप्राय यह है कि महादेव वही हैं जिन्होंने कामदेव को जला दिया और पार्वती से ब्याह नहीं करना चाहते। एव—अपि, भी। तदर्थिनी—(तत् +

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अर्थ+इनि+ङीप्) अर्थ: अस्या: अस्तीति अर्थिनी, तस्य अर्थिनी इति तदर्थिनी (तदभिलाषिणी), उसको चाहने वाली। अमङ्गलाभ्यासरतिम्—न मङ्गलम् अमङ्गलम्, तस्य (अशुभस्य) अभ्यासे (निरन्तर सेवने) रति: यस्य स: अमङ्गलाभ्यासरति:, तम्, अशुभ वस्तुओं को सेवन करने वाला, अशुभ वस्तुओं से प्रेम करने वाला—जैसे चिता-भस्म, मुण्डमाल, सर्प आदि धारण करना। देखिये "आलेपो भसितम् विभूषितमहिर्वास: पितृणां वने, वेताला: परिचारका: प्रतिदिनम् वृत्तिश्च भिक्षामयी, इत्थम् यस्य शुभेतराणि चरितान्याख्यान्ति सर्वे जना:, तस्मिन्मौग्ध्यवशान्मतिस्तव रुचिं बध्नाति किं ब्रूमहे (पार्वती-परिणय)। अनुवृत्तिम्—अनुसरणम्, अनुमोदनम्; समर्थन करना। न उत्सहे—हिम्मत नहीं करता। सह्—बर्दाश्त करना। परन्तु उत् उपसर्ग के साथ इसका अर्थ है साहस करना। ब्रह्मचारी के कहने का तात्पर्य यह है कि जब एक बार शिव ने, जो अमङ्गल वस्तुओं का सेवन करते हैं, पार्वती का अपमान किया तो वह इस बात से सहमत नहीं है कि पार्वती फिर भी उसी से ब्याह करने की इच्छा करे।

वाच्य परिवर्तन :—अथ, वर्णिना (ऊचे)—(अहम्) महेश्वरम् विदितवान्, त्वया पुनरेव तदर्थिन्या वृत्यते, तम् च अमङ्गलाभ्यासरतिं विचिन्त्य (मया) तव अनुवृत्ति: कर्तुम् न उत्सह्यते ॥ ६५ ॥

अनुवाद :—तब ब्रह्मचारी बोला—महादेव को मैं जानता हूँ; तू फिर भी उसी के लिये इच्छा वाली है; (मैं) तो उसको अशुभ वस्तुओं से प्रेम करने वाला जान कर तुम्हारा अनुकरण करने (अर्थात् तुम्हारी तरह सोचने) का साहस नहीं कर सकता ॥६५॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

संस्कृत में भावार्थ :—पार्वत्याः वचनमाकर्ण्य स ब्रह्मचारी कथयति—'अहम् शिवम् सम्यग्जानामि, अन्येऽपि च तं जानन्ति। तस्य चिताभस्मकपालाद्यशुभवस्तुषु प्रीतिर्विद्यते। तथापि त्वम् तत्प्राप्त्यर्थं तपोमग्ना तिष्ठसीत्याश्चर्यम्। अहम शिवस्य याथार्थ्यम् विचार्य तव कार्यमनुमन्तुम् नोद्यतोऽस्मि ॥ ६५ ॥

अवस्तुनिर्बन्धपरे कथं नु ते
करोऽयमामुक्तविवाहकौतुकः।
करेण शंभोर्वलयीकृताहिना
सहिष्यते तत्प्रथमावलम्बनम् ॥ ६६ ॥

टीका :—अवस्त्विति अवस्तुनि तुच्छवस्तुनि निर्बन्धोऽभिनिवेशः परम् प्रधानम् यस्यास्तस्याः संबुद्धिः अवस्तुनिर्बन्धपरे पार्वति। आमुक्तविवाहकौतुकः आमुक्तमासञ्जितम् विवाहे यत्कौतुकम् हस्तसूत्रम् तद्यस्य सः ते अयम् करः। 'कौतुकम् मङ्गले हर्षे हस्तसूत्रे कुतूहले' इति शाश्वतः। वलयीकृताहिना भूषणीकृतसर्पेण शम्भोः महादेवस्य करेण करणभूतेन तत्प्रथमावलम्बनम् तदेव प्रथमम् तत्प्रथमम्। अपरिचितत्वादतिभयङ्करमिति भावः। तच्च तदवलम्बनम् ग्रहणम् चेति कथं नु सहिष्यते। न कथंचिदपि सहिष्यते इत्यर्थः। अग्रतो यद्भावि तद्दूरेऽवतिष्ठताम्। प्रथमम् करग्रह एव दुःसह इति भावः ॥ ६६ ॥

अन्वय :—(हे) अवस्तुनिर्बन्धपरे—आमुक्तविवाहकौतुकः अयम् ते करः शम्भोः वलयीकृताहिना करेण तत्प्रथमावलम्बनम् कथम् नु सहिष्यते ? ॥ ६६ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

टिप्पणी :—अवस्तुनिर्बन्धपरे—न वस्तु अवस्तु (तुच्छ वस्तु), तस्मिन् निर्बन्धः (आग्रहः) परम् (प्रधानम्) यस्याः सा अवस्तुनिर्बन्धपरा तस्याः सम्बोधने अवस्तुनिर्बन्धपरे—तुच्छ वस्तु को चाहने वाली। अवस्तु--तुच्छ पदार्थ--शिव। यहाँ पर अ अप्राशस्त्य के अर्थ में है। अप्राशस्त्य छः प्रकार का होता है "तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्वम् तदल्पता। अप्राशस्त्यम् विरोधश्च नञर्थाः षट् प्रकीर्तिताः"। निर्बन्ध--(किसी वस्तु के लिये) हठ। आमुक्तविवाहकौतुकः—आमुक्तम् (धारितम्) विवाहस्य कौतुकं मङ्गलसूत्रम् यस्मिन् स आमुक्तविवाहकौतुकः, जिसमें विवाह का मङ्गलसूत्र बँधा हो। "कौतुकं मङ्गले हर्षे हस्तसूत्रे कुतूहले।" इति शाश्वतः। विवाह तथा अन्य शुभ समय में पीले रंग से रगा हुआ धागा कलाई में बाँधा जाता है। शम्भोः—शिव के। वलयीकृताहिना—(वलय+च्वि+कृतः=वलयीकृतः), अवलयो वलयो यथा संपद्यते तथा कृतः वलयीकृतः (वलयरूपेण धृतः), वलयीकृतः अहिः (सर्पः) यस्मिन् स वलयीकृताहिः तेन वलयीकृताहिना--जिसमें साँप का कङ्कण हो; साँप का कङ्कण पहने हुए। शिव जी वासुकी नाग को कङ्कण के रूप में धारण करते हैं। वलय—कङ्कण। "आवापकः पारिहार्यः कटको वलयोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः। च्वि के साथ वलयीकृत किस प्रकार बना, इसके लिये श्लोक ६३ (मुकुलीकृत) की व्याख्या देखिये। तत्प्रथमावलम्बनम्—तदेव प्रथमम् तत्प्रथमम्, तत्प्रथमम् च तदवलम्बनम् च (तत् ग्रहणम्) इति तत्प्रथमावलम्बनम्—पहली बार पकड़ना। कथं नु सहिष्यते—कैसे सहन करेगा। अर्थात् नहीं सहन कर सकेगा। "तस्योद्वाहनकाले च हा हा कर्तुम् भविष्यति। फणि-कङ्कण-संयोगम् यदा ते कङ्कणम् भवेत्" शिवपुराणम्।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वाच्य परिवर्तन :—(हे) अवस्तुनिर्बन्धपरे, आमुक्तविवाहकौतुकेन अनेन ते करेण शम्भोः वलयीकृताहिना करेण तत्प्रथमावलम्बनम् कथम् नु सहिष्यते ॥६६॥

अनुवाद :—हे तुच्छ वस्तु के पीछे पड़ी हुई (पार्वती), विवाह के धागे (कलावे) से युक्त यह तेरा हाथ जिसमें साँप कड़े की तरह पहना हुआ है ऐसे शिव के हाथ से पहले-पहल पकड़ने को किस प्रकार सहन कर सकेगा ? ॥६६॥

संस्कृत में भावार्थ :—हे तुच्छपदार्थे आग्रहवति पार्वति । अशुभवस्तुधारी शिवः स्वहस्ते सर्पम् कङ्कणत्वेन धारयति, तस्मात् यदा स विवाहकाले मङ्गलसूत्रधारिणम् तव पाणिम् स्वकरेण ग्रहीष्यति तदा त्वम् तस्य करस्पर्शमसहमाना भीतात्वम् पाणिमपनेष्यसि येन पाणिग्रहणसंस्कारे एव विघ्नो भविता । एवम् 'प्रथमग्रास एव मक्षिकापातः' अन्यत्किमपि तु दूरे आस्ताम् ॥६६॥

त्वमेव तावत्परिचिन्तय स्वयं
कदाचिदेते यदि योगमर्हतः ।
वधूदुकूलं कलहंसलक्षणं
गजाजिनं शोणितबिन्दुवर्षि च ॥६७॥

टीका :—त्वमेवेति—हे गौरि । त्वम् एव स्वयम् आत्मना । तावत् इति मानार्थे । यावन्मात्रम् विचारणीयम् तावन्मात्रमित्यर्थः । इदमेवोदाहृतम् च गणव्याख्याने । परिचिन्तय । पर्यालोचय । किमिति कलहंसलक्षणम् कलहंसचिह्नम् । 'चिह्नम् लक्ष्म च लक्षणम्' इत्यमरः । बध्वा नवोढाया दुकूलम् वधूदुकूलम् । 'वधू स्नुषा नवोढा स्त्री' इति विश्वः । तथा शोणितबिन्दुवर्षि शोणितबिन्दून्वर्षतीति तथोक्तम् ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आर्द्रमित्यर्थः । गजाजिनम् च कृत्तिवासश्च । तत्पिनाकिन इत्याशयः । एते कदाचित् जात्वपि योगं संगतिम् अर्हतः यदि अर्हतः किम् । एतत्त्वमेव चिन्तयेति पूर्वेणान्वयः । पाणिग्रहणकाले वधू-वरयोर्वस्त्रान्त-ग्रन्थिः क्रियते । कृत्तिवाससा पाणिपीडने तु दुकूल-धारिण्यास्तव स कथम् संघटिष्यत इति भावः ॥६७॥

अन्वय :—(हे गौरि) त्वमेव स्वयम् तावत् परिचिन्तय (यत्) कलहंसलक्षणम् वधूदुकूलम् शोणितबिन्दुवर्षि गजाजिनम् च—एते कदाचिद् योगम् अर्हतः यदि ॥६७॥

टिप्पणी :—तावत्—तत् परिमाणमस्य इति तावत् (तत्+वतुप्)। यावदावश्यकम् तावत्—अच्छी तरह। पहले "आ सर्वनाम्नः" पा० ६.३.९१ से तत् को ता हो गया। कलहंसलक्षणम्—कलहंसः लक्षणं यस्य तत् कलहंसलक्षणम्, सुन्दर हंसों के चित्र से युक्त। "चिह्नम् लक्ष्म च लक्षणम्" इत्यमरः; अथवा कलहंसवत् लक्षणम् स्वरूपम् यस्य तत् कलहंलक्षणम्, जो सफेद हंस के समान हो। कलहंसों की एक जाति विशेष होती है। "कादम्बः कलहंसः स्यात्" इत्यमरः। वधू दुकूलम्—वध्वाः दुकूलम् (पट्टवस्त्रम्), नई विवाहिता बहू का रेशमी वस्त्र। वधू—नई विवाहिता स्त्री। "वधूः स्नुषा नवोढा स्त्री" इति विश्वः। दुकूलम्—रेशमी वस्त्र। शोणित-बिन्दुवर्षि—(वर्ष+णिनि) शोणितस्य बिन्दून् वर्षतीति शोणित-बिंदुवर्षि, खून की बूँदों को टपकाता हुआ। गजाजिनम्—गजस्य अजिनम् (चर्म) गजाजिनम्, हाथी की खाल। "अजिनम् कृत्तिः चर्म" इत्यमरः। पुराणों में ऐसी कथा प्रसिद्ध है कि गजासुर को मारने के बाद शिवजी उसकी खाल को ओढ़ कर नाचने लगे थे। कदाचित्—कस्मिन्नपि काले, किसी भी समय, जरा सा भी। योगम्—सङ्गतिम्, साथ। ब्रह्मचारी के कहने का भाव यह है कि पार्वती

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तथा शिव के वस्त्रों में जब इतना भेद है तो पार्वती को शिव के वास्ते तपस्या करना कहाँ तक ठीक है, अर्थात् ठीक नहीं है।

वाच्य परिवर्तन :--(हे गौरि), त्वया एव स्वयम तावत् परिचिन्त्यताम् (यत्) कलहंसलक्षणेन वधूदुकूलेन शोणितबिन्दुवर्षिणा गजाजिनेन च-एताभ्याम् कदाचित् योगः अर्ह्यते यदि ॥६७॥

अनुवाद :—(हे गौरि), तुम ही स्वयम् अच्छी तरह सोचो कि कहीं हंसों के चिह्नों से युक्त नव-विवाहिता बहू का रेशमी वस्त्र और रक्त से सनी हुई (महादेव की) हाथी की खाल—ये दोनों कभी एक साथ रहने योग्य हैं ॥६७॥

संस्कृत में भावार्थ :—हे पार्वति, मे कथनमेकतः कृत्वा त्वमेव स्वयम् विचारय यत् विवाहसंस्कारे ग्रन्थिबन्धनकाले ते महार्हस्य हंसचित्रयुक्तस्य क्षौमवस्त्रस्य शिवस्य च रक्तबिन्दून् क्षरता हस्तिचर्मणा सह संयोगः (ग्रन्थिबन्धनम् वा) कथम् भविष्यति। तव महार्हम् पट्टवस्त्रम् शिवस्य च हस्तिनश्चर्म। तयोः संयोग एव नार्हति युवयोर्वस्त्रेषु महान् भेदः इति तात्पर्यम् ॥६७॥

चतुष्कपुष्पप्रकरावकीर्णयोः
परोऽपि को नाम तवानुमन्यते।
अलक्तकाङ्कानि पदानि पादयो-
र्विकीर्णकेशासु परेतभूमिषु ॥६८॥

टीका :—चतुष्केति। चतुष्कपुष्पप्रकरावकीर्णयोः चतुष्के गृहविशेषे यः पुष्पप्रकरस्तत्रावकीर्णयोर्न्यस्तयोः कुसुमास्तृतदिव्यभवनभूसंचारोचितयोरित्यर्थः। तव पादयोः अलक्तकाङ्कानि लाक्षारञ्जितानि पदानि पादाकाराणि पादन्याससचिह्नानि। 'पदं शब्दे च वाक्ये

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

च व्यवसायापदेशयोः। पादतच्चिह्नयोः' इति विश्वः। विकीर्णाः विक्षिप्ताः केशा शवशिरोरुहाः यासु। तासु विकीर्णकेशासु। 'अत्र-स्थम् तत्र दृष्टम् च' इति वचनात् 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्' इति विकल्पान्न ङीप्। परेतभूमिषु प्रेतभूमिषु। श्मशानेष्वित्यर्थः। परः अपि शत्रुरपि कः नाम अनुमन्यते। न कोऽपीत्यर्थः। नामेति कुत्सायाम्। पिनाकपाणिपाणिग्रहणे तस्य परेतभूसंचारित्वेन साहचर्यात्तवापि तत्र संचारोऽवश्यम्भावीति भावः ॥६८॥

अन्वय :—परः अपि कः नाम चतुष्कपुष्पप्रकारावकीर्णयोः तव पादयोः अलक्तकाङ्कानि पदानि विकीर्णकेशासु परेतभूमिषु अनुमन्यते ? ॥६८॥

टिप्पणी :—परः—शत्रुः, दुश्मन। 'अभिघातिपराराति प्रत्यर्थि-परिपन्थिनः' इत्यमरः। नाम—यह शब्द कुत्सा अथवा निन्दा के भाव में आता है। चतुष्कपुष्पप्रकरावकीर्णयोः—चत्वारः अवयवा यस्य तत् चतुष्कम् (चतुर+कन्)। चौकोर आँगन या बैठक। "संख्यायाः संज्ञासंघसूत्राध्ययनेषु" पा० ५. १. ५८ से कन् प्रत्यय लगाया गया। प्रकरः—(कृ+अप्), समूह। अवकीर्ण—(अव +कृ+क्त), बिखरा हुआ; रक्खा हुआ। चतुष्के गृहविशेषे पुष्पाणां प्रकरे अवकीर्णयोः—यह पादयोः का विशेषण है। चौकोर आँगन में बिछाए हुए फूलों के ऊपर रक्खा हुआ (पैर) अर्थात् वह पैर जो चौकौर आँगन में बिखरें हुए फूलों के ऊपर रक्खे जाते हैं। अलक्तकाङ्कानि—अलक्तकः लाक्षारसः (अङ्कः चिह्नम्) येषु तानि। महावर लगे हुए पैर। स्त्रियाँ लाल रंग से पैरों को रँगती हैं जिसे महावर कहते हैं। पदानि—पदचिह्नानि—पैर के चिह्न। पदं शब्दे च वाक्ये च व्यवसायापदेशयोः। "पादतच्चिह्नयोः"। इति विश्वः। विकीर्णकेशासु—(वि+कृ+क्त), विकीर्णाः केशाः यासु ताः विकीर्णकेशाः तासु, जिस पर बाल बिखरे हैं। यह परेत-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भूमिषु का विशेषण है। परेत:—(परा+इ+क्त), परं लोकम् इत: गत: परेत: अथवा परा (दूरं) इत: इति परेत:—मुर्दा व्यक्ति। प्रेत—(प्र+इ+क्त)। परेतानां भूमिषु परेतभूमिषु—श्मशान घाटों में। क: अनुमन्यते—कौन पसन्द करेगा? कहा जाता है कि शंकरजी श्मशान घाट में रहते हैं। "वास: पितृणां वने"। अत: यदि पार्वती का ब्याह उनसे हो जायगा तो पार्वती को भी श्मशान भूमि पर चलना होगा। और फूलों के ऊपर चलने में और श्मशान भूमि पर चलने में बड़ा अन्तर है।

वाच्य परिवतन :—परेण अपि केन नाम चतुष्कपुष्पप्रकराव-कीर्णयो: तव पादयो: अलक्तकाङ्क्षानि पदानि विकीर्णकेशासु परेत-भूमिषु अनुमन्यते? ॥६८॥

अनुवाद :—चतुष्कोण आँगन अथवा कमरों में (बिखरे) फूलों पर पड़ने वाले तुम्हारे पैरों के लाक्षारस के चिह्नों को बनाने वाले पदचिह्नों के (मुर्दों के) बालों से युक्त श्मशानभूमि में पड़ने की अनुमति क्या कोई शत्रु भी दे सकता है? ॥६८॥

संस्कृत में भावार्थ :—हे गौरि त्वं स्वपितुर्गृहे पुष्पास्तृतेषु प्रांगणादिषु भागेषु चलसि शिवश्च श्मशानवासी। तस्माद्विवाहानन्तरं तस्य वासस्थानं गत्वा लाक्षारसयुक्ताभ्यां पादाभ्यां मृतपुरुषाणां केशादिभि: संछन्नासु श्मशानभूमिषु ते संचलनम् कश्चिच्छत्रुरपि नानुज्ञास्यति, मित्रस्य तु का कथा? न त्वं श्मशानवासयोग्या; तत्र ते वास: शत्रूणामपि दु:खकारक:॥ ६८॥

अयुक्तरूपं किमत: परं वद
त्रिनेत्रवक्ष:-सुलभं तवापि यत्।
स्तनद्वयेऽस्मिन्हरिचन्दनास्पदे
पदं चिताभस्मरज: करिष्यति ॥६९॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

टीका :—अयुक्तेति । त्रिनेत्रवक्षः त्र्यम्बकालिङ्गनमित्यर्थः । तव तत्सम्बन्धितया सुलभम् अपि सुप्रापं च । भवतीति शेषः । तवेति शेषे षष्ठी । 'न लोकाव्यय—' इत्यादिना कृद्योगलक्षणषष्ठ्या निषेधात् । अतः परम् अस्मात्त्रिनेत्रवक्षोलाभादन्यद् अयुक्तरूपम् अत्यन्तायुक्तम् किं वद । किंचिदित्यर्थः । 'प्रशंसायां रूपप्' इति रूपप्प्रत्ययः । कुतः । यत् यस्मात्कारणात् हरिचन्दनास्पदे हरिचन्दनस्यास्पदे स्थानभूते अस्मिन् स्तनद्वये चिताभस्मरजः चिताभस्म श्मशानभस्म तदेव रजश्चूर्णम् । कर्तृ । पदं करिष्यति पदं निधास्यति । भर्तुर्भवस्य भस्माङ्गरागादिति भावः ॥ ६६ ॥

अन्वय :—(त्वमेव) वद, अतः परम् अयुक्तरूपं किं यत् त्रिनेत्रवक्षः सुलभं चिताभस्मरजः तव अपि हरिचन्दनास्पदे अस्मिन् स्तनद्वये पदं करिष्यति ? ॥ ६६ ॥

टिप्पणी :—अतः परम्—इससे ज्यादा । अयुक्तरूपम्—अतिशयेन युक्तं युक्तरूपम् तत्र भवति इति अयुक्तरूपम् अत्यन्तमनुचितम् अथवा न युक्तम् अयुक्तम् अप्रशस्तम् । अयुक्तरूपम्—अत्यन्त अयोग्य । "प्रशंसायाम् रूपप्" पा० ५. ३. ६६ से प्रशंसा अर्थ में रूपप् प्रत्यय जोड़ा गया । यहाँ पर अत्यन्त अनुपयुक्तता का बोध कराया जा रहा है । त्रिनेत्रवक्षःसुलभम्—त्रीणि नेत्राणि यस्य सः त्रिनेत्रः (शिवः), तस्य वक्षः त्रिनेत्रवक्षः तत्र सुलभम् त्रिनेत्रवक्षःसुलभम्, जो शंकर जी के वक्षःस्थल पर आसानी से प्राप्त (सुलभ) है । अथवा जो शंकर जी की छाती पर आसानी से मिल जाय । यह चिताभस्मरजः का विशेषण है । त्रिनेत्र के न का 'ण' नहीं हुआ क्योंकि इसका पाठ क्षुभ्नादि गण में है । "क्षुभ्नादिषु च" पा० ८. ४. ३६ से 'ण' नहीं हुआ । मल्लिनाथ ने इसका अर्थ दूसरे ढंग से किया है । उनका कहना है—त्रिनेत्रवक्षः तव अपि सुलभम् अतः परम् अयुक्तरूपम्

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

किम्। इससे बढ़कर क्या बुरी बात हो सकती है कि तुम चाहती हो कि त्रिनेत्र का वक्षःस्थल तुमको सुगम हो। चिताभस्मरजः—चितायाः भस्म एव रजः, चिता की राख (जिसको शंकरजी अपनी छाती में लगाते हैं)। हरिचन्दनास्पदे—हरेः विष्णोः इन्द्रस्य वा चन्दनम् हरिचन्दनम्, तस्य आस्पदम्, तस्मिन् हरिचन्दनास्पदे—चन्दन लगाने का स्थान। "हरिचन्दनमस्त्री स्यात् त्रिदशानां महीरुहे। नपुंसकम् तु गोशीर्षे ज्योत्स्ना कुंकुमयोरपि" इति मेदिनी। स्तनद्वये—स्तनयोः (कुचयोः) द्वयं (युगलम्) स्तनद्वयम् तस्मिन्, तुम्हारी छाती पर। पदम्—स्थान, जगह। मल्लिनाथ के अनुसार श्लोक के पिछले आधे का अर्थ इस प्रकार होगा "यत् हरिचन्दनास्पदे अस्मिन् स्तनद्वये चिताभस्मरजः पदं करिष्यति"—कि चन्दन लगाये जाने वाले तुम्हारे स्तनों पर चिता की भस्म लगाई जायगी।

वाच्य परिवर्तन :—(त्वयैव) उद्यताम्, अतः परम् अयुक्तरूपं किम् यत् त्रिनेत्रवक्षस्सुलभेन चिताभस्मरजसा तव अपि हरिचन्दनास्पदे अस्मिन् स्तनद्वये पदं करिष्यते॥ ६६॥

अनुवाद :—(तुम ही) बताओ, इससे बढ़कर और अनुचित क्या हो सकता है कि तीन नेत्रों वाले (शिवजी) की छाती पर लगी हुई चिता की राख तुम्हारे भी इन दोनों स्तनों पर, जो चन्दन के स्थान हैं, जगह बना लेगी॥ ६६॥

संस्कृत में भावार्थ :—हे पार्वति ! महादेवः स्वशरीरे चितायाः भस्म लिम्पति। तस्मात् समागमकाशे यदा सत्वामालिंगिष्यति तदा चन्दनलेपयोग्यं ते वक्षो भस्मयुक्तं भविष्यति, यद्धि नितरामनुचितं प्रतिभाति॥ ६६॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इयं च तेऽन्या पुरतो विडम्बना
यदूढया वारणराजहार्यया ।
विलोक्य वृद्धोक्षमधिष्ठितं त्वया
महाजनः स्मेरमुखो भविष्यति ॥ ७० ॥

टीका :—इयमिति । इयम् च ते तव पुरतः आदावेव अन्या विडम्बना । परिहास इत्यर्थः । का सेत्यत्राह—ऊढया परिणीतया । वहेः कर्मणि क्तः । वारणराजहार्यया त्वया अधिष्ठितम् आरूढं वृद्धम् उक्षाणम् वृद्धोक्षम् । 'अचतुर'—इत्यादिना निपातः । विलोक्य महाजनः साधुजनः स्मेरमुखः स्मितमुखः भविष्यति उपहसिष्यति यत् । इयमिति पूर्वेण सम्बन्धः । स्मेरेति 'नमिकम्पिस्म्यज०'—इत्यादिना रप्रत्ययः ॥ ७० ॥

अन्वय :—(किम्) च पुरतः इयम् अन्या ते विडम्बना यत् ऊढया वारणराजहार्यया त्वया अधिष्ठितम् वृद्धोक्षं विलोक्य महाजनः स्मेरमुखः भविष्यति ॥ ७० ॥

टिप्पणी :—पुरतः—सर्वस्मात् पूर्वमेव, सबसे पहले, पेश्तर इसके कि तुम शिव के यहाँ जाओ और उनके साथ रहो । पुर में तस् लगाने से पुरतः बना । यह अव्यय है । विडम्बना—(वि+डम्ब+युच्+आ), हास्य-कारणम्, मजाक; हँसी की बात । ऊढया—(वह+क्त+आ=ऊढा) कृतविवाहया—ब्याही गई हुई तुमसे । त्वया का विशेषण है । वारण-राजहार्यया—वारणानाम् हस्तिनाम् राजा वारणराजः, तेन हर्तुम् योग्या नेतुम् योग्या वारणराजहार्या तया—हाथियों के राजा से ले जाई जाने योग्य । वह राजकुमारी थी, अतः उनका हाथी ही पर चलना उचित था । वारणराज में "राजाहःसखिभ्यष्टच्" से टच् प्रत्यय जोड़ा गया । हार्यया—हार्या का तृतीया

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

का ए. व. है। हृ + रायत् + टाप्। अधिष्ठितम्—बैठा हुआ (अधि + स्था + क्त)। वृद्धोक्षम्—वृद्धम् उक्षम् वृद्धोक्षम् या वृद्धश्चासौ उक्षा (वृषभः), वृद्धोक्षः तम् वृद्धोक्षम्, बूढ़ा बैल। कर्मधारय समास के अन्त में उक्षन् का उक्ष हो जाता है। "अचतुर...जाते महोक्षवृद्धोक्षो-पशुनगोष्ठाश्वाः" पा० ५.४ ७७" से 'अ' जोड़कर उक्षन् का उक्ष हो गया। महाजनः—महांश्चासौ जनः महाजनः (सभ्यलोकः), सभ्य पुरुष। स्मेरमुखः—स्मयते इति स्मेरः, मुस्कुराता हुआ। "नमिकम्पि-स्म्यजसकमहिंसदीपो रः" पा० ३.२.१६७ से स्मि धातु में र जुड़ गया। स्मेरं (मन्दहासयुक्तम्) मुखं यस्य सः स्मेरमुखः—मुस्कुराता हुआ मुँह।

वाच्य परिवर्तन :—(किम्) च पुरतः अनया अन्यया ते विडम्बनया (भूयते) यद् ऊढया वारणराजहार्यया त्वया अधिष्ठितम् वृद्धोक्षम् विलोक्य महाजनेन स्मेरमुखेन भविष्यते ॥ ७० ॥

अनुवाद :—सबसे पहिले यह तुम्हारी और दूसरी हँसी होगी कि श्रेष्ठ हाथी पर चढ़ने योग्य, विवाहिता तुमको (शिव जी के) बुड्ढे बैल पर बैठी देखकर बड़े आदमी मुस्कराने लग जावेंगे ॥७०॥

संस्कृत में भावार्थ :—हे पार्वति! शिवस्य वाहनम् वृषभोऽस्ति। तस्माद्विवाहानन्तरम् यदा हस्तिराजवहनयोग्या त्वं तस्य वृद्धम् वृषमारुह्य तत्स्थानम् गमिष्यसि तदा सर्वेऽपि प्रेक्षकास्त्वाम् दृष्ट्वा हसिष्यन्ति ॥ ७० ॥

द्वयं गतं सम्प्रति शोचनीयताम्
समागमप्रार्थनया पिनाकिनः।
कला च सा कान्तिमती कलावत-
स्त्वमस्य लोकस्य च नेत्रकौमुदी ॥७१॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

टीका :- द्वयमिति। पिनाकिनः ईश्वरस्य समागमप्रार्थनया प्राप्तिकामनया क्रियमाणयेति शेषः। सम्प्रति द्वयं शोचनीयताम् शोच्यत्वं गतम्। किं तदाह—सा प्रागेव हरशिरोगता। अत्र सेति प्रसिद्धार्थत्वान्न यच्छब्दापेक्षा। तदुक्तं काव्यप्रकाशे—'प्रक्रान्तप्रसिद्धा-नुभूतार्थविषयस्तच्छब्दो यदुपादानम् नापेक्षते।' इति। कान्तिमती। नित्ययोगे मतुप्। कलावतः चन्द्रस्य कला षोडशो भागः च। अस्य लोकस्य नेत्रकौमुदी। नेत्रानन्दिनीत्यर्थः। त्वं च। कान्तिमतीत्वनेत्र-कौमुदीत्वविशेषणयोरुभयत्राप्यन्वयः। प्रागेकैव शोच्या। संप्रति तु त्वमप्यपरेति द्वयं शोच्यमिति पिण्डितार्थः। शोच्यत्वं च निकृष्टा-श्रयणादिति भावः॥ ७१॥

अन्वय :—पिनाकिनः समागमप्रार्थनया सम्प्रति कलावतः सा कान्तिमती कला च अस्य लोकस्य नेत्रकौमुदी त्वं च द्वयं शोच-नीयताम् गतम्॥ ७१॥

टिप्पणी :- पिनाकिनः—पिनाक को धारण करने वाले (शिव) का। समागमप्रार्थनया—समागमस्य सहवासस्य प्रार्थना समागमप्रार्थना तया, समागम की इच्छा से; साथ रहने की प्रर्थना से। सम्प्रति—अधुना, इस समय। कलावतः--(कला+मतुप्= कलावत्), प्रशस्ताः प्रचुराः वा कलाः सन्ति अस्य इति कलावान् चन्द्रः; तस्य, चन्द्रमा की। मतुप् के 'म' को 'व' हो गया। इसका सूत्र है "मादुपधायाश्च मतोर्वोऽवयवादिभ्यः" पा० ८.२.६—सा —प्रसिद्धा--वह; विख्यात। जिसे शिव अपने मस्तक पर धारण करते हैं। कान्तिमती-(कान्ति+मतुप्+ङीप्), कान्तिः द्युतिः अस्याः अस्तीति कान्तिमती, चमकने वाली; कान्तियुक्त। कला का विशेषण है। त्वं का भी विशेषण है। नेत्रकौमुदी—चन्द्रप्रभा, चन्द्रमा की रोशनी। "चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ना" इत्यमरः। इसका

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयोग उस वस्तु के लिये भी होता है जो चन्द्रमा के प्रकाश के सामने सुहावनी हो। नेत्रकौमुदी—नेत्रयोः कौमुदी—लोगों के नेत्रों के वास्ते कौमुदी के समान। सुन्दरी स्त्री को नेत्रकौमुदी कहते हैं क्योंकि वह नेत्रों को सुखप्रद होती है। देखिये "त्वं कौमुदी नयनयोः अमृतम् त्वमङ्गे" उत्तररामचरितम् ३. २६। यह कला और त्वम् का विशेषण है। द्वयं—दो वस्तुयें। शोचनीयताम्—(शुच् + अनीय + ता), शोकविषयताम्—शोकावस्था को। गतम्—प्राप्तम्—प्राप्त हो गये हैं। काव्य-प्रकाश में इस श्लोक में अक्रमत्व दोष दिखाया गया है, क्योंकि च लोकस्य के बाद रक्खा गया है, न कि त्वं के बाद। च को त्वं के बाद रखना चाहिये था, क्योंकि कला के साथ त्वं का संबन्ध है, न कि लोक का। ब्रह्मचारी के कहने का तात्पर्य यह है कि जो शिव मुण्डमाल धारण करते हैं वे पार्वती तथा चंद्रिका जैसी सुन्दर वस्तुयें प्राप्त करने योग्य नहीं हैं।

वाच्य परिवर्तन :—पिनाकिनः समागमप्रार्थनया सम्प्रति कलावतः तया कान्तिमत्या कलया अस्य लोकस्य नेत्रकौमुद्या त्वया च (इति) द्वयेन शोचनीयताम् गतेन (अभावि) ॥ ७१ ॥

अनुवाद :—महादेव के साथ रहने की इच्छा से अब चन्द्रमा की वह चमकती हुई कला और संसार के नेत्रों की चंद्रिका तू दोनों ही शोचनीय हो गयीं ॥ ७१ ॥

संस्कृत में भावार्थ :—हे गौरि ! मृतमुण्डधारी महादेवस्तु तादृशोऽमाङ्गलिको यत् शुभमपि वस्तु तत्संसर्गेण शोकविषयताम् याति। तथाहि—पूर्वस्मिन् काले तु तस्य मस्तके वासाच्चन्द्रमसः कला शोचनीयाऽभूत्, इदानीञ्च ज्योत्स्नेव सर्वजगतः नेत्राणामानन्दकारिणी त्वम् तत्सहवासेच्छामकुर्वन्ती शोचनीया भविष्यसि किमतः परम् दुःखकरम् ? ॥ ७१ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वपुर्विरूपाक्षमलक्ष्यजन्मता
दिगम्बरत्वेन निवेदितं वसु ।
वरेषु यद् बालमृगाक्षि मृग्यते
तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने ॥ ७२ ॥

टीका :—कन्या मृगयते रूपम् माता वित्तम् पिता श्रुतम् । बान्धवाः कुलमिच्छन्ति मिष्टान्नमितरे जनाः । इति लोकानामाभाणकम् । तत्र किञ्चिदपि नास्तीत्याह—वपुरिति । वपुः तावदस्य विरूपाणि विकृतरूपाण्यक्षीणि नेत्राणि यस्य तद् विरूपाक्षम् । 'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्षच्' इति षच् प्रत्ययः । वैरूप्यम् च त्रिनेत्रत्वादिति क्षीरस्वामी । अतो न सौन्दर्यवार्त्तापीत्यर्थः । अलक्ष्यमज्ञातम् जन्म यस्य तस्य भावस्तत्ता । कुलमपि न ज्ञायते इत्यर्थः । 'अलक्षिता जनिः' इति पाठे जनिरुत्पत्तिरलक्षिता न ज्ञाता । 'जनिरुत्पत्तिरुद्भवः' इत्यमरः । वसु वित्तम् दिगम्बरत्वेन एव निवेदितम् । नास्तीति ज्ञापितमित्यर्थः । यदि वित्तम् भवति तदा कथम् दिगम्बरो भवति । अतो ज्ञेयम् निर्धनोऽयमिति । किम् बहुना । हे बालमृगाक्षि पार्वति वरेषु 'बोढृषु । 'वरौ जामातृवोढारौ' इति विश्वः । यत् रूपवित्तादिकम् मृग्यते कन्यातद्बन्धुभिरन्विष्यते तत् त्रिलोचने त्र्यम्बके व्यस्तम् एकम् अपि । समस्तम् मा भूदिति भावः । अस्ति किम् नास्त्येयेत्यर्थः ॥ ७२ ॥

अनुवाद :—(अस्य) वपुः विरूपाक्षम्, अलक्ष्यजन्मता, वसु दिगम्बरत्वेन निवेदितम् । हे बालमृगाक्षि ! यद् वरेषु मृग्यते तत् त्रिलोचने व्यस्तम् अपि अस्ति किम् ? ॥ ७२ ॥

टिप्पणी :—वपुः—शरीरम्—शरीर । विरूपाक्षम्—(विरूप+ अक्षि+षच्), विरूपम् (विकृतम्) अक्षि नेत्रम् यस्य यस्मिन् वा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तद् विरूपाक्षम्—विकृत आँख वाला। अथवा विरूपाणि अक्षीणि यस्मिन्, जिसमें विषम नेत्र हों। शिव जी के तीन आँखें हैं। इसी से उनको विरूपाक्ष कहते हैं। अक्षि को अक्ष हो गया। इ निकाल कर अ जोड़ देने से अक्ष होता है। बहुव्रीहि समास के अन्त में ऐसा किया जाता है। इसके लिये सूत्र है—"बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्" पा० ५.४१.१३. अलक्ष्यजन्मता—अलक्ष्यम् जन्म यस्य सः अलक्ष्यजन्मा तस्य भावः अलक्ष्यजन्मता। अज्ञातजन्म। वसु—धनम्, धन। "रत्ने धने वसु" इत्यमरः। वसु वसुनी वसूनि इत्यादि वस्तु शब्द के समान रूप चलेगा। दिगम्बरत्वेन—दिश एव अम्बराणि (वस्त्राणि) यस्य सः दिगम्बरः, तस्य भावः दिगम्बरत्वम्, तेन—दिशायें ही जिनके वस्त्र हैं। अर्थात् वे नंगे रहते हैं। निवेदितम्—विज्ञापितम्—सूचित होता है। बताया जाता है। जिसके वस्त्र भी न हो वह अत्यन्त गरीब है। बालमृगाक्षि - (बाल +मृग+अक्षि+षच् + ङीप्), बालश्चासौ मृगः बालमृगः बालमृगस्य अक्षिणी इव अक्षिणी यस्याः सा बालमृगाक्षी, तत्सम्बोधने हे बालमृगाक्षि, बालमृग के नेत्रों के समान नेत्रोंवाली। यत्—जो (जो गुण)। "कन्या मृगयते रूपम् माता वित्तं पिता श्रुतम्। बान्धवाः कुलमिच्छन्ति मिष्टान्नमितरे जनाः"। वरेषु—व्रियन्ते इति वराः (वृ+अप्) तेषु—वरों में; वर के संबन्ध में। मृग्यते—खोजा जाता है। मृग्—खोजना। उसी का यह कर्मवाच्य लट् है। त्रिलोचने—त्रीणि लोचनानि यस्य सः त्रिलोचनः तस्मिन् त्रिलोचने—तीन नेत्रों वाले शङ्कर में। व्यस्तम्—(वि+अस्+क्त), एकैकम्, एक-एक करके। यह समस्तम् का उलटा है। ब्रह्मचारी के कहने का मतलब यह है कि वर में जो गुण चाहियें वे गुण एक-एक करके भी शिव में नहीं हैं, सब गुणों की तो बात ही दूर है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वाच्य परिवर्तन :—(अस्य) वपुषा विरूपाक्षेण (भूयते)। अलक्ष्यजन्मतया (भूयते), वसु दिगम्बरत्वं निवेदितवत्; (हे) बालमृगाक्षि, यत् (जनाः) वरेषु मृगयन्ते तेन त्रिलोचने व्यस्तेन अपि भूयते किम् ? ॥ ७२ ॥

अनुवाद :—(इस महादेव का) शरीर विकृत आँख वाला है, जन्म अज्ञात है, धन उनकी नग्नता बताती है; (हे) मृगशावक के समान नेत्रों वाली, जो बातें वरों में खोजी जाती हैं, क्या उनमें से एक भी तीन आँखों वाले में है ? ॥ ७२ ॥

संस्कृत में भावार्थ :—हे मृगशावकनयने पार्वति ! सौन्दर्य, धनं, विद्या, कुलञ्चेति चत्वारि वस्तूनि परीक्ष्य कन्यार्थं वराः स्वीक्रियन्ते। परं महादेवे त्वेतेषु एकमपि वस्तु नास्ति, चतुर्णां तु का कथा ?। यतस्तस्य शरीरं पिंगलनेत्रयुक्तम् नेत्रत्रययुक्तम् चास्ति। तस्मान्न स सुन्दरः, यतस्तस्योत्पत्तिविषये न किमपि ज्ञायते तस्मात् स कुलीन इति कथयितुम् न शक्यते। यतश्च स नग्नो विवस्त्रो वास्ति तस्मात्स निर्धन इति विज्ञायते। शिवो न केनापि प्रकारेण ते योग्य इति तात्पर्यम् ॥ ७२ ॥

निवर्तयास्मादसदीप्सितान्मनः
क्व तद्विधस्त्वं क्व च पुण्यलक्षणा।
अपेक्ष्यते साधुजनेन वैदिकी
श्मशानशूलस्य न यूपसत्क्रिया ॥ ७३ ॥

टीका :—निवर्तयेति। अस्मात् असदीप्सितात् अनिष्टमनोरथात् मनः निवर्तय निवारय। तद्विधः स पूर्वोक्ता विधा प्रकार यस्य तथोक्तः। अमङ्गलशील इत्यर्थः। क्व पुण्यलक्षणा प्रशस्तभाग्यचिह्ना

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

त्वं च क्व। महदन्तरमित्यर्थः। अतो न तवायमर्ह इत्यर्थः। तथा हि।

साधुजनेन। 'साधुर्वार्धुषिके चारौ सज्जने चाभिधेयवत्' इति विश्वः। श्मशानशूलस्य श्मशानभूमिनिखातस्य मध्यशङ्कोः वैदिकी वेदोक्ता। यूपो नाम पशुबन्धनसाधनभूतः संस्कृतदारुविशेषस्तस्य सत्क्रिया प्रोक्षणाभ्युक्षणादिसंस्कारः यूपसत्क्रिया न अपेक्ष्यते नेष्यते। यथा श्मशानशूले यूपसत्क्रिया न क्रियते तथा त्वमपि तस्मै न घटस इति तात्पर्यार्थः ॥ ७३ ॥

अन्वय :—(हे गौरि), अस्माद् असदीप्सिताद् मनः निवर्तय, तद्विधः क्व ? पुण्यलक्षणा त्वम् च क्व ? साधुजनेन श्मशानशूलस्य वैदिकी यूपसत्क्रिया न अपेक्ष्यते ॥ ७३ ॥

टिप्पणी :—असदीप्सितात्—ईप्सितात् (आप्+सन्+क्त), मनोरथात्, इच्छा से। न सत् असत् असच्च तदीप्सितम् तस्मात्, बुरी इच्छा से। (शिव को ब्याहने की बुरी इच्छा)। "वारणार्थानामीप्सितः" पा० १. २४. २७ से पञ्चमी हुई। जिस वस्तु से किसी को मना किया जाता है उसमें पञ्चमी होती है। तद्विधः—सा विधा (प्रकारः) यस्य स तद्विधः, उस प्रकार का; जैसा उपर्युक्त श्लोकों में वर्णन किया गया है। क्व-क्व - इन अव्ययों का प्रयोग यह बताने के लिये किया गया है कि दोनों में बड़ा भेद है। अर्थात् शिव के रूप में तथा पार्वती की सुन्दरता में बड़ा भेद है। पुण्यलक्षणा—पुण्यानि शुभानि लक्षणानि चिह्नानि यस्याः सा, शुभ लक्षणों वाली। (दृष्टान्त) उदाहरण द्वारा जो बात पहली दो पंक्तियों में कही गई है उसी का समर्थन किया जा रहा है। साधुजनेन—साधुश्चासौ जनश्च तेन, साधुजनेन (पण्डितजनेन), विद्वानों द्वारा अच्छे लोगों द्वारा। श्मशानशूलस्य—श्मशाने श्मशानस्य वा शूलम् (शङ्कुः)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

श्मशान-शूलम् तस्य. श्मशान में गाड़ा जाने वाला खूँटा। वैदिकी—(वेद+ठञ्+ङीप्), वेदे भवा वैदिकी (वेदोक्ता), वेदों में कही गई विधि के अनुसार। "अध्यात्यादिभ्यश्च" से ठञ् प्रत्यय हुआ। यूपसत्क्रिया—यूपः—यज्ञ का खम्भा जिसमें बलि-पशु बाँधा जाता है। सत्क्रिया—संस्कारः, एक प्रकार का संस्कार। यूपस्य सत्क्रिया यूपसत्क्रिया अथवा यूपोचिता सत्क्रिया इति यूपसत्क्रिया, यज्ञस्तम्भ संबंधी विधि। न अपेक्ष्यते—न इष्यते, नहीं जरूरत पड़ती; नहीं चाहिये। खूँटा अशुभ कार्य के लिये प्रयुक्त होता है और यज्ञ-स्तम्भ शुभ कार्य के वास्ते प्रयुक्त होता है। यज्ञ-स्तम्भ के वास्ते विहित विधि खूँटे के वास्ते कैसे प्रयुक्त की जा सकती है? इसी प्रकार पार्वती का तथा महादेव का संबंध भी अनुचित है।

वाच्य परिवर्तन :—(हे गौरि,) अस्माद् असदीप्सिताद् (त्वया) मनः निवर्त्यताम्, तद्विधेन क्व (भूयते), पुण्यलक्षणया त्वया च क्व (भूयते)? साधुजनः श्मशानशूलस्य वैदिकीम् यूपसत्क्रियाम् न अपेक्षते ॥ ७३ ॥

अनुवाद :—(हे पार्वति) इस बुरी इच्छा से मन हटा लो; इस प्रकार का वह कहाँ और शुभ चिह्नों वाली तुम कहाँ? श्रेष्ठ पुरुष श्मशान की शूली का वेदों में बताया हुआ यज्ञस्तम्भ सम्बन्धी संस्कार नहीं करते ॥७३॥

संस्कृत में भावार्थ :—हे पार्वति! चिताभस्मकपालाद्यशुभवस्तुषु प्रीतिकारिणः शिवस्य शुभचिह्नान्वितायाः तव च महदन्तरम्, तस्माच्छिवप्राप्तिरूपानुचिता कामना त्वया त्याज्या। यथा हि पण्डिताः श्मशानस्थितस्य शंकोः यूपसम्बन्धिनम् वेदोक्तम् संस्कारम् न कुर्वन्ति तथैव त्वयाप्यमाङ्गलिकः स माङ्गलिक इव न कमनीयः ॥ ७३ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इति द्विजातौ प्रतिकूलवादिनि
प्रवेपमानाधरलक्ष्यकोपया ।
विकुञ्चितभ्रूलतमाहिते तया
विलोचने तिर्यगुपान्तलोहिते ॥७४॥

टीका :—इतीति । इति एवं प्रकारेण द्विजातौ द्विजे प्रतिकूलवादिनि सति । प्रवेपमानाधरलक्ष्यकोपया प्रवेपमानेन चञ्चलेनाधरोष्ठेन लक्ष्यः अनुमेयः कोपः क्रोधो यस्यास्तथोक्तया तया पार्वत्या उपान्तलोहिते प्रान्तरक्ते विलोचने विकुञ्चितभ्रूलतम् विकुञ्चिते कुटिलिते भ्रूलते यस्मिंस्तत्तथा । सभ्रूभङ्गमित्यर्थः । तिर्यक् साचि आहिते निहिते । अनादरात्तिर्यगैक्ष्यतेत्यर्थः ॥७४॥

अन्वय :– द्विजातौ इति प्रतिकूलवादिनि (सति) प्रवेपमानाधरलक्ष्यकोपया तया उपान्तलोहिते विलोचने विकुञ्चितभ्रूलतम् तिर्यग् आहिते ॥ ७४ ॥

टिप्पणी :—द्विजातौ द्वे जाती (जन्मनी) यस्य सः द्विजातिः, तस्मिन् द्विजातौ, ब्राह्मण (के)। प्रतिकूलवादिनि—प्रतीपम् कूलात् प्रतिकूलम्, धारा के विरुद्ध। यहाँ इसका अर्थ है इच्छा के विरुद्ध। प्रतिकूलम् वदतीति प्रतिकूलवादी (वद् + णिनिः) तस्मिन्, इच्छा के विरुद्ध कहने पर । पार्वती अपने प्रियतम की निन्दा को सुनने के लिये तैयार न थीं । प्रवेपमानाधरलक्ष्यकोपया—(प्र+वेप्+शानच्), प्रवेपमानेन (कम्पमानेन) अधरेण (अधरोष्ठेन) लक्ष्यः (अनुमेयः) कोपो यस्याः सा प्रवेपमानाधरलक्ष्यकोपा तया, जिसका क्रोध हिलते हुए नीचे के ओठ से प्रकट हो रहा था। जब क्रोध में आदमी कुछ कहना चाहता है तो नीचे का ओठ काँपने लगता

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

है । उपान्तलोहिते—अन्तस्य समीपम् उपान्तम्, उपान्तयोः (प्रांत-भागयोः) लोहिते (रक्ते) उपान्तलोहिते, कोने पर जो लाल हों । यह विलोचने का विशेषण है । विकुञ्चितभ्रूलतम्—विकुञ्चिता (वि+कुञ्च+क्त) कुटिलतां नीता । भ्रूलता भ्रूरेव लता । विकुञ्चिता भ्रूलता यस्मिन् कर्मणि तत् विकुञ्चितभ्रूलतम्, भ्रूलता को (भौंवों को) टेढ़ी कर । तिर्यक—तिरस्+अञ्च+क्विन्), तिरछा, अगल बगल । "तिरसस्तिर्यलोपे" पा० ६.३.९४ से तिरस् का तिरि हो गया । आहिते—(आ+धा+क्त) कृते; प्रेरिते, डाली गई (तिरछी निगाह डाली गई) । जब ब्रह्मचारी पार्वती के प्रिय की निन्दा करने लगा तो पार्वती को क्रोध आना स्वाभाविक था ।

वाच्य परिवर्तन :—द्विजातौ इति प्रतिकूलवादिनि (सति) प्रवेपमानाधरलक्ष्यकोपा सा उपान्तलोहिते विलोचने विकुञ्चितभ्रूलतम् तिर्यग् आहितवती ॥ ७४ ॥

अनुवाद :—उस ब्राह्मण के इस प्रकार (उसकी इच्छा के) विरुद्ध बोलने पर, जिसका क्रोध निचले ओठ के फड़फड़ाने से प्रकट हो रहा था ऐसी उस (पार्वती) ने कोनों की ओर लाल नेत्रों से भौओं को टेढ़ी करके (उस पर) तिरछी निगाह डाली ॥ ७४ ॥

संस्कृत में भावार्थ :—शिवनिन्दारूपं ब्रह्मचारिणस्तत्कथनं श्रुत्वा पार्वती नितराम् कुपिता जाता, क्रोधेन च तस्या अधरोष्ठोऽकम्पत, नेत्रे च प्रान्तभागयोः रक्ते जाते तथा च सा तन्मुखाद् दृष्टिमाकृष्य भ्रुवं कुटिलाम् कृत्वावज्ञया तिर्यगवालोकत ॥ ७४ ॥

उवाच चैनाम् परमार्थतो हरम्
न वेत्सि नूनम् यत एवमात्थ माम् ।
अलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुकम्
द्विषन्ति मन्दाश्चरितम् महात्मनाम् ॥७५॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

टीका :—उवाचेति। अथ एनम् ब्रह्मचारिणम् उवाच च। किम्मिति। परमार्थतः तत्त्वतः हरम् न वेत्सि न जानासि नूनम्। कुतः। यतः माम् एवम् उक्तया रीत्या आत्थ ब्रवीषि। 'ब्रुवः पंचानामादितः'—इति रूपसिद्धिः। अज्ञानादेवायम् शिवद्वेषस्तवेत्याशयेनाह—मन्दाः मूढाः। 'मूढाल्पापटुनिर्भाग्या मन्दाः' इत्यमरः। लोकसामान्यमितरजनसाधारणम् न भवति इति अलोकसामान्यम अचिन्त्यहेतुकं दुर्वोधकारणकं महात्मनाम् चरितम् द्विषन्ति हेत्वपरिज्ञानाद् दूषयन्ति। विद्वांसस्तु कोऽप्यत्र हेतुरस्तीति बहुमन्यन्त इत्यर्थः ॥७५॥

अन्वय :—(गौरी) एनम् उवाच च, नूनम् परमार्थतः हरम् न वेत्सि, यतः माम् एवम् आत्थ। मन्दाः अलोकसामान्यम् अचिन्त्यहेतुकम् महात्मनाम् चरितम् द्विषन्ति ॥७५॥

टिप्पणी :—एनम्—ब्रह्मचारिणम्, ब्रह्मचारी को। नूनम्—निश्चयेन, अवश्य। परमार्थतः—परश्चासौ अर्थश्च इति परमार्थः (सत्यं) तस्मात्, परमार्थतः—(परमार्थ + तसिल्), वास्तव में; सचमुच, "पंचम्यास्तसिल" पा० ५. ३. ७. से तसिल् प्रत्यय हुआ। न वेत्सि—न जानासि, नहीं जानते। श्लोक ६५ में तपस्वी ने पार्वती से कहा है कि "विदितो महेश्वरः"। उसी के खण्डन में पार्वती कह रही हैं कि तुम शङ्कर को ठीक से नहीं जानते। आत्थ—ब्रवीषि, कहते हो। इस बात का समर्थन पार्वती एक सामान्य बात कह कर कर रही हैं, जिसका अर्थ यह है कि मूर्ख लोग बड़ों के अलौकिक चरित्र को जिसे वे नहीं समझ सकते बुरा कहते हैं। मन्दाः—मूढाः, मूर्ख। "मूढाल्पापटु निर्भाग्या मन्दाः" इत्यमरः। अलोकसामान्यम्—न लोकानाम् लोकेषु वा सामान्यम् (साधारणम्) इति अलोकसामान्यम्, अथवा न विद्यते लोकसामान्यम् यस्य तत्, जो और लौकिक पुरुषों के तुल्य न हो, यानी अलौकिक। अचिन्त्यहेतुकम्—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(न + चिन्त + यत्) = अचिन्त्यम्, चिन्तयितुं योग्यम् चिन्त्यम्, न चिन्त्यम् अचिन्त्यम् (विचारयितुमशक्यम्), जो समझ में न आ सके। अचिन्त्यो हेतुः (कारणम्) यस्य तत् अचिन्त्यहेतुकम्, पार्वती के कहने का भाव यह है कि ब्रह्मचारी यह नहीं समझ सकता कि शिवजी क्यों नंगे रहते हैं और ऐसा अमङ्गल वेष बनाये रहते हैं। हेतु में कप् प्रत्यय जुड़ा, क्योंकि यह बहुव्रीहि समास के अन्त में है। इसका सूत्र है "शेषाद् विभाषा" पा० ५.४.१५४। महात्मनाम्—महान् आत्मा येषां ते महात्मानः तेषाम् महात्मनाम्, उदार हृदय वालों का; महात्माओं का। चरितम्—चरित्रम्, चरित्र, हाल। द्विषन्ति—द्वेषेण पश्यन्ति, द्वेष करते हैं। देखिये "दाह्यमानाः सुतीव्रेण नीचाः परयशोऽग्निना। अशक्तास्तत्पदम् गन्तुम् ततो निन्दां प्रकुर्वते"। यहाँ पर अर्थान्तरन्यास अलंकार है। जहाँ पर विशेष बात का समर्थन साधारण बात कह कर करते हैं वहाँ यह अलंकार होता है।

वाच्य परिवतन :— (गौर्या) अयम् ऊचे च—नूनम् (त्वया) परमार्थतः हरो न विद्यते, यतः (त्वया) अहम् एवम् उच्ये। मन्दैः अलोकसामान्यम् अचिन्त्यहेतुकम् महात्मनाम् चरितम् द्विष्यते ॥७५॥

अनुवाद :— (पार्वती) उससे बोली—सचमुच, तुम वास्तविक रूप से महादेव को नहीं जानते, क्योंकि मुझ से इस प्रकार कहते हो। मूर्ख लोग अलौकिकतापूर्ण एवम् जिसके उद्देश्य आसानी से नहीं समझा जा सकता ऐसे महात्माओं के चरित्र से शत्रुता करते हैं ॥७५॥

संस्कृत में भावार्थ :— स्वकोपमवज्ञाञ्च प्रदर्श्य पार्वती ब्रह्मचारिणमाह—'यतस्त्वम् शिवस्य याथार्थ्यम् न जानासि तस्मादेवम्

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कथयसि। इदञ्च सुविज्ञातमेव संसारे यत् त्वमिवान्येऽपि मूढपुरुष। अनन्यसाधारणमविज्ञेयकारणञ्च महापुरुषाणाम् चरित्रम् द्वेषभावेनाधिक्षिपन्ति ॥७५॥

विपत्प्रतीकारपरेण मङ्गलं
निषेव्यते भूतिसमुत्सुकेन वा।
जगच्छरण्यस्य निराशिषः सतः
किमेभिराशोपहतात्मवृत्तिभिः ॥७६॥

टीका :—सम्प्रति। अमङ्गलाभ्यासरतिम् (५। ६५) इत्याद्युक्तदूषणजातम् विपदित्यादिभिः षड्भिः श्लोकैः परिहर्तु मारभते—विपदिति। विपत्प्रतीकारपरेण। अनर्थपरिहारार्थिनेत्यर्थः। 'उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्' इति दीर्घः। भूतिसमुत्सुकेन ऐश्वर्यकामेन वा मङ्गलम् गन्धमाल्यादिकम् निषेव्यते। शरणे रक्षणे साधुः शरण्यः 'तत्र साधुः' इति यत् प्रत्ययः। 'शरणम् गृहरक्षित्रोः' इत्यमरः। जगतः शरण्यस्तस्य जगच्छरण्यस्य निराशिषः निरभिलाषस्य सतः शिवस्य। 'आशीरुरगदंष्ट्रायाम् विप्रवाक्याभिलाषयोः' इति शाश्वतः। आशोपहतात्मवृत्तिभिः आशया तृष्णयोपहता दूषितात्मवृत्तिरन्तःकरणवृत्तिर्येषाम् तैः एभिः मङ्गलैः किम्। वृथेत्यर्थः। पूर्वम् मङ्गलमित्येकवचनस्य जात्यभिप्रायत्वादेभिरिति बहुवचनेन परामर्शो न विरुध्यते। इष्टावाप्त्यनिष्टपरिहारार्थिनो हि मङ्गलाचारनिर्बन्धः। तदुभयासंसृष्टस्य तु यथाकथंचिदास्ताम्। को दोष इत्यार्थः। एतेन 'अमंगलाभ्यासरतिम्' (५। ६५) इत्युक्तम् प्रत्युक्तम् ॥७६॥

अन्वय :—विपत्प्रतीकारपरेण वा भूतिसमुत्सुकेन मंगलम् निषेव्यते, जगच्छरण्यस्य निराशिषः सतः (शिवस्य) आशोपहतात्मवृत्तिभिः एभिः किम् ॥७६॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

टिप्पणी :—इस श्लोक में तथा आगे के ५ श्लोकों में पार्वती उन आक्षेपों का खण्डन करती हैं जो ब्रह्मचारी ने शिव के विरुद्ध लगाये थे। 'अमंगलाभ्यासरतिम्'—में जो आक्षेप है उसका खण्डन इस श्लोक में किया गया है। विपत्प्रतीकारपरेण—प्रतीकारः (प्रति + कृ + घञ्), परिहारः, दूर करना; हटाना। "उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्" पा० ६. ३. १२२. इस सूत्र से 'प्रति' के इ को दीर्घ हुआ है। विपदाम् प्रतीकारः परः (इष्टः) यस्य सः विपत्प्रतीकारपरः तेन, अर्थात् जो विपत्ति को दूर करने में लगा हो। भूतिसमुत्सुकेन—भूतौ (ऐश्वर्ये) समुत्सुकः भूतिसमुत्सुकः तेन भूतिसमुत्सुकेन —जो धन पाने का इच्छुक हो। 'भूतिर्भस्मनि सम्पदि' इत्यमरः। मङ्गल—कल्याणकारी वस्तु निषेव्यते—(नि + सेव् + य + ते), सेवन की जाती है। जगच्छरण्यस्य—जगत् · शरण्यस्य। शरण्यः (शरण + यत्) शरणे साधुः (समर्थः) इति शरण्यः, जो त्राण दे सकता है। 'तत्र साधुः' पा० ४. ४. ९८ से यत् प्रत्यय लगा। जगताम् शरण्यस्य जगच्छरण्यस्य—संसार के बचाने वाले का। निराशिषः—निर्गता आशीः (इच्छा) यस्मात् स निराशीः तस्य निराशिषः, जिसको कोई इच्छा नहीं है। आशीः—इच्छा। "आशीः उरगदंष्ट्रायाम् विप्रवाक्याभिलाषयोः" इति शाश्वतः। विपत्प्रतीकारपर में जगच्छरण्य में; तथा भूतिसमुत्सुक में और निराशीः में जो अन्तर है उस पर ध्यान दो। पार्वती के कहने का यह मतलब है कि न केवल शिव विपत्प्रतीकारपर और भूतिसमुत्सुक ही हैं बल्कि जगच्छरण्य और निराशीः भी हैं। और जब उनमें ये बातें हैं तो इसमें कोई हर्ज नहीं है कि वे अमङ्गलाभ्यासरति हैं। आशोपहतात्मवृत्तिभिः—आशया (तृष्णया) उपहता आत्मनः वृत्तिः यैः तानि आशोपहतात्मवृत्तीनि तैः आशोपहतात्मवृत्तिभिः—जो इच्छाओं से आत्मा को बुरा (दूषित) कर देते हैं। यह "एभिः" का विशेषण

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

है। जब शिव को किसी बात की इच्छा नहीं है तो उन्हें मङ्गल वस्तुओं की आवश्यकता भी नहीं है।

वाच्य परिवर्तन :—विपत्प्रतीकारपरः वा भूतिसमुत्सुकः (जनः) मंगलम् निषेवते, जगच्छरण्यस्य निराशिषः सतः (शिवस्य) आशोपहतात्मवृत्तिभिः एभिः किम्? ।।७६।

अनुवाद :—आपत्ति को हटाने में लगा हुआ अथवा ऐश्वर्य की कामना वाला व्यक्ति शुभ वस्तुओं की खोज में रहता है; संसार के रक्षक एवं निरीह (इच्छारहित) के लिये, तृष्णा के द्वारा आत्मा के चलन को बिगाड़ने वाली इन शुभ वस्तुओं से क्या प्रयोजन? ।।७६।।

संस्कृत में भावार्थ :—'शिवोऽमंगलाभ्यासरतिः' इति ब्रह्मचारिणः कथनम् पार्वती प्रतिवदति—यत त एव जना मंगलकारीणि वस्तूनि सेवन्ते ये विपत्याभिभूता भवन्त्यथवा सम्पत्तिप्राप्त्यर्थम् समुत्सुका भवन्ति। शिवस्तु सर्वेषाम् रक्षकः स्वयम् न कदाचिदपि विपदाभिभूयते, स आप्तकामश्च। तस्मान्न स किमपि वस्तु कामयते। अतस्तस्यैभिरन्तः-करणतृष्णावर्धकैर्मंगलैः किम् प्रयोजनम्? ।।७६।।

अकिंचनः सन्प्रभवः स संपदां
त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचरः।
स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते
न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः ।।७७।।

टीका :—अकिंचन इति। स हरः। न विद्यते किंचन द्रव्यम् यस्य स अकिंचनः दरिद्रः सन्। संपदाम् प्रभवत्यस्मादिति प्रभवः कारणम्। पितृसद्मगोचरः श्मशानाश्रयः सन् त्रिलोकनाथः त्रयाणाम् लोकानाम् नाथः। 'तद्धितार्थ'—इत्यादिनोत्तरपदसमासः।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

स देवो भीमरूप: भयंकराकार: सन् शिव: सौम्यरूप इति उदीर्यते उच्यते। अत: पिनाकिन: हरस्य याथार्थ्यविद: यथाभूत: अर्थ: यथार्थस्तस्य भावो याथार्थ्यम् तत्त्वम् तस्य विद: न सन्ति। लोकोत्तर-महिम्ना निर्लेपस्य यथाकथंचिदवस्थानम् न दोषायेति भाव:। एतेन 'अवस्तुनिर्बंधपरे' (५. ६६) इति परिहृतम् वेदितव्यम् ॥७७॥

अन्वय :—स: अकिञ्चन: सन् सम्पदाम् प्रभव: पितृसद्म-गोचर: (सन्) त्रिलोकनाथ:, स भीमरूप: (सन्) शिव: इति उदीर्यते, पिनाकिन: याथार्थ्यविद: न सन्ति ॥७७॥

टिप्पणी :—अकिञ्चन:—न विद्यते किञ्चन (द्रव्यम्) यस्य स: अकिञ्चन:, जिसके पास कुछ न हो, गरीब; निर्धन। यह मयूर-व्यंसकादिगण का तत्पुरुष समास है। सम्पदाम्—सम्पत्तीनाम्—धन का; सम्पत्तियों का। प्रभव:--(प्र+भू+अप्) "ऋदोरप्" सूत्र से अप् प्रत्यय हुआ। प्रभवन्त्यस्मादिति प्रभव: (उत्पत्ति स्थानम्)। पितृसद्म-गोचर:—पितॄणां (भूतानां) सद्म (स्थानम्) गोचर: आश्रय: यस्य स: पितृसद्मगोचर:, जो श्मशान में रहता है। "वास: पितृणाम् वने"। सद्मन्—गृहम्, निवासस्थान। "गृहम् गेहोदवसितम् वेश्म सद्म निकेतनम" इत्यमर:। सद्मन् का रूप यों चलेगा—सद्म सद्मनी सद्मानि। गोचर:—निवास-स्थान। त्रिलोकनाथ:—त्र्यवयवो लोकस्त्रिलोक: (मध्यमपदलोपिसमास), तस्य नाथ:, तीनों लोकों का स्वामी। अथवा त्रयाणाम् लोकानाम् नाथ: त्रिलोकनाथ:। भीमरूप:—बिभेति अस्मादिति भीमम्, भीमम् रूपम् यस्य स भीमरूप:, जो भयानक शरीर का हो। शिव:—मंगल-कारी। उदीर्यते--(उद्+ईर्+य+ते) कथ्यते, कहा जाता है। पिनाकिन:—महादेव का; पिनाक का धारण करने वाला। याथा-र्थ्यविद:—याथार्थ्यम्—यथाभूतोऽर्थो याथार्थ: (प्रादिसमास:),

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यथार्थस्य भावः याथार्थ्यम् (यथार्थ+ष्यञ्), तत्त्वम्—सच्ची बात। याथार्थ्यम् विदन्ति (जानन्ति) इति याथार्थ्यविदः (विद्+क्विप्)—सच्ची बात के जानने वाले। पार्वती के कहने का मतलब यह है कि शिव को अच्छी तरह समझने वाले लोग यहाँ नहीं हैं। उनमें परस्परविरोधी गुण हैं। निर्धन होते हुए भी वे सम्पत्ति के देने वाले हैं। श्मशान-भूमि के निवासी होते हुए भी वे तीनों लोकों के स्वामी हैं। भयङ्कर होते हुए भी वे कल्याण देने वाले हैं। ऐसी अवस्था में शिव के प्रति ब्रह्मचारी ने जो बात कही है वह असत्य है। यह श्लोक ६६, ६७ और ६८ का उत्तर है।

वाच्य परिवर्तन :—तेन अकिञ्चनेन सता संपदाम् प्रभवेण (भूयते); पितृसद्मगोचरेण (सता) त्रिलोकनाथेन (भूयते), तम् भीमरूपम् (सन्तम्) (जनाः) शिव इति उदीरयन्ति; पिनाकिनः याथार्थ्यविद्भिः न भूयते ।। ७७ ।।

अनुवाद :—वह निर्धन होते हुए भी सम्पत्तियों का उत्पत्ति-स्थान है; मृतकों की भूमि में (श्मशान में) रहता हुआ भी तीनों लोकों का स्वामी है, वह भयङ्कर आकार वाला (होता हुआ) भी लोगों के द्वारा कल्याणकारी कहा जाता है; शिव की वास्तविकता को जानने वाले (पुरुष) नहीं हैं ।। ७७ ।।

संस्कृत में भावार्थ :—यद्यपि शिवो भूषणवस्त्रादिभिः रहितः स्वयम् निर्धनः परम् स सर्वप्रकारकाणाम् धनानामुत्पादकः। यद्यपि स गृहहीनः श्मशानवासी तथापि स त्रयाणामपि लोकानाम् प्रभुः, एवमेव च यद्यपि सर्पादिभिरावृतो भयानकरूपः, तथापि स शिवः (कल्याणकारी) कथ्यते। एतेन ज्ञायते यत्संसारे शिवस्य याथार्थ्येन ज्ञातारो न सन्ति। तव कथनमप्ययथातथम् ।। ७७ ।।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विभूषणोद्भासि पिनद्धभोगि वा
गजाजिनालम्बि दुकूलधारि वा।
कपालि वा स्यादथवेन्दुशेखरं
न विश्वमूर्त्तेरवधार्यते वपुः ॥७८॥

टीका :—देवस्य लौकिकम् अलौकिकम् च प्रसाधनम् नास्तीत्याशयेनाह—विभूषणेति। विश्वम् मूर्तिर्यस्येति विश्वमूर्तेः अष्टमूर्तेः शिवस्य वपुः शरीरम् भूषणैरुद्भासत इति विभूषणोद्भासि स्यात्। पिनद्ध-भोगि आमुक्तभुजंगम् वा स्यात्। पिनद्धेति नह्यतेरपिपूर्वात्कर्मणि क्तः। 'वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः।' इत्यकारलोपः। गजाजिनालम्बि स्यात्। अथवा दुकूलधारि स्यात्। कपालमस्यास्तीति कपालि ब्रह्मशिरः कपालशेखरम् वा स्यात् अथवा इन्दुशेखरम् स्यात् न अवधार्यते न निर्णीयते। सर्वम् संभवतीत्यर्थः। एतेन 'त्वमेव तावत्' (५।६७) श्लोकोक्तम् प्रत्युक्तमिति ज्ञेयम्॥ ७८॥

अन्वय :—विश्वमूर्तेः वपुः न अवधार्यते, विभूषणोद्भासि वा पिनद्धभोगि, गजाजिनालम्बि वा दुकूलधारि, कपालि वा अथवा इन्दुशेखरम् स्यात्॥ ७८॥

टिप्पणी :—विश्वमूर्तेः—विश्वम् मूर्तिः (स्वरूपम्) यस्य स विश्वमूर्तिः तस्य विश्वमूर्तेः—संसार है रूप जिसका उसका। न अवधार्यते—न निश्चीयते, नहीं समझ में आता; नहीं समझा जा सकता। धृ—धारण करना। परन्तु जब यह धातु अव के साथ रहती है तो इसका अर्थ हो जाता है "निश्चित करना"। विभूषणोद्भासि—उद्भासि (उत्+भास्+णिनिः), उद्भासते इति उद्भासि (शोभि), चमकता हुआ, विभूषणैः उद्भासते इति विभूषणोद्भासि गहनों से चमकता हुआ। पिनद्धभोगि—पिनद्धः (अपि+न्

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

+क्त), नधा हुआ। अपि के अ का लोप हो जाता है। इसके लिए सूत्र है "वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः"। अपिनद्धाः भी होता है, क्योंकि अपि के अ का लोप विकल्प से होता है। भोगिन्—(भोग+इनिः)। भोगः (फणः)। भोगः अस्यास्तीति भोगी—साँप। "उरगः पन्नगः भोगी जिह्मगः पवनाशनः" इत्यमरः। पिनद्धाः भोगिनः यस्मिन् तत् पिनद्ध-भोगि, साँपों से घिरा हुआ; साँप लपेटे हुए। गजाजिनालम्बि—गजस्य अजिनम् चर्म आलम्बते इति गजाजिनालम्बि (आ+लम्ब+णिनिः), हाथी की खाल पहने हुए। अजिनम्—खाल। "अजिनम् कृत्तिः चर्म" इत्यमरः। दुकूल-धारि—दुकूलं (क्षौमं) धारयति इति दुकूलधारी, रेशमी वस्त्र पहने हुये, (धृ+णिनिः)। कपालि—(कपाल+इनिः), कपालम् (शिरोऽस्थि) यस्मिन् अस्तीति कपालि, कपाल (आदमी की खोपड़ी) धारण किये हुए। पुराणों में यह लिखा है कि शिव जी ब्रह्मा के शिर की माला धारण करते हैं। देखिये—"जगत्सिसृक्षा-समयेषु वेधसाम् प्रणामलोलानि शिरांसि पादयोः। जगद्विरामेषु कपालशेषताम् गतानि तिष्ठन्ति जटासु धूर्जटेः"। कहीं-कहीं यह भी कथा है कि एक बार जब ब्रह्मा ने यह कहा कि शिव उनके मस्तक से पैदा हुए हैं तो वह ब्रह्मा से बहुत नाराज हुए और उन्होंने काल भैरव को प्रकट किया। भैरव ने ब्रह्मा के एक सिर को अपने नाखूनों से काट लिया। उसी समय काल भैरव रूप होकर शिव ने ब्रह्मा के सिर की माला पहन ली। इन्दु-शेखरम्—इंदुः शेखरे शेखरो वा यस्य तत्, चन्द्रमा को सिर में धारण करने वाला। यह वपुः का विशेषण है, इस वास्ते सब नपुंसक लिङ्ग है।

पार्वती के कहने का भाव यह है कि महादेव का शरीर रहस्यमय है जिसको कोई नहीं जान सकता। यह श्लोक ६६ और ७१ के उत्तर में है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वाच्य परिवर्तन :—विश्वमूर्त्तेः वपुः जनाः न अवधारयन्ति, (तेन) विभूषणोद्भासिना वा पिनद्धभोगिना, गजाजिनालंबिना वा दुकूलधारिणा, कपालिना वा अथवा इन्दुशेखरेण भूयते ॥ ७८ ॥

अनुवाद :—जगत्स्वरूप (शिव) का शरीर निश्चय तौर पर ज्ञात नहीं है। वह आभूषणों से चमकता हुआ है अथवा साँपों से लपेटा हुआ है, हाथी के चर्म से ढका हुआ है अथवा रेशमी वस्त्र से, सिर में कपाल धारण किये हुए हैं या चन्द्रमा (की कला) ॥ ७८ ॥

संस्कृत में भावार्थ :—जगत्स्वरूपस्य शिवस्य रूपं प्रकारतः परिमाणतश्चाविज्ञेयमेव। न तद्विषये किञ्चिदपि परमार्थतः कथयितुं शक्यते यतः शिवो देहशोभार्थमाभूषणानि धारयन् सर्पानपि धत्ते; क्षौमवस्त्रावृतो हस्तिचर्मापि धारयति तथा च मृतमुण्डयुक्तश्चन्द्रकला-भूषितोऽप्यस्ति। एवम् विरोधात्मकस्य तदीयस्वरूपस्य याथार्थ्यं ज्ञातुम् न कोऽपि पारयति ॥ ७८ ॥

तदङ्गसंसर्गमवाप्य कल्पते
ध्रुवं चिताभस्मरजो विशुद्धये।
तथा हि नृत्याभिनयक्रियाच्युतं
विलिप्यते मौलिभिरम्बरौकसाम् ॥ ७९ ॥

टीका :—'अयुक्तरूपं किमतः परम् वद' इति (५।६६) श्लोकोक्तं प्रत्याह—तदङ्गेति। तदङ्गसंसर्गं तस्य शिवस्याङ्गम् तस्य संसर्गम् अवाप्य आसाद्य चिताभस्मरजः चिताभस्मैव रजो विशुद्धये कल्पते। अलं पर्याप्नोतीत्यर्थः। अलमर्थयोगात् 'नमः स्वस्ति-स्वाहा—' इत्यादिना चतुर्थी। ध्रुवं शोधकत्वं प्रमाणसिद्धमित्यर्थः। प्रमाणमेवाह—तथा हि। प्रसिद्धमेवेत्यर्थः। नृत्याभिनयक्रियाच्युतं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नृत्ये ताण्डवे योऽभिनयोऽर्थव्यञ्जकचेष्टाविशेषः स एव क्रिया तया निमित्तेन च्युतं पतितम्। चिताभस्मरजः इति शेषः। अम्बरौकसां देवानां मौलिभिः विलिप्यते ध्रियते। अशुद्धं चेत्कथमिन्द्रादिभिर्ध्रियेतेत्यर्थापत्तिरनुमानं वा प्रमाणमित्यर्थः ॥७६॥

अनुवाद :—चिताभस्मरजः अपि तदङ्गसंसर्गम् अवाप्य ध्रुवं विशुद्धये कल्पते, तथा हि नृत्याभिनयक्रियाच्युतं (तत्) अम्बरौकसां मौलिभिः विलिप्यते ॥७६॥

टिप्पणी :—चिताभस्मरजः—चितायाः भस्म एव रजः (अनुलेपनचूर्णम्) चिताभस्मरजः, चिता की राख का चूर्ण अथवा चितायाः भस्मनो रजः (चूर्णम्) चिताभस्मरजः, चिता की राख के किनके जिनको शिवजी अपने शरीर में लगाते हैं। तदङ्गसंसर्ग—तस्य (शिवस्य) अंगस्य (देहस्य) संसर्गम् (संपर्क) तदङ्गसंसर्गम्, उनके शरीर का संसर्ग (छूना)। अवाप्य—प्राप्य, पाकर ध्रुवं—निश्चयेन, अवश्य। शुद्धये—पवित्रताकरणाय, पवित्र करने के लिये। "क्लृपि संपद्यमाने च" से यहाँ चतुर्थी हुई है। जिस वस्तु से कोई काम किया जाता है या किसी कार्य से जो परिणाम होता है उसमें चतुर्थी होती है। नृत्याभिनयक्रियाच्युतम् अभिनयः हृद्गतभावाभिव्यञ्जकशरीरचेष्टा, हृदय के अन्दर के भावों को बताने वाली शरीर की चेष्टा (हावभाव)। नृत्ये ताण्डवे अभिनयः एव क्रिया नृत्याभिनयक्रिया, तया च्युतम् नृत्याभिनयक्रियाच्युतम्, नृत्य करते समय शरीर से गिरे हुये, शिव के नृत्य को तांडव-नृत्य कहते हैं। अम्बरौकसाम्—अम्बरं (व्योम) ओकः (गृहं) येषां ते अम्बरौकसः, तेषां, देवताओं का (स्वर्ग में रहने वालों का)। ओकः—गृहम्, घर। "ओकः सद्मनि चाश्रये" इत्यमरः। मौलिभिः—शिरोभिः, सिर पर। विलिप्यते—लगाई जाती है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पार्वती के कहने का मतलब यह है कि शिव का शरीर इतना पवित्र है कि उसके संसर्ग से चिता की राख भी पवित्र हो जाती है और देवताओं के सिर पर धारण योग्य बन जाती है।

वाच्य परिवर्तन :—चिताभस्मरजसा अपि तदङ्गसंसर्गम् अवाप्य ध्रुवम् विशुद्धये कल्पते। तथा हि नृत्याभिनयक्रियाच्युतम् (तत् रजः) अम्बरौकसाम् मौलयः विलिम्पन्ति ॥७९॥

अनुवाद :—चिता की राख भी उस (शिव) के शरीर से छूकर वास्तव में शुद्धि को करने वाली हो जाती है, इसीलिये (शिव के) नाचने से गिरी हुई (वह धूल) देवताओं के शिरों से लगाई जाती है ॥७९॥

संस्कृत में भावार्थ :—शिवस्य देहस्तु तथा पावनोऽस्ति यत्तत्संपर्केण चिताभस्मापि परेषाम् शुद्धिकारकम् भवति। अनेनैव कारणेन नृत्यकाले तस्य देहच्युतान् रजःकणान् उत्थाप्य देवाः स्वशिरःसु लिम्पन्ति। यद्धि देवानामपि शुद्धिकारकम् तत्कियत्पावनम् भवेदिति कथनम् व्यर्थमेव ॥७९॥

असंपदस्तस्य वृषेण गच्छतः
प्रभिन्नदिग्वारणवाहनो वृषा।
करोति पादावुपगम्य मौलिना
विनिद्रमन्दाररजोरुणाङ्गुली ॥८०॥

टीका :—यदुक्तम् 'दिगम्बरत्वेन निवेदितम् वसु' (५।७२) 'इयम् च तेऽन्या पुरतो विडम्बना, (५।७२) इत्यादि च तत्रोत्तरमाह—असंपद इति। प्रभिन्नदिग्वारणवाहनः प्रभिन्नो मदस्रावी दिग्वारणो दिग्गजो वाहनम् यस्य सः। ऐरावतेनोढ इत्यर्थः। वृषा देवेन्द्रः।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

असंपदः दरिद्रस्य वृषेण गच्छतः वृषभारूढस्य तस्य ईश्वरस्य पादौ मौलिना मुकुटेन उपगम्य प्रणत्येत्यर्थः। विनिद्रमन्दाररजोरुणाङ्गुली विनिद्राणाम् विकसितानाम् मन्दाराणाम् कल्पतरुकुसुमानाम् रजोभिः परागैररुणा अङ्गुलयो ययोस्तौ तथोक्तौ करोति। दिग्गजरोहिणामिन्द्रादीनामपि वन्द्यस्येन्दुमौलेः किम् संपदा वृषारोहणे वा को दोष इत्यर्थ : ॥८०॥

अन्वय :—प्रभिन्नदिग्वारणवाहनः वृषा उपगम्य असम्पदः वृषेण गच्छतः तस्य पादौ मौलिना विनिद्रमन्दाररजोरुणाङ्गुली करोति ॥८०॥

टिप्पणी :—प्रभिन्नदिग्वारणवाहनः—(प्र+भिद्+क्त), मद-युक्तः, मद चुआने वाला। "प्रभिन्नो गर्जितो मत्तः" इत्यमरः। दिग्वारणः—दिशः (प्राचीदिशः) वारणः हस्ती दिग्वारणः, पूर्व दिशा का हस्ती जो इन्द्र का हस्ती है, जिसे ऐरावत कहते हैं। पुराणों के कथनानुसार वह उन हस्तियों में से है जो आठों दिशाओं में हैं और पृथ्वी का भार धारण करते हैं। वारणः—हाथी। "मतङ्गजो गजो नागः कुञ्जरो वारणः करी" इत्यमरः। वाहनम् (वह + ल्युट्—अन) यानम् सवारी। प्रभिन्नः दिग्वारणः वाहनम् यस्य सः प्रभिन्नदिग्वारणवाहनः, मद बहाने वाला (पूर्वदिशा का) हाथी है सवारी जिसकी। कुछ टीकाकार इस प्रकार अर्थ करते हैं—प्रभिन्नाः पराभूताः दिग्वारणाः स्वातिरिक्ताः दिग्गजाः येन सः प्रभिन्नदिग्वारणः तादृशम् वाहनं यस्य सः प्रभिन्नदिग्वारणवाहनः। वृषा वर्षतीति वृषा इन्द्रः। "वासवो वृत्रहा वृषा" इत्यमरः। उपगम्य—(उप+गम्+ल्यप्), समीपम् आगत्य—समीप में आकर। असम्पदः - नास्ति सम्पत् यस्य सः असम्पत् तस्य, निर्धनी का। वृषेण—वृषभेण, बैल से (पर)। 'उक्षा भद्रो बलीवर्द ऋषभो वृषभो वृषः" इत्यमरः। तस्य–

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शिवस्य, शिव का। मौलिना—शिरसा—सिर से। विनिद्रमन्दार-रजोरुणाङ्गुली—विनिद्रः (विगता निद्रा यस्य स विनिद्रः), विकसित, खिला हुआ। मन्दारः—कल्पवृक्षः। यहाँ पर "मन्दार" का अर्थ है "मन्दार के फूल"—मन्दारस्य इमे मन्दाराः (मन्दार+अण्)। यहाँ "अण्" का लोप हो गया, अतएव "मन्दार" शब्द में किसी प्रकार का परिवर्तन अथवा रूपान्तर नहीं हुआ। विनिद्राणां मन्दाराणां रजोभिः परागैः अरुणाः रक्ताः अङ्गुलयो ययोस्तौ विनिद्रमन्दार रजोरुणाङ्गुली, पूरी तरह खिले हुए मन्दार वृक्ष के फूलों की रज से जिनके पैर की उँगलियाँ लाल कर दी जाती हैं। यह पादौ का विशेषण है। इन्द्र अपने सिर पर मन्दार-पुष्प को धारण करता है और जब वह आकर शिव के चरणों पर अपना सिर रखता है तो फूलों के रंग से शिव के चरण की उँगलियों का रंग लाल हो जाता है।

"इयम् च तेऽन्या पुरतो विडम्बना" का यह उचित उत्तर है। इसमें वृष और दिग्वारण का भेद बताया गया है। पार्वती का मतलब यह है कि जब हाथी पर चढ़ने वाला इन्द्र स्वयं आकर शिव को प्रणाम करता है तो चाहे शिव बैल पर चढ़ें चाहे हाथी पर—दोनों एक ही बात है। उनके लिये दोनों समान हैं। इससे शिव का बड़प्पन साबित होता है।

वाच्य परिवर्तन :—प्रभिन्नदिग्वारणवाहनेन वृष्णा उपगम्य असम्पदः वृषेण गच्छतः तस्य पादौ मौलिना विनिद्रमन्दाररजोरुणाङ्गुली क्रियेते ॥८०॥

अनुवाद :—किसी प्रकार की संपत्ति न रखने वाले, बैल पर चढ़ने वाले, उस (शिव) के पैरों को, मद बहाने वाला (पूर्व) दिशा का हाथी जिसकी सवारी है ऐसा इन्द्र, समीप आकर, अपने

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सिर द्वारा, खिले हुए देववृक्षों के पुष्पों के पराग से लाल अँगुली वाला करता है ॥ ८० ॥

संस्कृत में भावार्थ :—यद्यपि स शिवः स्वयं निर्धनो वृद्धोक्षवाहनश्च परम् जगत्यसाधारणैश्वर्यवान् मघवापि यस्य हि हस्तिराज ऐरावतो वाहनम्, तत्समक्षमागत्य सत्कारप्रदर्शनार्थम् स्वर्गवृक्षपुष्पभूषितम् स्वशिरस्तच्चरणयोर्नमयति येन शिवस्य पादाङ्गुलयः पुष्परागेण रागयुक्ता भवन्ति। यस्य हि इन्द्रादयोऽपि चरणसेवकाः स कियन्महानिति कथनेनास्ताम् ॥ ८० ॥

विवक्षता दोषमपि च्युतात्मना
त्वयैकमीशं प्रति साधु भाषितम् ।
यमामनन्त्यात्मभुवोऽपि कारणं
कथं स लक्ष्यप्रभवो भविष्यति ॥८१॥

टीका :—यदुक्तम् 'अलक्ष्यजन्मता' (५।७२) इति तत्रोत्तरमाह—विवक्षतेति। च्युतात्मना नष्टस्वभावेनात एव दोषम् दूषणम् विवक्षता वक्तुमिच्छता अपि त्वया ईशम् प्रति एकम् अलक्ष्यजन्मता इत्येतदेकम्। वच इत्यर्थः। साधु भाषितं सम्यगुक्तम्। कुतः। यम् ईश्वरम् आत्मभुवः अपि ब्रह्मणोऽपि। 'ब्रह्मात्मभूः सुरज्येष्ठः'। कारणम् आमनन्ति उदाहरन्ति। विद्वांस इति शेषः। 'पाघ्राध्मास्थाम्नादाण'—इत्यादिना मनादेशः। स ईश्वरः कथम् लक्ष्यप्रभवः लक्ष्यजन्मा भविष्यति। अनादिनिधनस्य भगवतः कारणशङ्का कलङ्कश्च नान्विष्यत इत्यर्थः ॥ ८१ ॥

अन्वय :—च्युतात्मना दोषम् विवक्षता अपि त्वया ईशम् प्रति एकम् साधु भाषितम्, यम् आत्मभुवः अपि कारणम् आमनन्ति सः कथम् लक्ष्यप्रभवः भविष्यति ॥ ८१ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

टिप्पणी :—च्युतात्मना च्युत: पतित: आत्मा अन्त:करणम् यस्य स च्युतात्मा, तेन, पतित आत्मा वाला। पार्वती उस तपस्वी को इस वास्ते च्युतात्मा कह रही हैं क्योंकि उसने शिवजी की काफी बुराई की थी। विवक्षता—(वच + सन् + शतृ) वक्तुम् इच्छति विवक्षति, विवक्षति इति विवक्षन्—(वक्तुम् + इच्छन्), तेन, विवक्षता, बोलने वाले से। वच् धातु में सन् प्रत्यय इच्छा प्रकट करने के लिये जोड़ा गया है। अपि—भी, यद्यपि तुम शिव की बुराई करना चाहते थे फिर भी एक बात तुमने शिव के बारे में सत्य कही है। ईशं प्रति—महेशं प्रति, शिव के बारे में, प्रति के योग में द्वितीया होती है। "अभित: परित: समया निकषा हा प्रतियोगेऽपि" इन सब के योग में द्वितीया होती है। साधु—सम्यक्, अच्छी प्रकार से। अच्छी बात, यानी अलक्ष्यजन्मता—(श्लोक ७२)। आत्मभुव: —(आत्मन् + भू + क्विप्), आत्मना स्वयमेव भवतीति आत्मभू: तस्य आत्मभुव:, जो स्वयं पैदा हो उसका। "ब्रह्मा आत्मभू: सुरज्येष्ठ: परमेष्ठी पितामह:" इत्यमर:। कारणम्—उत्पत्तिस्थान; जन्म का कारण। देखिए "यो वै ब्रह्माणम् विदधाति पूर्वम्"। आमनन्ति —प्रतिपादयन्ति—कहते हैं। म्ना—प्रशंसा करना। इस धातु का मन हो जाता है जब सार्वधातुक लकार आते हैं। इसके लिये सूत्र है "पाघ्राध्मा स्थाम्ना दाण्दृश्यर्ति सर्ति शदसदां पिबजिघ्रधम तिष्ठमन यच्छ पश्यर्च्छधौ शीयसीदा:" पा० ८. ३. ७। लक्ष्य-प्रभव:—प्रभवति अस्मात् इति प्रभव: (उत्पत्ति-स्थानम्), लक्ष्य: ज्ञेय: प्रभव: यस्य स: लक्ष्यप्रभव:, जिसका उत्पत्ति-स्थान मालूम हो।

तपस्वी ने शिव के बारे में जो अलक्ष्यजन्मता कहा था वह तो बुरी भावना से कहा था, परन्तु पार्वती बड़ी बुद्धिमानी से उसका अच्छा अर्थ लगाती हैं और इस प्रकार से उसको उत्तर देती हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वाच्य परिवर्तन :—च्युतात्मा दोषम् विवत्तन् अपि त्वम् ईशं प्रति एकम् साधु भाषितवान्, यः आत्मभुवः अपि कारणम् आम्नायते तेन कथम् लक्ष्यप्रभवेण भविष्यते ॥ ८१ ॥

अनुवाद :—नीच आत्मा वाले, दोषों को कहने की इच्छा करते हुए भी तू ने महेश के वारे में एक अच्छी वात कही है; जिसे (विद्वान् लोग) ब्रह्मा का भी कारण वताते हैं उसकी उत्पत्ति किस प्रकार जानी जा सकती है ? ॥ ८१ ॥

संस्कृत में भावार्थ :—हे ब्रह्मचारिन् ! शिवस्य दोषान् दर्शयता पतितात्मना त्वया तद्विषये 'अलक्ष्यजन्मता' इति यत्कथितम् तत्तु सम्यग्भाषितम् । यो हि शिवो जगदुत्पादकस्य ब्रह्मणोऽप्युत्पादकस्तस्योत्पत्तिविषये कश्चिदपि किमपि ज्ञातुम् कथम् शक्नोति ? ॥८१॥

अलं विवादेन यथा श्रुतस्त्वया
तथाविधस्तावदशेषमस्तु सः ।
ममात्र भावैकरसं मनः स्थितं
न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते ॥ ८२ ॥

टीका : अलमिति । अथवा विवादेन कलहेन अलम् । त्वया तावत् । यथा येन प्रकारेण स ईश्वरः श्रुतः अशेषम् कार्त्स्न्येन तथाविधः तावत्प्रकारः एव अस्तु । मम मनः तु अत्र ईश्वरे भावैकरसं भावः शृङ्गार एकोऽद्वितीयो रस आस्वाद्यो यस्य तत्तथा स्थितम् । तथा हि । कामवृत्तिः स्वेच्छाव्यवहारी वचनीयम् अस्थानसङ्गापवादम् न ईक्षते न विचारयति न हि स्वेच्छासंचारिणो लोकापवादाद् बिभ्यतीति भावः ॥ ८२ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्वय :—(हे प्रिय), विवादेन अलम्, त्वया स यथा श्रुतः अशेषम् तावदस्तु, मम मनः अत्र भावैकरसम् स्थितम्, कामवृत्तिः वचनीयम् न ईक्षते ॥ ८२ ॥

टिप्पणी :—विवादेन—(वि+वद्+घञ्), वाक्कलहेन। झगड़ा। अलम् का योग होने से तृतीया हुई है। यथा—जैसा, जिस भी प्रकार का। तथाविधः—तथा विधा प्रकारो यस्य सः तथाविधः, उस प्रकार का। अशेषम्—न शेषः यस्मिन् कर्मणि तद् अशेषम्, पूरे तौर से। अत्र—शिव में। भावैकरसम्—भावः (प्रेम शृङ्गारः), एकः (अनन्यः), रसः (आनन्दो), यस्य तत्—केवल प्रेम के भाव में संलग्न। अथवा भावे भक्तौ एकः रसः (आनन्दो) यस्य तत् भावैकरसम्, जो केवल शिव की भक्ति में आनन्द पाता है। स्थितम्—निश्चलम्; लगा है। कामवृत्तिः—(यथेच्छम्) वृत्तिः (वर्त्तनम) यस्य सः अथवा कामः (इच्छा) वृत्तिः यस्य सः, जो अपनी इच्छा के अनुसार काम करता है। वचनीयम्—(वच्+अनीयर्), निन्दाम्, लोकापवादम्, बुराई; लोक-निन्दा। न ईक्षते—न विचारयति, नहीं विचार करता; नहीं ध्यान देता। "न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते" यह एक सामान्य वाक्य है। इसका अर्थ यह है कि जो व्यक्ति मनमानी करता है उसे निन्दा की परवाह नहीं होती। पार्वती के कहने का भाव यह है कि मेरा मन शिव में लगा है अतः मैं अपने मन की करना चाहती हूँ, मुझे लोकनिन्दा की परवाह नहीं है।

वाच्य परिवर्तन :—विवादेन अलम्। त्वम् तं यथा श्रुतवान् तथाविधेन अशेषम् तावद् भूयताम्, मम मनसा अत्र भावैकरसेन स्थितम्; कामवृत्तिना वचनीयम् न ईक्ष्यते ॥ ८२ ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अनुवाद :—वादविवाद न करो, तुमने उसे जिस प्रकार का सुना है वह चाहे बिल्कुल वैसा ही हो, (पर) मेरा मन उसमें एकमात्र प्रेमपूर्ण होकर लगा हुआ है; इच्छा के अनुसार कार्य करने वाला व्यक्ति बदनामी की परवाह नहीं करता ।।८२।।

संस्कृत में भावार्थ :—हे वर्णिन् ! शिवविषयकोक्तिप्रत्युक्तिकरणेन न कोऽपि लाभो दृश्यते यतस्त्वम् शिवद्वेषी तद्दोषद्रष्टा च । त्वम् शिवविषये यत्किमपि जानासि तत्तथैवास्तु तन्निराकरणेन च किमपि प्रयोजनम् सेत्स्यति । शिवद्वेषकथनेन मे मनोऽपि तदनुरागम् न त्यजति यतोऽहमनन्यभावेन तस्मिन्ननुरक्ता । न हि प्रियस्य दोषदर्शनेन तम् प्रति कश्चिदुदासीनो भवति ।।८२।।

निवार्यतामालि किमप्ययं वटुः
पुनर्विवक्षुः स्फुरितोत्तराधरः ।
न केवलं यो महतोऽपभाषते
शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक् ।।८३।।

टीका :—निवार्यतामिति । हे आलि सखि ! 'आलिः सखी वयस्या च' इत्यमरः । स्फुरितोत्तराधरः स्फुरणभूयिष्ठोष्ठः अयम् वटुः माणवकः पुनः किम् अपि विवक्षुः वक्तुमिच्छुः । ब्रुवः सन्नन्तादुप्रत्ययः । निवार्यताम् । तर्हि वक्तुमेव कथम् न ददासीत्याह—तथा हि । यः महतः पूज्यान् अपभाषते अपवदति न केवलम् स पापभाक् भवति । किन्तु तस्मात् अपभाषमाणात्पुरुषात् यः शृणोति सोऽपि पापभाक् भवतीति शेषः । अत्र स्मृतिः—'गुरोः प्राप्तः परीवादो न श्रोतव्यः कथंचन । कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यम् वा ततोऽन्यतः ।' इति ।।८३।।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अन्वय :—(हे) आलि ! स्फुरितोत्तराधरः पुनः किम् अपि विवक्षुः अयं वटुः निवार्यताम् ; यः महतः अपभाषते न केवलम् सः (अपि तु) यः तस्मात् शृणोति सः अपि पापभाग् (भवति) ।।८३।।

टिप्पणी :—आलि—सखि । "आलिः सखी वयस्या च" इत्यमरः । स्फुरितोत्तराधरः—इसका कई प्रकार से समास किया जा सकता है । उत्तरश्च (उत्तरोष्ठश्च) अधरश्च (अधरोष्ठश्च) उत्तराधरम् ; स्फुरितम् (किञ्चिच्चलितम्) उत्तराधरम् यस्य सः स्फुरितोत्तराधरः, जिसके ऊपर के और नीचे के ओठ हिल रहे हों (२) स्फुरितम् (कम्पनम्) उत्तरम् (अधिकम्) यस्मिन् सः स्फुरितोत्तरः, स्फुरितोत्तरः अधरः यस्य सः; जिसका नीचे का होठ बहुत हिलता हो । इस अवस्था में उत्तर का अर्थ है "अत्यधिक" स्फुरितम् उत्तरं यस्मिन् सः (बहुव्रीहिसमास) । इसमें उत्तर शब्द जो विशेषण है पहले रक्खा जाना चाहिये था, परन्तु इसको पीछे रख दिया गया है । इसका सूत्र है "वाहिताग्न्यादिषु च" पा० २. २. ३७ । और यदि यह संभव न हो तो इस प्रकार विग्रह करना चाहिये —(३) स्फुरितेन उत्तरः (युक्तः) स्फुरितोत्तरः, स्फुरितोत्तरः अधरः यस्य सः, जिसका नीचे का ओठ काँप रहा था । इस अवस्था में उत्तर का अर्थ होगा 'युक्त" । विवक्षुः—(वच् + सन् + उः), वक्तुम् इच्छुः विवक्षुः; बोलने का इच्छुक । वटुः—बालक, ब्रह्मचारी । निवार्यताम्—(नि + वृ + य + लोट्) निषिध्यताम् , रोक दिया जाय । महतः—बड़ों के (विषय में) । महत् शब्द की षष्ठी का एक वचन । अपभाषते—निन्दां करोति, निन्दा करता है । पापभाक्—(पाप + भज् + ण्विः), पापम् भजते सेवते इति पापभाक् , पापी । देखिये मनुस्मृति "गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा वापि प्रवर्तते । कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यम् वा ततोऽन्यतः" । पार्वती शिव की किसी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भी प्रकार निन्दा सुनने को तैयार नहीं थीं। इससे यह प्रकट होता है कि शिव के प्रति उनकी बड़ी भक्ति थी।

*वाच्य परिवर्तन :—हे आलि, स्फुरितोत्तराधरम् पुनः किम् अपि विवक्षुम् इमम् वटुम् (त्वम्) निवारय, येन महान्तः अपभाष्यन्ते न केवलं तेन (अपि तु) येन तस्मात् श्रूयते तेन अपि पापभाजा (भूयते) ॥ ८३ ॥

अनुवाद :—हे सखि, जिसके ओठ फड़फड़ा रहे हैं ऐसे कुछ और बोलने की इच्छा वाले इस बालक को मना कर दो (या रोक दो)। केवल वही पाप का भागी नहीं होता है, जो बड़ों की निन्दा करता है अपितु वह भी जो उससे सुनता है ॥ ८३ ॥

संस्कृत में भावार्थ:—ब्रह्मचारिणः कथितम् प्रत्याख्याय ब्रह्मचारिणञ्च विवादात् विरमितुमादिश्य पार्वती स्वां सखीं कथयति—'हे सखि ! अस्माकम् पुरतः स्थितोऽयम् वर्णी कम्पमानाधरत्वात् पुनरप्यधिकां शिवनिन्दां कर्त्तुमुद्यतो दृश्यते । तस्मादितो निस्सार्यताम्। एतेन कथिता शिवनिन्दाऽस्माभिर्न श्रवणीया, यतो 'न केवलम् स एव पुरुषः पापमवाप्नोति यो महापुरुषाणाम् निन्दां करोति, अपितु सोऽपि दोषी यस्तामाकर्णयति' ॥ ८३ ॥

इतो गमिष्याम्यथवेति वादिनी
चचाल बाला स्तनभिन्नवल्कला ।
स्वरूपमास्थाय च तां कृतस्मितः
समाललम्बे वृषराजकेतनः ॥ ८४ ॥

टीका :—सम्प्रति गन्तव्यपक्षमाश्रयते। इत इति । अथवा इतः अन्यत्र गमिष्यामि इति वादिनी वदन्ती स्तनभिन्नवल्कला स्तनाभ्याम् भिन्नवल्कला रयवशात्कुचस्रस्तचीरा बाला पार्वती चचाल। वृषराज-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

केतनः वृषभध्वजः च स्वरूपम् आस्थाय निजरूपम् आस्थाय निजरूप-माश्रित्य कृतस्मितः सन् । ताम् पार्वतीम् समाललम्बे जग्राह । ८४ ॥

अन्वय :—अथवा (अहम्) इतः गमिष्यामि इति वादिनी बाला स्तनभिन्नवल्कला चचाल, वृषराजकेतनः च स्वरूपम् आस्थाय कृतस्मितः ताम् समाललम्बे ॥ ८४ ॥

टिप्पणी :—इतः—(इदम्+तसिल्) । अस्मात्—यहाँ से । वादिनी—(वद्+णिनिः+ङीप्), वदन्ती—कहती हुई । स्तनभिन्न-वल्कला स्तनाभ्याम् भिन्नम् स्रस्तम् वल्कलं यस्याः सा—जिसका वल्कल छाती पर से हट गया है । अथवा स्तनाभ्याम् भिन्नम् त्रुटितम् वल्कलम् यस्याः सा, जिसका वल्कल उसकी छाती से फटा जा रहा था (क्योंकि वे बड़े थे) । देखिये 'बबंध बालारुणबभ्रु वल्कलम् पयोधरोत्सेधविशीर्णसंहति' । चचाल—(चल्+लिट्) चल पड़ी । वृषराजकेतनः—वृषो (वृषभो) वृषाणाम् राजा इति वृषराजः । वृषराजः केतनम् ध्वजा यस्य स वृषराजकेतनः, अथवा वृषराजः केतने यस्य सः वृषराजकेतनः, अथवा बैल का चिह्नवाला । वृषराज में "राजाहःसखिभ्यष्टच्" पा० ५. ४. ९१ से राजन् को राज हो गया । केतन—केत्यते ज्ञायते अनेन इति केतनम्—झण्डा; निशान । स्वरूपमास्थाय—अपना रूप धारण कर । कृतस्मितः—कृतं स्मितं येन सः—मुस्कराता हुआ । समाललम्बे—(सम्+आ+लम्ब+लिट्), जग्राह, पकड़ लिया ।

वाच्य परिवर्तन :—अथवा (मया) इतः गमिष्यते इति वादिन्या बालया स्तनभिन्नवल्कलया चेले, वृषराजकेतनेन च स्वरूपम् आस्थाय कृतस्मितेन स समाललम्बे ॥ ८४ ॥

अनुवाद :—या (मैं) यहाँ से चली जाऊँगी—इस प्रकार कहने वाली वह कुमारी, जिसके स्तनों पर से वल्कल वस्त्र खिसक

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गया था, चलने लगी; (तब) बैल जिसका ध्वज-चिह्न है ऐसे (शिव) ने अपना रूप धारण कर मुस्कराते हुए उसको पकड़ लिया ॥८४॥

वाच्य परिवर्तन :—'हे सखि ! यदि चायम् ब्रह्मचारी अस्मात्स्थानादन्यत्र न गमिष्यति तर्ह्यहं स्वयमेवान्यत्र यास्यामि' इति कथयित्वा पार्वती चलितुमुद्यताभूत् वल्कलञ्च रयवशात्तत्स्तनाभ्यामधः स्रस्तम्, परम् तस्मिन्नेव काले शिवो निजाम् यथार्थामाकृतिम् आश्रित्य मन्दहासञ्च कृत्वा पार्वतीम् जग्राह ॥८४॥

तं वीक्ष्य वेपथुमतीसरसाङ्गयष्टि-
निक्षेपणाय पदमुद्धृतमुद्वहन्ती ।
मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः
शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ ॥८५॥

टीका :—तमिति तम् देवम् वीक्ष्य वेपथुमती । सरसांगयष्टिः स्विन्नगात्री । महादेवदर्शनेन देव्याः सात्त्विकभावोदय उक्तः । निक्षेपणाय अन्यत्र विन्यासाय उद्धृतम् उत्क्षिप्तम् पदम् अङ्घ्रिम् उद्वहन्ती । शैलाधिराजतनया पार्वती मार्गाचलव्यतिकराकुलिता मार्गेऽचलस्तस्य व्यतिकरेण समाहत्या अवरोधेनेति यावत् । आकुलिता संभ्रमिता सिन्धुः नदी इव । 'देशे नदविशेषेऽब्धौ सिन्धुर्ना सरिति स्त्रियाम्' इत्यमरः । न ययौ न तस्थौ । लज्जयेति भावः । वसन्ततिलकावृत्तमेतत् ॥८५॥

अन्वय :—तम् वीक्ष्य वेपथुमती सरसांगयष्टिः निक्षेपणाय उद्धृतम् पदम् उद्वहन्ती शैलाधिराजतनया मार्गाचलव्यतिकराकुलिता सिन्धुरिव न ययौ, न तस्थौ ॥८५॥

टिप्पणी :—वीक्ष्य—(वि+ईक्ष्+ल्यप्), दृष्ट्वा, देख कर । वेपथुमती—वेपथुः—(वेप् काँपना+अथुच्), कम्पनम्—कँपकँपी ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"ट्वितोऽथुच्" पा० ३. ३. ८६ से अथुच् प्रत्यय लगा। वेपथुः—कम्पः अस्याः अस्तीति वेपथुमती—(वेपथु+मतुप्+ङीप्), कम्प-युक्ता—काँपती हुई। वेपथु एक सात्विक भाव है। सात्विकभाव आठ प्रकार के होते हैं—"स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरभङ्गोऽथ वेपथुः। वैवर्ण्यमश्रुप्रलयावित्यष्टौ सात्विकाः गुणाः"। शिव के यकायक दर्शन से तथा स्पर्श से वेपथु हुआ। सरसांगयष्टिः—अंगम् यष्टिरिव इति अंगयष्टिः—(शरीरं)—सुन्दर शरीर। रसेन सह वर्तमाना सरसा—(सस्वेदा), सरसा अङ्गयष्टिः यस्याः सा सरसांगयष्टिः, जिसका सुन्दर पतला शरीर स्वेदयुक्त हो रहा था। सरसा—भीगी; गीली; पसीने से युक्त। शिव के स्पर्श से यह पसीना हो रहा था। 'निक्षेपणाय—(नि+क्षिप्+ल्युट्=अन=निक्षेपणम्), भूमौ विन्यासाय—आगे जाने के वास्ते। "तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या" से चतुर्थी हुई है। उद्धृतम्—उत्थापितम्—उठाया हुआ। उद्वहन्ती—(उद्+वह्+शतृ+ङीप्), धारण करती हुई; ले जाती हुई। शैलाधिराजतनया—शिलानाम् समूहः शैलः, पर्वत—(शिला+अण), पहाड़। शैलानाम् अधिराजस्य तनया शैलाधि-राजतनया, पर्वतराज की कन्या (पार्वती)। मार्गाचलव्यतिकराकुलिता—अचलः न चलति इति अचलः—(चल्+अच्), पर्वतः, पहाड़। "अद्रिगोत्र गिरि ग्रावा अचलः शैलः शिलोच्चयः" इत्यमरः। व्यति-करः—सम्पर्कः—संसर्ग; विघ्न। मार्गे अचलस्य व्यतिकरेण आकु-लिता मार्गाचलव्यतिकराकुलिता—मार्ग में पहाड़ के आ जाने से जिसकी गति रुक जाय। यह सिन्धुः का विशेषण है। "देशे नदविशेषेऽब्धौ सिन्धुर्ना सरिति स्त्रियाम्" इत्यमरः। ययौ—(या लिट्), जगाम, गई। तस्थौ—(स्था+लिट्), ठहरी।

पार्वती जो जाने के लिये तैयार थीं, शङ्कर को अपने सामने देखकर न तो जा सकीं, न वहाँ ठहर सकीं। वह जाना चाहती थीं,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

क्योंकि वह चल चुकी थीं और ठहरना चाहती थीं क्योंकि वह शिव का साथ करना चाहती थीं। पार्वती की इस अवस्था की उपमा उस नदी से दी गई है जिसकी गति रास्ते में पहाड़ के आ जाने से रुक जाती है।

इसमें वसन्ततिलका वृत्त है। "उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।"

वाच्य परिवर्तन :—तम् वीक्ष्य वेपथुमत्या सरसांगयष्ट्या निक्षेपणाय उद्धृतम् पदम् उद्वहन्त्या शैलाधिराजतनयया मार्गाचल-व्यतिकराकुलितया सिन्ध्वा इव न यये न तस्थे ॥८५॥

अनुवाद :—उसको देख कर काँपती हुई, पसीने से युक्त शरीर वाली, चलने के लिये उठाये हुए पैर वाली पर्वतराजपुत्री, रास्ते में पहाड़ से रोकी हुई नदी की तरह न तो जा सकी और न ठहर सकी ॥८५॥

संस्कृत में भावार्थ :—महादेवस्य दर्शनेन तत्स्पर्शेन च पार्वत्या देहे कम्पस्वेदस्तम्भाद्याः सात्विकभावाः प्रादुर्भूताः, येन सा गन्तुमुद्यताऽपि तथैव ततश्चलितुम् न शशाक यथा हि निम्नस्थलम् गच्छन्ती नदी सम्मुखागतेन पर्वतेन निरुद्धाग्रे गन्तुम् न प्रवर्तते न च प्रवाहवेगात् स्थातुमपि शक्नोति। गमनोत्सुकापि पार्वती शिव-सान्निध्येन किंकर्त्तव्यविमूढा जाता ॥८५॥

अद्य प्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मि दासः
क्रीतस्तपोभिरिति वादिनि चन्द्रमौलौ।
अह्नाय सा नियमजं क्लमभुत्ससर्ज
क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते ॥८६॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

टीका :—अद्येति। चन्द्रमौलौ शिवे। हे अवनतांगि पार्वति अद्य प्रभृति अस्माद्दिनादारभ्येत्यर्थः। प्रभृतियोगादद्येति सप्तम्यर्थवाचिना पञ्चम्यर्थो लक्ष्यते। तव तपोभिः क्रीतः। 'दासृ दाने'। दासते आत्मानम् ददातीति दासः। अस्मि इति वादिनि वदति सा देवी अह्नाय सपदि। "स्राग्झटित्यञ्जसाह्नाय द्राङ्मङ्क्षु सपदि द्रुतम्" इत्यमरः। नियमजम् तपोजन्यम् क्लमम् क्लेशम् उत्ससर्ज। फलप्राप्त्या क्लेशम् विसस्मारेत्यर्थः। तथा हि क्लेशः फलेन फलसिद्धया पुनर्नवताम् विधत्ते पूर्ववदेव क्लिष्टतामापादयतीत्यर्थः। सफलः क्लेश इति भावः ॥८६॥

अन्वय :—(हे) अवनतांगि अद्यप्रभृति त्वया तपोभिः क्रीतः तव दासः अस्मि, चन्द्रमौलौ इति वादिनि सा अह्नाय नियमजम् क्लमम् उत्ससर्ज। हि क्लेशः फलेन पुनः नवताम् विधत्ते ॥८६॥

टिप्पणी :—अवनतांगि—अवनतम् (नम्रम्) अंगम् यस्याः सा तस्याः सम्बोधने हे अवनतांगि, ऐ झुके हुए अंग वाली। अद्य—अस्मिन् अहनि। अद्य-प्रभृति—आज से। क्रीतः—खरीदा हुआ। दासः—दसते (आत्मानम् ददाति) इति दासः, गुलाम। चन्द्रमौलौ—चंद्रमौलि की सप्तमी है, शिव (के)। वादिनि—(वद्+णिनि=वादिन्)। तस्मिन्—उनके ऐसा कहते हुए। अह्नाय—तुरन्त। "स्राग्झटिति अञ्जसा अह्नाय द्राङ्मङ्क्षु सपदि द्रुतम्" इत्यमरः। नियमजम्—(नियम+जन्+ड), नियमात् व्रतात् जातम् (उत्पन्नम्) नियमजम्, तपस्या से पैदा हुआ, तपस्याजनित। क्लमम्—श्रान्तिं—थकावट। उत्ससर्ज—तत्याज, त्याग दिया, भूल गई। सृज्—बनाना। उत् के साथ सृज् का अर्थ होता है "त्यागना"। शिव के वास्ते पार्वती ने इतने दिन तपस्या की। उनको पाकर पार्वती अपने दुःखों को भूल गई। इसका समर्थन कवि ने एक सामान्य बात कह

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कर किया है—क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते। क्लेशः—दुःख, थकावट। फलेन - फल प्राप्त होने से; काम पूरा होने से। पुनः—फिर। नवताम्—नवीनता—ताजगी। विधत्ते—धारण करता है। वि के साथ धा माने करना होता है। धा उभय-पदी है; दधाति तथा धत्ते रूप होते हैं। परिश्रम का फल पाने से आदमी अपनी थकावट को भूल जाता है। उसको वह कष्ट प्रतीत नहीं होता।

वाच्य परिवर्तन :—(हे) अवनतांगि ! अद्य-प्रभृति त्वया तपोभिः क्रीतेन (मया) तव दासेन भूयते; चन्द्रमौलौ इति वादिनि तया अह्नाय नियमजः क्लमः उत्ससृजे, हि क्लेशेन फलेन पुनः नवता विधीयते ॥८६॥

अनुवाद :—'हे झुके हुए अंग वाली, आज से लेकर मैं तुझसे तपस्या के द्वारा मोल लिया हुआ तेरा सेवक हूँ'। महादेव के इस प्रकार कहने पर एकदम तपस्या से थकी हुई, थकावट को भूल गई, (क्योंकि) वास्तव में फल मिल जाने से परिश्रम नवीनता उत्पन्न करता है ॥८६॥

संस्कृत में भावार्थ :—शिवविषयकम् पार्वत्या अचलानुरागम् स्वोपस्थित्या तदीयम् सात्विकभावञ्च दृष्ट्वा शिवः पार्वतीम् प्राह—"सुन्दरि पार्वति ! अस्माद्दिनादारभ्याहम् ते सेवको जातः; अवश्यमेवाहम् ते कामनाम् सफलाम् करिष्यामि।' शिवस्यैतत्कथन-माकर्ण्य पार्वती क्षणेनैव तपःक्लेशरहिता बभूव, यतो हि फले प्राप्ते सति तत्प्राप्त्यर्थम् कृतः क्लेशो न दुःखयति ॥८६॥

इति महाकविश्रीकालिदासविरचिते कुमारसम्भवे महाकाव्ये 'तपःफलोदयो नाम पञ्चमः सर्गः।

———

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यू० पी० इन्टरबोर्ड १९४३ की परीक्षा के प्रश्न और उत्तर

१—निम्नलिखित अंशों की संस्कृत में व्याख्या कीजिये :—

(क) दिवं यदि प्रार्थयसे वृथा श्रमः
पितुः प्रदेशास्तव देवभूमयः।
अथोपयन्तारमलम् समाधिना
न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि यत् ॥

(ख) वपुर्विरूपाक्षमलक्ष्यजन्मता
दिगम्बरत्वेन निवेदितं वसु।
वरेषु यद्बालमृगाक्षि मृग्यते
तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने ॥

उत्तर

(क) ४५ वें श्लोक का संस्कृत भावार्थ देखिये।
(ख) ७२ वें श्लोक का संस्कृत भावार्थ देखिये।

२—हिन्दी में अनुवाद कीजिये :—

(क) यथा श्रुतम् वेदविदांवर त्वया
जनोऽयमुच्चैःपदलंघनोत्सुकः।
तपः किलेदं तदवाप्तिसाधनम्
मनोरथानामगतिर्न विद्यते ॥

उत्तर

(क) हिन्दी अनुवाद के लिये श्लोक ६४ देखिये।
(ख) हिन्दी अनुवाद के लिये श्लोक ४ देखिये।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अथवा

(ख) मनीषिताः सन्ति गृहेषु देवताः
तपः क्व वत्से क्व च तावकं वपुः ।
पदम् सहेत भ्रमरस्य पेलवम्
शिरीषपुष्पम् न पुनः पतत्रिणः ॥

३—निम्नलिखित श्लोक की ससन्दर्भ हिन्दी में व्याख्या कीजिये :—

मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः
शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ ।

उत्तर

हिन्दी अनुवाद के लिये श्लोक ८५ का हिन्दी अनुवाद [;तथा टिप्पणी देखिये ।

४—निम्नलिखित अंशों की हिन्दी में विस्तृत व्याख्या कीजिये :—

(क) न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते
(ख) न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः

उत्तर

(क) यह श्लोक नं० ८२ की अंतिम पंक्ति है। उसी श्लोक का हिन्दी अनुवाद तथा उस श्लोक में दी हुई टिप्पणियाँ देखिये ।

(ख) हिन्दी अनुवाद के लिये श्लोक नं० ७७ (अंतिम पंक्ति) तथा उसकी टिप्पणी देखिये ।

५—महाकाव्य (कुमारसम्भव) के तथा नाटक (उत्तरराम-चरित) के कुछ विशेष लक्षण बताइये ।

उत्तर

महाकाव्य के लक्षण के लिये इस पुस्तक की भूमिका का ८ व ९ पृष्ठ देखिये ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

६—प्रथम प्रश्न के (क) भाग में 'समाधिना' में तृतीया विभक्ति के प्रयोग का कारण समझाइये।

उत्तर

महाकाव्य अध्यायों में विभक्त रहते हैं जिन्हें सर्ग कहते हैं। नायक दैवीगुण-सम्पन्न पुरुष या उच्च कुल का क्षत्रिय धीरोदात्त-नायक के गुणों से सम्पन्न होना चाहिये। (महासत्त्वोऽतिगंभीरः क्षमावान-विकत्थनः। स्थिरो निगूढाहंकारो धीरोदात्तो दृढव्रतः)। यह तभी होता है जब कि केवल एक ही नायक के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन रहता है (जैसा कि शिशुपाल-वध अथवा नैषधीय-चरित में है। यदि काव्य में अनेक नायकों के जीवनचरित का वर्णन हो, तो सभी नायक एक ही जाति तथा शुद्ध चरित्र वंश वाले हों। मुख्य रस शृङ्गार, वीर अथवा शान्त हो, अन्य रसों का प्रयोग मुख्य रस की वृद्धि में सहायक मात्र हो।

महाकाव्य कम से कम आठ सर्गों में विभक्त हो और सर्ग न तो बहुत छोटे हों न बहुत बड़े हों; प्रत्येक सर्ग का श्लोक एक ही प्रकार के छन्द वाला हो, केवल सर्ग के अन्त में ही छन्द का परिवर्तन किया जाय। कभी-कभी सर्ग की रचना विभिन्न प्रकार के छन्दों में भी हो सकती है। महाकाव्य गोधूलि के वर्णन से, सूर्योदय तथा चन्द्रोदय के वर्णन से, रात्रि के वर्णन से, संध्या वर्णन से, अंधकार-वर्णन से, दिन के वर्णन से, प्रातः-काल-वर्णन से, दोपहर-वर्णन से, प्रेमी जनों के वियोग के वर्णन से, ऋषियों के वर्णन से, नगर-वर्णन से, विवाहोत्सव वर्णन से, पुत्रजन्मोत्सव-वर्णन इत्यादि से सुसज्जित होना चाहिए।

कुमारसम्भव एक महाकाव्य है। यह सर्गों में विभक्त है। इसका नायक धीरोदात्त-नायक के गुणों से सम्पन्न दैवी पुरुष है। इसका मुख्य रस शृङ्गार है जिसमें करुण तथा शान्त रस सहायक का कार्य

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

करते हैं। इसका कथानक धार्मिक वृत्तान्त है, जिसमें नगरों का, ऋतुओं का और प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन है। इस प्रकार इसमें महाकाव्य के लक्षण हैं।

६—समाधिना—निषेधार्थक अलं, के योग में तृतीया होती है, अतः समाधिना में तृतीया हुई है।

———

१९४४

१—निम्नलिखित अंशों की संस्कृत में व्याख्या कीजिये :—

(क) इयम् च तेऽन्या पुरतो विडम्बना
यदूढया वारणराजहार्यया।
विलोक्य वृद्धोक्षमधिष्ठितं त्वया
महाजनः स्मेरमुखो भविष्यति ॥

अथवा

(ख) शुचौ चतुर्णां ज्वलतां हविर्भुजां
शुचिस्मिता मध्यगता सुमध्यमा।
विजित्य नेत्रप्रतिघातिनीं प्रभा-
मनन्यदृष्टिः सवितारमैक्षत ॥

उत्तर

(क) संस्कृत व्याख्या अथवा संस्कृत टीका के निमित्त ७०वाँ श्लोक देखिये।

(ख) श्लोक नं० २० में की गई संस्कृत व्याख्या देखिये।

२—हिन्दी में व्याख्या कीजिये :—

अथानुरूपाभिनिवेशतोषिणा
कृताभ्यनुज्ञा गुरुणा गरीयसा।
प्रजासु पश्चात्प्रथितं तदाख्यया
जगाम गौरी शिखरं शिखण्डिमत् ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अथवा

यदा बुधैः सर्वगतस्त्वमुच्यसे
न वेत्सि भावस्थमिमं कथं जनम् ।
इति स्वहस्तोल्लिखितश्च मुग्धया
रहस्युपालभ्यत चन्द्रशेखरः ॥

उत्तर

क्रमशः श्लोक नं० ७ व ५८ का हिन्दी अनुवाद देखिये ।

३—निम्नलिखित अंशों की हिन्दी में सन्दर्भ-सहित विस्तृत व्याख्या कीजिये—

(क) क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत् ।

(ख) वद प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका विभावरी यद्यरुणाय कल्पते ।

(ग) न षट्पदश्रेणिभिरेव पङ्कजं सशैवलासंगमपि प्रकाशते ।

(घ) यमामनन्त्यात्मभुवोऽपि कारणं कथं स लक्ष्यप्रभवो भविष्यति ।

उत्तर

(क) ये ५वें श्लोक की अंतिम दो पंक्तियाँ हैं। उसी श्लोक का हिन्दी अनुवाद तथा टिप्पणी देखिये ।

(ख) ये ४४ वें श्लोक की अंतिम दो पंक्तियाँ हैं । उसी श्लोक का हिन्दी अनुवाद तथा टिप्पणी देखिये ।

(ग) नवें श्लोक का हिन्दी अनुवाद देखिये ।

(घ) हिन्दी अनुवाद के निमित्त श्लोक नं० ८१ तथा उसकी टिप्पणी देखिये ।

४—भवभूति तथा कालिदास की शैलियों में समानतायें तथा विभिन्नतायें बताइये तथा पढ़ी हुई पाठ्य पुस्तक के आधार पर अपने कथन की सप्रमाण पुष्टि कीजिये ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उत्तर

४—सरस्वती के भांडार में कालिदास निस्सन्देह एक अत्यन्त ही समुज्ज्वल रत्न हैं तथा संस्कृत साहित्य के वे एक अनुपम कवि हैं। उनकी शैली सरल, वास्तविक तथा शिष्ट है। यह स्पष्ट तथा संयत है। भाषा में किसी प्रकार की न तो क्लिष्टता है और न लम्बे-लम्बे समासों के कारण भाषा दुरूह होने पाई है। इसमें क्लिष्ट श्लेषों की भरमार नहीं है। यह सरल होते हुए भी उचित रूप से सुसज्जित है।

यदा फलम् पूर्वतपःसमाधिना न तावता लभ्यममंस्त काङ्क्षितम्।
तदानपेक्ष्य स्वशरीरमार्दवम् तपो महत्सा चरितुम् प्रचक्रमे॥

श्लोक के लिये निर्धारित मात्राओं तथा अक्षरों की पूर्ति के लिये वे न तो व्यर्थ के शब्दों का ही प्रयोग करते हैं और न उनकी रचनाओं में पुनरुक्ति दोष ही पाया जाता है।

कालिदास की कविता की एक स्पष्ट विशेषता उनका प्रकृति-प्रेम है। उनकी वर्णनशक्ति अनुपम तथा आश्चर्यजनक है। प्रकृति-वर्णन करते समय उनकी प्रतिभा तथा काव्यगत विशेषता पूर्ण रूप से स्पष्ट परिलक्षित होती है। प्रकृति की मूक वस्तुओं में भी मानवीय भावनाओं तथा कार्यों को सम्बद्ध करके उन्होंने दृश्यों को बहुत ही प्रभावोत्पादक बना दिया है।

शिलाशयाम् तामनिकेतवासिनीम्, निरन्तरास्वन्तरवातवृष्टिषु।
व्यलोकयन्नुन्मिषितैस्तडिन्मयैर्महातपःसाक्ष्य इव स्थिताः क्षपाः॥

उनकी कविता शाश्वत सत्य से पूर्णरूपेण संपृक्त है।

(१) न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते

(२) न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्

(३) क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत्

भवभूति की रचनाओं में कालिदास की अपेक्षा अधिक संवेदनशीलता है, परन्तु कल्पनायें न्यून मात्रा में हैं। भवभूति की रचनाओं

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

में प्रकृष्ट उपमायें बहुत ही न्यून हैं, परन्तु कालिदास की रचनायें सुन्दर तथा अनुपम रचनाओं से पूर्ण हैं और जो सामान्य वस्तुयें हैं वे अधिक हैं तथा बहुत सी बातें खींची तानी गई हैं तथा अधिक संक्षेप में वर्णित हैं। मानव-संवेगों के वर्णन में भवभूति अधिक प्रयत्नशील हैं और सम्भवतः अपने प्रतिद्वन्द्वी कवि कालिदास से उच्च स्थान प्राप्त करने के अधिकारी हैं।

उत्तर-रामचरित की रचना के लिये, विशेषकर तृतीय व षष्ठ अंक के लिये भवभूति कालिदास के अत्यधिक ऋणी हैं। कालिदास केवल प्रस्तावक के रूप में हैं परन्तु भवभूति किसी वस्तु का पूरा-पूरा वर्णन कर देते हैं। कालिदास वास्तविक तथ्य बतलाकर शेष बातों को पाठकों की कल्पना-शक्ति पर छोड़ देते हैं। परन्तु भवभूति विस्तृत वर्णन करके ही सन्तुष्ट होते हैं और पाठक की कल्पनाशक्ति के विस्तार के लिये अवकाश नहीं देते। कालिदास प्रायः एक मूर्त वस्तु की उपमा अन्य मूर्त वस्तु से देते हैं, परन्तु इसके विपरीत भवभूति प्रायः मूर्त वस्तु की उपमा अमूर्त वस्तुओं से देते हैं जिसका फल यह होता है कि उनकी उपमायें क्लिष्ट हो गई हैं और पाठकों के हृदय पर प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव नहीं डालतीं। परन्तु प्रकृति के सात्विक एवं उत्कृष्ट-सौंदर्य-वर्णन में तथा रणक्षेत्र के योद्धाओं के वर्णन में और मानव-संवेगों के विश्लेषण में भवभूति कालिदास से बढ़कर हैं।

यथा तिरश्चीनमलातशल्यं
प्रत्युप्तमन्तः सविषश्च दंशः।
तथैव तीव्रो हृदि शोकशंकुः
मर्माणि कृन्तन्नपि किं न सोढः।

लोलोल्लोलक्षुभित-करुणोज्जृम्भणस्तम्बनार्थम्
यो यो यत्नः कथमपि मया धीयते तं तमन्तः।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भित्त्वा भित्त्वा प्रसरति बलात् कोऽपि चेतो-विकार-
स्तोयस्येवाप्रतिहतरयः सैकतं सेतुमोघः ।

५—(क) प्रथम प्रश्न के (ख) भाग के अनन्य-दृष्टिः में अथवा द्वितीय प्रश्न (ख) भाग के "सर्वगतः" में समास-विग्रह कीजिये ।

(ख) निम्नलिखित शब्दों के निर्माण की व्याख्या कीजिये :—
ईप्सित—प्रश्न (३) पङ्कज प्रश्न (३) तथा गरीयस् प्रश्न (२)

उत्तर

(ख) "अनन्यदृष्टिः" श्लोक २० में संस्कृत टीका तथा टिप्पणी देखिये ।

सर्वगतः—श्लोक नं० ५८ की टिप्पणी देखिये ।

पङ्कजः—श्लोक न० ६ की टिप्पणी देखिये ।

गरीयस्—श्लोक नं० ७ की टिप्पणी देखिये ।

१९४५

१—अपनी संस्कृत में अथवा संस्कृत व्याख्या के ढंग पर व्याख्या कीजिये :—

अकिंचनः सन् प्रभवः स सम्पदां
त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचरः ।
स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते
न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः

अथवा

विभूषणोद्भासि पिनद्धभोगि वा
गजाजिनालंबि दुकूलधारि वा ।
कपालि वा स्यादथवेन्दुशेखरम
न विश्वमूर्त्तेरवधार्यते वपुः ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(१) संस्कृत व्याख्या अथवा संस्कृत टीका के लिये श्लोक नं० ७७ देखिये ।

(२) श्लोक नं०७८ में की गई संस्कृत टीका देखिये ।

२—हिन्दी में अनुवाद कीजिये :—

तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसांगयष्टि-
निक्षेपणाय पदमुद्धृतमुद्वहन्ती ।
मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः
शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ ॥

अथवा

अद्यप्रभृत्यवनतांगि तवास्मि दासः
क्रीतस्तपोभिरिति वादिनि चन्द्रमौलौ ।
अह्नाय सा नियमजं क्लममुत्ससर्ज
क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते ॥

उत्तर

श्लोक संख्या ८५ का हिन्दी अनुवाद देखिये ।

(२) हिन्दी अनुवाद के लिये श्लोकसंख्या ८६ देखिये ।

३—निम्नलिखित उद्धरणों की हिन्दी में सन्दर्भ-सहित व्याख्या कीजिये :—

(क) (१) पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं
शिरीषपुष्पम् न पुनः पतत्रिणः ।

अथवा

कुशाङ्कुरादानपरिक्षताङ्गुलिः
कृतोऽक्षसूत्रप्रणयी तया करः

(ख) (१) न दृश्यते प्रार्थयितव्य एव ते
भविष्यति प्रार्थितदुर्लभः कथम् ।।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(२) पराभिमर्शो न तवास्ति कः करम्
प्रसारयेत्पन्नगरत्नसूचये ॥

उत्तर

(क) (१) हिन्दी अनुवाद के लिये श्लोकसंख्या ४ का हिन्दी अनुवाद तथा टिप्पणी देखिये (अंतिम दो पंक्तियाँ)

(२) श्लोकसंख्या ११ का हिन्दी अनुवाद तथा टिप्पणी देखिये (अंतिम दो पंक्तियाँ) ।

(ख) (१) श्लोकसंख्या ४६ का हिन्दी अनुवाद देखिये ।

(२) हिन्दी अनुवाद के लिये श्लोकसंख्या ४३ का हिन्दी अनुवाद तथा टिप्पणी देखिये ।

४—निम्नलिखित में से किसी एक शब्द के निर्माण की व्याख्या कीजिये :—

याथार्थ्य—प्रश्न १ में
वीक्ष्य—प्रश्न २ में
प्रार्थयितव्य—प्रश्न ३ में

उत्तर

याथार्थ्य—श्लोक सं० ७७ की टिप्पणी देखिये ।

वीक्ष्य—श्लोकसं० ८५ की टिप्पणी देखिये ।

प्रार्थयितव्य—श्लोकसं० ४६ की टिप्पणी देखिये ।

५—पाठ्य पुस्तक से उचित उद्धरण देते हुए कुमारसम्भव के पाँचवें सर्ग में वर्णन किये हुए पार्वती-चरित्र का चित्रण कीजिये । आपकी उत्तर-पुस्तक के तीन पृष्ठ से अधिक इस प्रश्न का उत्तर न हो ।

उत्तर

पार्वती में एक अनुपम नारी-चरित्र है । उसमें नारी का सौन्दर्य, कोमलता, और पुरुष की दृढ़ता और निश्चय दोनों का

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

समन्वय है। इस समन्वय में उसके व्यक्तित्व की सार्थकता है। केवल रूप-माधुर्य उसकी लक्ष्यसिद्धि में निष्फल रहता है। इसलिए उसे "अवन्ध्यरूपता" के लिए तप का सहारा लेना पड़ता है।

उसके अकृत्रिम सौन्दर्य का और उसकी बाह्य कोमलता का स्थान-स्थान पर सुन्दर ध्वन्यात्मक निर्देश मिलता है। जटाओं से भी उसका मुख उतना ही सुन्दर है जितना सुन्दर पुष्पों से केशप्रसाधन करने पर। शय्या पर गिरे हुए केशपुष्पों से ही उसका शरीर दुखने लगता था, कुशांकुरों के बीनने से उसकी अँगुलियों में घाव हो जाते हैं। इस दशा में हमें उसके तपश्चरण के बारे में मेना के कहे गये शब्द उचित लगते हैं।

पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं
शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणः।

भला कहीं कोमल युवति-शरीर तप के लिए है?

पर पार्वती की तपश्चर्या देखकर उसकी आन्तरिक दृढ़ता का ज्ञान होता है। अपने उस कोमल व्यक्तित्व को वह भुला देती है—

पुनर्ग्रहीतुं नियमस्थया तया
द्वयेऽपि निक्षेप इवार्पितं द्वयम्।
लतासु तन्वीषु विलासचेष्टितम्
विलोलदृष्टिं हरिणांगनासु च॥

उसका कठोर तप तपस्वी ऋषियों के लिए भी आदर्श बन जाता है—

तपःशरीरैः कठिनैरुपार्जितं
तपस्विनां दूरमधश्चकार सा।

और दिदृक्षवस्ताम् ऋषयोऽभ्युपागमन्।

यह सब घोर तप एक दुर्लभ प्रेमी के लिए है। पागल प्रणयिनी के रूप में भी यह पार्वती हमारे सामने खड़ी होती है। उसकी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सखी वर्णन करती है कि किस तरह शिव की कामना में वह व्यस्त रहती थी। उसका विरहसंगीत किन्नरकुमारियों को भी रुलाता था। एक सुन्दर झाँकी है—

त्रिभागशेषासु निशासु च क्षणं
निमील्य नेत्रं सहसा व्यबुध्यत।
क्व नीलकंठ व्रजसीत्यलक्ष्यवा-
गसत्यकण्ठार्पितबाहुबन्धना॥

ब्रह्मचारी के साथ विवाद में उसकी बुद्धि, उसकी अडिग साधना और उसके शील का दर्शन होता है। अल्पज्ञ बटु को शिव की महिमा समझाती है पर असमर्थ होकर फिर यह सोचकर कि

न केवलं यो महतोऽपभाषते
शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक्

वह उस स्थान से ही चल देती है।

अन्त में जब यह सफलप्रणया नायिका के रूप में खड़ी होती है तो हम उसे उसकी लक्ष्यसिद्धि पर बधाई देते हैं—

अद्यप्रभृत्यवनतांगि तवास्मि दासः
क्रीतस्तपोभिरिति वादिनि चन्द्रमौलौ।
अह्नाय सा नियमजं क्लममुत्ससर्ज
क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते॥

———

१९४६

१—सरल संस्कृत में व्याख्या कीजिये :—

(१) यदा फलं पूर्वतपःसमाधिना
न तावता लभ्यममंस्त कांक्षितम्।
तदाऽनपेक्ष्य स्वशरीरमार्दवम्
तपो महत्सा चरितुं प्रचक्रमे॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(२) यदा च तस्याधिगमे जगत्पते-
रपश्यदन्यं न विधिं विचिन्वती।
तदा सहास्माभिरनुज्ञया गुरो-
रियं प्रपन्ना तपसे तपोवनम् ॥

उत्तर

(१) श्लोकसंख्या १८ की संस्कृत व्याख्या या संस्कृत टीका देखिये।

(२) के लिये श्लोकसंख्या ५६ की संस्कृत व्याख्या या टीका देखिये।

२—हिन्दी में अनुवाद कीजिये :—

(१) विपत्प्रतीकारपरेण मंगलम्
निषेव्यते भूतिसमुत्सुकेन वा।
जगच्छरण्यस्य निराशिषः सतः
किमेभिराशोपहतात्मवृत्तिभिः ॥

अथवा

(२) विकीर्णसप्तर्षिबलिप्रहासिभिः
तथा न गांगैः सलिलैर्दिवश्च्युतैः।
यथा त्वदीयैश्चरितैरनाविलै-
र्महीधरः पावित एष सान्वयः ॥

उत्तर

(१) श्लोकसंख्या ७६ का हिन्दी अनुवाद देखिये।
(२) श्लोकसंख्या ३७ का हिन्दी अनुवाद देखिये।

३—निम्नलिखित अंशों की हिन्दी में संदर्भ-सहित व्याख्या कीजिये—

(क) (१) न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अथवा

(२) क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते

(ख) (१) तपात्यये वारिभिरुक्षिता नवै-
र्भुवा सहोष्माणममुञ्चदूर्ध्वगम् ।

अथवा

(२) न जातु बाला लभते स्म निर्वृतिं
तुषारसंघातशिलातलेष्वपि ।

उत्तर

(क) (१) १६ वें श्लोक की यह अंतिम पंक्ति है, हिन्दी अनुवाद अथवा टिप्पणी देखिये ।

(२) यह श्लोकसं० ८६ की अंतिम पंक्ति है । हिन्दी अनुवाद तथा टिप्पणी देखिये ।

(ख) (१) हिन्दी अनुवाद के लिये श्लोकसंख्या २३ तथा टिप्पणी भी देखिये ।

(२) हिन्दी अनुवाद के लिये श्लोकसं० ५५ तथा टिप्पणी देखिये ।

४—(क) में सविग्रह समास-नाम बताइये ।

आशोपहतात्मवृत्तिभिः

(ख) निम्नलिखित में किसी एक शब्द के निर्माण की व्याख्या कीजिये :—

(१) अनपेत्य ।

(२) विचिन्वती ।

(३) विकार्ण ।

उत्तर

(क) श्लोकसं० ७६ की टिप्पणी देखिये ।

(ख) (१) श्लोकसं० १८ की टिप्पणी देखिये ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(२) श्लोकसं० ५६ की टिप्पणी देखिये।

(३) श्लोकसं० ३७ की टिप्पणा देखिये।

५—कुमार सम्भव में वर्णित शिव तथा पार्वती-संलाप का सारांश लिखिये :—

पार्वती के आतिथ्य से सन्तुष्ट होकर ब्रह्मचारिवेषधारी शिव ने पहिले कुशल-वार्त्ता पूछी :—

"तुम्हें धार्मिक कृत्यों के लिये समिधाएँ और कुश सुलभ तो हैं? स्नान के लिये उपयुक्त पानी मिल जाता है? तुम्हारे बोये हुए पौधे ठीक तरह से बढ़ रहे हैं? तुम्हारा मन इन हरिण-शावकों में बहल तो जाता है?" फिर उसने पार्वती के तप की प्रशंसा की—

"हे पार्वती! तुम्हारे दर्शन से मुझे विश्वास हो गया कि रूप पापवृत्ति के लिए नहीं होता। तुम्हारे निष्कलुष चरित्र से यह पर्वत अत्यन्त ही पवित्र हो गया है।"

फिर किञ्चित् संकोचपूर्वक उसने उसके तप का कारण पूछा—

"पार्वति! तुम्हें कुल, सौन्दर्य, शील, ऐश्वर्य—सभी सुख प्राप्त हैं। तुम्हारा अनिष्ट, या अपमान भी अकल्पनीय लगता है। फिर इस यौवन में तुम्हारे तप का क्या अर्थ है?"

उत्तर में पार्वती के निःश्वासों का अर्थ समझकर वह बोला—

"कौन है वह दुर्लभ व्यक्ति जिसके पीछे तुम इतनी व्याकुल हो और जो तुम्हारी प्रणययाचना को ठुकरा रहा है? तुम्हारे इस तप की उपेक्षा करने वाला वह निश्चय ही कोई कठोर-हृदय व्यक्ति है।"

तब पार्वती की सखी ने उसके हृदय के रहस्य को बताया। 'पार्वती शिव के विरह में व्याकुल है।' ब्रह्मचारी आश्चर्य-चकित होकर कहने लगा :—

"वह तो अमंगल व्यक्ति है। सर्प, भस्म और गज-चर्म उसके आभूषण हैं। श्मशान-भूमि उसका निवास है। वृद्ध नान्दी उसका

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

वाहन है। तुम्हारा उसका योग कैसा! उसके संसर्ग से इन्दुकला की तरह तुम्हारा भी अपमान होगा। मैं तुम्हारे कार्य का समर्थन नहीं करता।" क्रुद्ध पार्वती ने उत्तर में शिव की महिमा वर्णन की—

"शिव को अभी परमार्थतः नहीं जानते हो। अज्ञ पुरुष महात्माओं की इसी तरह निन्दा करते हैं। शिव त्रिलोकनाथ हैं, लेकिन सम्पत्ति और आभूषणों की उन्हें कामना नहीं। वे योगिराज, वीतरागद्वेष और मंगलमय हैं। सभी देवता उनकी आराधना करते हैं। उनके याथार्थ्य को किसने जाना है?

फिर मेरा मन तो एक-रस होकर उन्हीं में लीन हैं। मैं उनकी निन्दा नहीं सुन सकती। हे सखि! इस निन्दा पर तुले हुए वटु को छोड़कर हम लोग निकल चलें।"

तुरन्त ही ब्रह्मचारी ने अपना यथार्थ शिव-रूप प्रकट किया और गमनोद्यत पार्वती को भुजाओं में कस लिया और कहा—

"पार्वति! मैं तो तुम्हारा तपःक्रीत दास हूँ।"

१९४७

१—निम्नलिखित अंशों का अर्थ सरल संस्कृत में लिखिए अथवा टीका कीजिये :—

(क) उवाच चैनं परमार्थतो हरं
न वेत्सि नूनं यत एवमात्थ माम्।
अलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुकम्
द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम्॥

अथवा

(ख) पुनर्ग्रहीतं नियमस्थया तया
द्वयेऽपि निक्षेप इवार्पितम् द्वयम्।
लतासु तन्वीषु विलासचेष्टितम्
विलोलदृष्टिं हरिणांगनासु च॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उत्तर

(क) ७५वें श्लोक की संस्कृत टीका तथा संस्कृत भावार्थ देखिये ।

(ख) टीका तथा संस्कृत भावार्थ के निमित्त श्लोक संख्या १३ देखिये ।

२—निम्नलिखित अंशों का हिन्दी में अनुवाद कीजिये :—

(क) इति ध्रुवेच्छामनुशासती सुताम
शशाक मेना न नियंन्तुमुद्यमात् ।
क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः
पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत् ॥

मुनिव्रतैस्त्वामतिमात्रकर्षिताम
दिवाकराप्लुष्टविभूषणास्पदाम् ।
शशांकलेखामिव पश्यतो दिवा
सचेतसः कस्य मनो न दूयते ॥

उत्तर

(क) हिन्दी अनुवाद के लिये श्लोकसंख्या ५ देखिये ।

(ख) हिन्दी अनुवाद के लिये श्लोकसंख्या ४८ देखिये ।

३—निम्नांकित में से किन्हीं दो अंशों की संदर्भ सहित हिन्दी में व्याख्या कीजिये :—

(क) न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत् ।

(ख) प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता ।

(ग) सतां संगतं साप्तपदीनमुच्यते ।

उत्तर

(क) हिन्दी अनुवाद के लिये श्लोकसंख्या ४५ (अंतिम पंक्ति) तथा उसकी टिप्पणी देखिये ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(ख) श्लोकसंख्या १ हिन्दी अनुवाद के लिये (अंतिम पंक्ति) तथा उसकी टिप्पणी देखिये ।

(ग) हिन्दी अनुवाद के लिये श्लोकसंख्या ३६ तथा उसकी टिप्पणी देखिये ।

४—(क) प्रथम तथा द्वितीय प्रश्न में रेखांकित शब्दों में किन्हीं दो समासों का नाम बताइये तथा समास-विग्रह कीजिये ।

(ख) ऊपर के द्वितीय प्रश्न में 'प्रतीपयेत्' तथा तृतीय प्रश्न में 'साप्तपदीनम्' शब्दों में शब्द-निर्माण की व्याख्या कीजिये ।

(ग) प्रश्न ३ (क) तथा ३ (ख) जिन श्लोकों के अंश हैं उन श्लोकों को सम्पूर्ण रूप के लिखिये ।

उत्तर

(क) अचिन्त्यहेतुकम्—समास विग्रह के लिये श्लोक ७५ की टिप्पणी देखिये । समास—बहुव्रीहि

ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयम् पेज १२ देखिये ।

समास—बहुव्रीहि

दिवाकराप्लुष्टविभूषणास्पदम् पेज १०७ देखिये ।

(ख) प्रतीपयेत्—श्लोक संख्या ५ की टिप्पणी देखिये ।

साप्तपदीनम्—श्लोकसंख्या ३६ की टिप्पणी देखिये ।

(ग) ४५ व १ श्लोक देखिये ।

५—कुमारसम्भव के लेखक की जन्मतिथि की विवेचना संक्षिप्त रूप में कीजिये । उत्तर

"कालिदास की तिथि भूमिका देखिये ।

१९४८

१—निम्नलिखित अवतरणों का हिन्दी में अनुवाद कीजिये :—

(क) अयाचितोपस्थितमम्बु केवलं
रसात्मकस्योडुपतेश्च रश्मयः ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

बभूव तस्याः किल पारणाविधि-
र्न वृक्षवृत्तिव्यतिरिक्तसाधनः ॥

(ख) शिलाशयाम् तामनिकेतवासिनीम्
निरन्तरास्वन्तरवातवृष्टिषु ।
व्यलोकयन्तुन्मिषितैस्तडिन्मयै-
र्महातपःसाक्ष्य इव स्थिताः क्षपाः ॥

उत्तर

(क) हिन्दी अनुवाद के लिये श्लोकसंख्या २२ देखिये ।

(ख) हिन्दी अनुवाद के लिये श्लोकसंख्या २५ देखिये ।

२—निम्नलिखित अवतरणों की हिन्दी में सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिये :—

(क) न केवलं यो महतोऽपभाषते
शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक् ।

(ख) न दृश्यते प्रार्थयितव्य एव ते
भविष्यति प्रार्थितदुर्लभः कथम् ॥

उत्तर

(क) हिन्दी अनुवाद के लिये श्लोकसंख्या ८३ तथा उसकी टिप्पणी देखिये ।

(ख) ये श्लोकसंख्या ४६ की अन्तिम दो पंक्तियाँ हैं । उसी श्लोक का हिन्दी अनुवाद तथा टिप्पणी देखिये ।

३—निम्नलिखित अवतरणों की अपनी संस्कृत में व्याख्या कीजिये अथवा संस्कृत-टीका कीजिये ।

अद्य प्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मि दासः
क्रीतस्तपोभिरिति वादिनि चन्द्रमौलौ ।
अह्नाय सा नियमजं क्लममुत्ससर्ज
क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उत्तर

श्लोकसंख्या ८६ में की गई संस्कृत-टीका अथवा संस्कृत-भावार्थ देखिये ।

४—(क) प्रथम प्रश्न (क) भाग में रेखांकित शब्दों में समास बताकर विग्रह कीजिये ।

(ख) प्रश्न द्वितीय (क) भाग में 'तस्मात्' शब्द की विभक्ति का कारण निर्देश कीजिये ।

उत्तर

(क) वृद्धवृत्तिव्यतिरिक्तसाधनः—श्लोकसंख्या २२ की टिप्पणी देखिये ।

(ख) तस्मात्—"आख्यातोपयोग" सूत्र से पंचमी हुई है ।

५—कालिदास के काव्यगत सौष्ठव की प्रशंसा कीजिये ।

उत्तर

अनुवाद में पेज ५ तथा आगे देखिये ।

१९४९

निम्नलिखित उद्धरणों का हिन्दी में अनुवाद कीजिये :—

(क) न वेद्मि स प््रार्थितदुर्लभः कदा,
सखीभिरस्रोत्तरमीक्षितामिमाम् ।
तपःकृशामभ्युपपत्स्यते सखीं
वृषेव सीतां तदवग्रहक्षताम् ॥

(ख) त्वमेव तावत् परिचिन्तय स्वयं,
कदाचिदेते यदि योगमर्हतः ।
वधूदुकूलं कलहंसलक्षणं,
गजाजिनं शोणितबिन्दुवर्षि च ॥

उत्तर

(क) हिन्दी अनुवाद के लिये श्लोक संख्या ६१ देखिये ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(ख) हिन्दी अनुवाद के लिये श्लोकसंख्या ६७ देखिये ।

२—निम्नलिखित अंशों की व्याख्या अपनी संस्कृत में कीजिये अथवा संस्कृत टीका कीजिये :—

(क) स्वयंविशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता
परा हि काष्ठा तपसस्तया पुनः ।
तदप्यपाकीर्णमतः प्रियंवदां
वदन्त्यपर्णेति च तां पुराविदः ।

(ख) अयाचितोपस्थितमम्बु केवलं
रसात्मकस्योडुपतेश्च रश्मयः ।
बभूव तस्याः किल पारणाविधि-
र्न वृक्षवृत्तिव्यतिरिक्तसाधनः ॥

उत्तर

(क) संस्कृत टीका के लिये श्लोक संख्या २८ का।संस्कृत भावार्थ देखिये ।

(ख) श्लोक २२ की संस्कृत टीका तथा संस्कृत भावार्थ देखिये ।

३—निम्नलिखित अंशों में से किन्हीं दो की संदर्भ सहित हिन्दी में व्याख्या कीजिये :—

(क) अलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुकं
द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम् ।

(ख) अपेक्ष्यते साधुजनेन वैदिकी
श्मशानशूलस्य न यूपसत्क्रिया ॥

उत्तर

(क) श्लोकसंख्या ७५ का हिन्दी अनुवाद तथा टिप्पणी देखिये ।

(ख) श्लोकसंख्या ७३ का हिन्दी अनुवाद तथा टिप्पणी देखिये ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

४—प्रश्न २ (क) भाग में रेखांकित शब्दों में सविग्रह समास बताइये ।

उत्तर

स्वयं विशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता—२८वें श्लोक की टिप्पणी देखिये ।

अयाचितोपस्थितमम्बु—२२वें श्लोक की टिप्पणी देखिये ।

५—'कुमारसम्भव' तथा 'शाकुन्तलम्' से उद्धरण देते हुए 'कवि कालिदास' पर हिन्दी में एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये ।

उत्तर

भूमिका देखिये ।

१९५०

निम्नलिखित अंशों का हिन्दी में अनुवाद कीजिये :—

(क) अपि प्रसन्नं हरिणेषु ते मनः
करस्थदर्भप्रणयापहारिषु ।
य उत्पलाक्षि प्रचलैर्विलोचनै-
स्तवाक्षिसादृश्यमिव प्रयुञ्जते ॥

(ख) अकिञ्चनः सन्प्रभवः स सम्पदां
त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचरः ।
स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते
न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः ।

उत्तर

(क) हिन्दी अनुवाद के लिये श्लोकसंख्या ३५ देखिये ।

(ख) हिन्दी अनुवाद के लिये श्लोकसंख्या ७७ देखिये ।

२—निम्नलिखित अंशों की व्याख्या अपनी संस्कृत में कीजिये अथवा संस्कृत टीका कीजिये :—

(क) क्लमं ययौ कन्दुकलीलयापि या
तया मुनीनां चरितं व्यगाह्यत ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ध्रुवं वपुः काञ्चनपद्मनिर्मितं
मृदु प्रकृत्या च ससारमेव ।

अथवा

किमित्यपास्याभरणानि यौवने
धृतं त्वया वार्धकशोभि वल्कलम् ।
वद प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका
विभावरी यद्यरुणाय कल्पते ॥

उत्तर

(क) श्लोकसंख्या १६ के अन्तर्गत दिये हुए संस्कृत भावार्थ तथा संस्कृत टीका देखिये ।

(ख) श्लोकसंख्या ४४ में दी गई संस्कृत टीका तथा संस्कृत भावार्थ देखिये ।

३—निम्नलिखित उद्धरणों की संदर्भ सहित हिन्दी में व्याख्या कीजिये :—

(क) क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः
पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत् ।

(ख) न केवलं यो महतोऽपभाषते
शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक् ।

उत्तर

(क) १६४४ के प्रश्न ३ (क) को देखिये ।

(ख) १६४८ के प्रश्न २ (क) को देखिये ।

४—प्रश्न १ (ख) में आये हुए याथार्थ्यविदः तथा पिनाकिनः शब्दों में शब्द-निर्माण की व्याख्या कीजिये ।

(ख) द्वितीय प्रश्न (क) में अरुणाय शब्द में चतुर्थी विभक्ति के प्रयोग का कारण बताइये ।

(ग) प्रश्न १ (ख) में रेखांकित शब्दों में से किन्हीं दो समासों का नाम बताकर विग्रह कीजिये ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उत्तर

(क) याथार्थ्यविद:—श्लोकसंख्या ७७ की टिप्पणी देखिये ।

• पिनाकिन:—पिनाक: अस्य अस्ति इति पिनाकी, तस्य पिनाकिन: पिनाक+इनि (मत्वर्थे) ।

(ख) अरुणाय—श्लोकसंख्या ४४ की टिप्पणी देखिये ।

(ग) श्लोकसंख्या ७७ की टिप्पणी देखिये ।

५—'कवि कालिदास' तथा 'कवि भास' की तुलना कीजिये (हिन्दी में) ।

उत्तर

कालिदास के लिये इस पुस्तक की भूमिका देखिये तथा भास के लिये 'स्वप्नवासवदत्तम्', की भूमिका देखिये ।

१९५१

१—निम्नलिखित अंशों का हिन्दी में अनुवाद कीजिये—

(क) कृताभिषेकां हुतजातवेदसं त्वगुत्तरासंगवतीमधीतिनीम् ।
दिदृक्षवस्तामृषयोऽभ्युपागमन्न धर्मवृद्धेषु वय: समीक्ष्यते ॥

(ख) तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसांगयष्टि-
निक्षेपणाय पदमुद्धृतमुद्वहन्ती ।
मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः
शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ ॥

उत्तर

(क) हिन्दी अनुवाद के लिये श्लोकसंख्या १६ देखिये ।

(ख) हिन्दी अनुवाद के लिये श्लोकसंख्या ८५ देखिये ।

२—निम्नलिखित अंशों की व्याख्या अपनी संस्कृत में कीजिये अथवा उसकी संस्कृत टीका कीजिये :—

(क) कुले प्रसूति: प्रथमस्य वेधसस्त्रिलोकसौन्दर्यमिवोदितं वपु: ।
अमृग्यमैश्वर्यसुखं नवं वयस्तप:फलं स्यात्किमत: परं वद ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अथवा

त्वमेव तावत्परिचिन्तय स्वयं कदाचिदेते यदि योगमर्हतः ।
वधूदुकूलं कलहंसलक्षणं गजाजिनं शोणितविन्दुवर्षि च ॥

उत्तर

(क) श्लोकसंख्या ४१ में दी गई संस्कृत टीका तथा संस्कृत भावार्थ देखिये ।

श्लोकसंख्या ६७ में दी गई संस्कृत टीका तथा संस्कृत भावार्थ देखिये ।

३ – निम्नलिखित उद्धरणों में से किन्हीं तीन अंशों की हिन्दी में सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिये—

(क) न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते ।

(ख) मनोरथानामगतिर्न विद्यते ।

(ग) शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ।

उत्तर

(क) श्लोकसंख्या ८२ अंतिम पंक्ति का हिन्दी अनुवाद तथा टिप्पणी देखिये ।

(ख) श्लोकसंख्या ६४ का हिन्दी अनुवाद तथा टिप्पणी देखिये ।

(ग) यह श्लोक संख्या ३३ की अंतिम पंक्ति है, उसी श्लोक की टिप्पणी देखिये ।

४—(क) प्रश्न १ (क) में दिद्दक्षवः तथा प्रश्न १ (ख) में उद्धृतम् शब्दों के शब्द निर्माण की व्याख्या कीजिये ।

(ख) प्रथम प्रश्न (ख) भाग में रेखांकित शब्दों में से किन्हीं तीन समासों का नाम बताइये तथा विग्रह कीजिये ।

उत्तर

(क) दिद्दक्षवः—टिप्पणी श्लोक संख्या १६ की टिप्पणी देखिये ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उद्धृतम—उत+हृ+क्त

(ख) मार्गाचल-व्यतिकराकुलिता—श्लोकसंख्या ८५ की टिप्पणी देखिये ।

शैलाधिराजतनया—श्लोकसंख्या ८५ की टिप्पणी देखिये ।

१९५२

१—हिन्दी में अनुवाद कीजिये :—

(क) निकामतप्ता विविधेन वह्निना
नभश्चरेणेन्धनसंभृतेन सा ।
तपात्यये वारिभिरुक्षिता नवै-
र्भुवा सहोष्माणममुञ्चदूर्ध्वगम् ।।२३।।

(ख) इयं महेन्द्रप्रभृतीनधिश्रिय-
श्चतुर्दिगीशानवमत्य मानिनी ।
अरूपहार्यं मदनस्य निग्रहात्
पिनाकपाणिं पतिमाप्तुमिच्छति ।।५३।।

उत्तर

(क) हिन्दी अनुवाद के लिये श्लोकसंख्या २३ देखिये ।

(ख) हिन्दी अनुवाद के लिये श्लोकसंख्या ५३ देखिये ।

२—निम्नलिखित अंशों की व्याख्या अपनी संस्कृत में कीजिये अथवा संस्कृत व्याख्या कीजिये :—.

(क) शुचौ चतुर्णां ज्वलतां हविर्भुजां
शुचिस्मिता मध्यगता सुमध्यमा ।
विजित्य नेत्रप्रतिघातिनीं प्रभा-
मनन्यदृष्टिः सवितारमैक्षत ।।२०।।

अथवा

(ख) अकिंचनः सन्प्रभवः स संपदां
त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचरः ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते
न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः ॥७७॥

उत्तर

(क) पुस्तक में श्लोकसंख्या २० के नीचे दी हुई संस्कृत टीका अथवा संस्कृत भावार्थ देखिये ।

(ख) संस्कृत टीका अथवा संस्कृत भावार्थ के लिये श्लोक-संख्या ७७ देखिये ।

३—हिन्दी में सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिये :—

(क) न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत् ।

(ख) न केवलं यो महतोऽपभाषते
शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक् ।

उत्तर

(क) श्लोकसंख्या ४५ की टिप्पणी तथा हिन्दी अनुवाद देखिये ।

(ख) श्लोकसंख्या ८३ की टिप्पणी तथा हिन्दी अनुवाद देखिये ।

४—(क) प्रथम प्रश्न (ख) भाग में अवसत्य अथवा अरूपहार्य शब्दों में शब्दनिर्माण की व्याख्या कीजिये ।

(ख) प्रश्न ३ (क) में वाच्य-परिवर्तन कीजिये ।

(ग) प्रश्न १ (ख) में पिनाकपाणिं अथवा प्रश्न २ (क) में त्रिलोकनाथः में समास का नाम बताइये तथा विग्रह कीजिये ।

उत्तर

(क) श्लोकसंख्या ५३ की टिप्पणी देखिये ।

(ख) ४५वें श्लोक में दिया हुआ वाच्य-परिवर्तन देखिये ।

(ग) श्लोकसंख्या ५३ तथा ७७ के नीचे दी गई टिप्पणी देखिये ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१९५३

(१)—निम्नलिखित अंशों का हिन्दी में अनुवाद कीजिये :—

(क) अपि प्रसन्नं हरिणेषु ते मनः

करस्थदर्भप्रणयापहारिषु ।

य उत्पलाक्षि प्रचलैर्विलोचनै-

स्तवाक्षिसादृश्यमिव प्रयुञ्जते ॥

(ख) कुले प्रसूतिः प्रथमस्य वेधस-

स्त्रिलोकसौन्दर्यमिवोदितं वपुः ।

अमृग्यमैश्वर्यसुखं नवं वय-

स्तपःफलं स्यात्किमतः परं वद ॥

उत्तर

(क) १९५० का प्रश्न १ (क) देखिये ।

(ख) श्लोकसंख्या ४१ का हिन्दी अनुवाद देखिये ।

२—निम्नलिखित अंशों की व्याख्या अपनी संस्कृत में कीजिये अथवा संस्कृत टीका कीजिये ।

(क) अकिञ्चनः सन् प्रभवः स सम्पदां

त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचरः ।

स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते

न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः ॥

अथवा

(ख) इति ध्रुवेच्छामनुशासती सुतां

शशाक मेना न नियन्तुमुद्यमात् ।

क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः

पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत् ॥

उत्तर

(क) १९५२ का दूसरा प्रश्न देखिये ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(ख) व्याख्या के लिये श्लोक ५ की टीका और संस्कृत भावार्थ देखिये।

३—निम्नलिखित अंशों में से किन्हीं तीन की संदर्भ सहित हिन्दी में व्याख्या कीजिये :—

(क) क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते।

(ख) न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते।

(ग) कः करं प्रसारयेत् पन्नगरत्नसूचये।

उत्तर

(क) १९४६ का प्रश्न ३ (क) २ देखिये।

(ख) १९४५ का प्रश्न ३ (क) १ देखिये।

(ग) १९४५ का प्रश्न ३ (ख) २ देखिये।

४—(क) प्रश्न ३ (ग) में प्रसारयेत् अथवा पन्नगः में शब्द-निर्माण का कारण बताइये।

(ख) प्रश्न ३ (ग) में पन्नगरत्नसूचये में विभक्ति प्रयोग का कारण बताइये।

(ग) प्रश्न १. क में करस्थदर्भप्रणयापहारिषु अथवा प्रश्न २. (क) में ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं में समास का नाम बताइये तथा विग्रह कीजिये।

उत्तर

(क) श्लोकसंख्या ४३ की टिप्पणी देखिये।

(ख) श्लोकसंख्या ४३ की टिप्पणी देखिये।

(ग) श्लोकसंख्या ४१ तथा ५ की टिप्पणी देखिये।

५—कालिदास की कविता के गुणों तथा शैली पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

उत्तर

भूमिका पढ़िये।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१९५४

१—निम्नांकित का अनुवाद हिन्दी में करो :—

(क) मनीषिताः सन्ति गृहेषु देवताः
तपः क्व वत्से क्व च तावकं वपुः ।
पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं
शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणः ॥४॥

(ख) अथाजिनाषाढधरः प्रगल्भवाग्
ज्वलन्निव ब्रह्ममयेन तेजसा ।
विवेश कश्चिज्जटिलस्तपोवनं
शरीरबद्धः प्रथमाश्रमो यथा ॥३०॥

उत्तर

(क) श्लोक ४ का हिन्दी अनुवाद देखिये ।

(ख) हिन्दी अनुवाद के लिये श्लोकसंख्या ३० देखिये ।

२—निम्नलिखित की व्याख्या अपनी संस्कृत में लिखो, अथवा संस्कृत में टीका करो :—

कदाचिदासन्नसखीमुखेन सा
मनोरथज्ञं पितरं मनस्विनी ।
अयाचतारण्यनिवासमात्मनः
फलोदयान्ताय तपःसमाधये ॥६॥

अथवा

अयाचितोपस्थितमम्बु केवलम्
रसात्मकस्योडुपतेश्च रश्मयः ।
बभूव तस्याः किल पारणाविधि-
र्न वृत्तवृत्तिव्यतिरिक्तसाधनः ॥२२॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उत्तर

पूर्व श्लोक प्रस्तुत पुस्तक का छठा श्लोक है। इसकी टीका और संस्कृत में अर्थ पुस्तक में दिया हुआ है। उसे देखिये।

दूसरा श्लोक प्रस्तुत पुस्तक का २२ वाँ श्लोक है। पुस्तक में दी हुई टीका तथा संस्कृतार्थ देखिये।

३—निम्नांकित की व्याख्या प्रसंग-निर्देशपूर्वक हिन्दी अथवा अँग्रेजी में करो :—

(क) प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता।

(ख) न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्।

(ग) मनोरथानामगतिर्न विद्यते।

उत्तर

(क) श्लोक १ की टिप्पणी देखिये।

(ख) श्लोक ४५ का चौथा पाद है। टिप्पणी देखिये।

(ग) श्लोक ६४ की टिप्पणी तथा हिन्दी अथवा अँग्रेजी में दिये गए अनुवाद को देखिये।

४—(क) प्रश्न ३ (ख) में 'अन्विष्यति' अथवा 'मृग्यते' में प्रकृति-प्रत्यय का विभाग करो।

(ख) प्रश्न २ (क) में 'पितरम्' में जो कारक है, उसका कारण लिखो।

(ग) प्रश्न २ (ख) में 'वृत्तवृत्तिव्यतिरिक्तसाधनः' का समासविग्रह करो।

उत्तर

(क) श्लोक ४५ की टिप्पणी देखियें।

(ख) श्लोक ६ की टिप्पणी देखिये।

(ग) श्लोक २२ की टिप्पणी देखिये।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

५—'कालिदास सर्वश्रेष्ठ कवि हैं', इस पर अपना विचार अधिक से अधिक दो पृष्ठों में हिन्दी अथवा अँग्रेजी में लिखो।

उत्तर

भूमिका देखिये।

१—निम्नांकित का अनुवाद हिन्दी में करो :—

(क) क्लमं ययौ कन्दुकलीलयापि या
तया मुनीनां चरितं व्यगाह्यत।
ध्रुवं वपुः काञ्चनपद्मनिर्मितं
मृदु प्रकृत्या च ससारमेव च ॥ १६ ॥

(ख) स्वयं विशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता
परा हि काष्ठा तपसस्तया पुनः।
तदप्यपाकीर्णमतः प्रियंवदां
वदन्त्यपर्णेति च तां पुराविदः ॥ २८॥

उत्तर

(क) श्लोक १६ वें का हिन्दी अनुवाद देखिये।

(ख) श्लोक २८ वें का हिन्दी अनुवाद देखिये।

२—निम्नलिखित की व्याख्या अपनी संस्कृत में करो—

तमातिथेयी बहुमानपूर्वया
सपर्यया प्रत्युदियाय पार्वती।
भवन्ति साम्येऽपि निविष्टचेतसां
वपुर्विशेषेष्वति गौरवाः क्रियाः ॥ ३१ ॥

अथवा

दिवं यदि प्रार्थयसे वृथा श्रमः
पितुः प्रदेशास्तव देवभूमयः।
अथोपयन्तारमलं समाधिना
न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत् ॥४५॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१९५५

उत्तर

२—संस्कृत टीका के लिये श्लोक संख्या ३१ देखिये ।

दूसरा श्लोक इस पुस्तक का ४५वाँ है । उसकी संस्कृत टीका तथा संस्कृत भावार्थ देखिये ।

३—निम्नांकित की व्याख्या प्रसंग-निर्देश पूर्वक करो :—

(क) क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते ।

(ख) द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम् ।

(ग) न विश्वमूर्तेरवधायते वपुः ।

उत्तर

(क) यह ८६ वें श्लोक की अंतिम पंक्ति है । उसी श्लोक की व्याख्या देखिये ।

(ख) यह ७५ वें श्लोक की अंतिम पंक्ति है । उसी श्लोक की व्याख्या देखिये ।

(ग) यह ७८ वें श्लोक की अंतिम पंक्ति है उसी की व्याख्या देखिये ।

४—(क) प्रश्न २ में 'समाधिना' में जो कारक है उसका कारण लिखो ।

उत्तर

४५ वें श्लोक की टिप्पणी देखिये । 'अलम्' के योग में तृतीया होती है ।

(ख) प्रश्न १ (ख) में विशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता में जो समास है उसे सविग्रह लिखो ।

उत्तर

(ख) २८वें श्लोक की टिप्पणी देखिये ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

५—भास अथवा कालिदास की तिथि के विषय में अपने विचार प्रकट करो।

उत्तर

भास की तिथि के लिये 'स्वप्नवासवदत्तम्' की भूमिका देखिये।
कालिदास की तिथि के लिये इसी पुस्तक की भूमिका देखिये।

१९५६

१—निम्नांकित का अनुवाद हिन्दी में कीजिये :—

(क) महार्हशय्यापरिवर्तनच्युतैः
स्वकेशपुष्पैरपि या स्म दूयते।
अशेत सा बाहुलतोपधायिनी
निषेदुषी स्थण्डिल एव केवले ॥१२॥

(ख) असम्पदस्तस्य वृषेण गच्छतः
प्रभिन्नदिग्वारणवाहनो वृषा।
करोति पादावुपगम्य मौलिना
विनिद्रमन्दाररजोऽरुणाङ्गुली ॥८०॥

उत्तर

(क) हिन्दी अनुवाद के लिये श्लोकसंख्या १२ देखिये।
(ख) हिन्दी अनुवाद के लिये श्लोकसंख्या ८० देखिये।

२—निम्नलिखित की व्याख्या अपनी संस्कृत में कीजिये :—

यथा प्रसिद्धैर्मधुरं शिरोरुहै-
र्जटाभिरप्येवमभूत्तदाननम्।
न षट्पदश्रेणिभिरेव पङ्कजं
सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते ॥९॥

अथवा

अथाह वर्णी विदितो महेश्वर-
स्तदर्थिनी त्वं पुनरेव वर्त्तसे।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अमङ्गलाभ्यासरतिं विचिन्त्य तं
तवानुवृत्तिं न च कर्त्तुमुत्सहे ॥६५॥

उत्तर

संस्कृत व्याख्या के लिये श्लोकसंख्या ६ की संस्कृत टीका तथा संस्कृत भावार्थ देखिये।

दूसरा श्लोक इसी पुस्तक का ६५वाँ है। उसी की संस्कृत टीका व संस्कृत भावार्थ देखिये।

३—निम्नांकित की व्याख्या प्रसङ्गनिर्देशपूर्वक कीजिये :—

(क) कथं स लब्ध्यप्रभवो भविष्यति ।

(ख) न केवलं यो महतोऽपभाषते
श्रृणोति तस्मादपि यः स पापभाक् ॥

उत्तर

(क) यह ८१वें श्लोक की अंतिम पंक्ति है। उसी श्लोक की व्याख्या देखिये।

(ख) यह ८३वें श्लोक की अंतिम दो पंक्तियाँ हैं। उसी श्लोक की व्याख्या देखिये।

४—(क) प्रश्न १ (क) में निषेदुषी में प्रकृति-प्रत्यय का विभाग कीजिये।

४—(ख) 'महार्हशय्यापरिर्वतनच्युतैः' (प्रश्न १ क में) समास का नाम सविग्रह लिखिये।

उत्तर

(क) १२ वें श्लोक की टिप्पणी देखिये।

(ख) १२ वें श्लोक की टिप्पणी देखिये।

५—कालिदास की काव्य-कला पर अपने संक्षिप्त विचार प्रकट कीजिये।

उत्तर

सन् १९४४ के प्रश्न चार का उत्तर देखिये।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१९५७

१—नीचे लिखे पद्यों का हिन्दी या अंग्रेजी में अनुवाद कीजिए:—

(क) किमित्य पास्याभरणानि यौवने
धृतं त्वया वार्द्धक शोभि वल्कलम् ।
वद प्रदोषे स्फुट चन्द्रतारका
विभावरी यद्यरुणाय कल्पते ।।

(ख) अवस्तुनिर्बन्धपरे कथं नु ते
करोऽयमासुक्त विवाह कौतुकः ।
करेण शम्भोर्वलयी कृताहिना
सहिष्यते तत् प्रथमावलम्बनम् ।।

उत्तर

(क) श्लोक संख्या ४४ की हिन्दी टीका देखिये।
(ख) श्लोक संख्या ६६ की हिन्दी टीका देखिये।

२—नीचे लिखे पद्य की व्याख्या अपनी संस्कृत में लिखिए:—

(क) अकिञ्चनः सन् प्रभवः स सम्पदां
त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचरः ।
स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते
न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः ।।

उत्तर

श्लोक संख्या ७७ की संस्कृत व्याख्या देखिए ।

३—(क) न धर्म वृद्धेषु वयः समीक्ष्यते ।
(ख) शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम् ।
(ग) द्वयं गतं सम्प्रति शोचनीयतां ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उत्तर

(क) श्लोक संख्या १६ का अन्तिम चरण है हिन्दी अनुवाद तथा टिप्पणी देखिए।

(ख) श्लोक संख्या ३२ का अन्तिम चरण है हिन्दी अनुवाद तथा टिप्पणी देखिए।

(ग) यह श्लोक ७१ का प्रथम चरण है उसका हिन्दी अनुवाद तथा टिप्पणी देखिये।

४—(क) प्रश्न १ के रेखाङ्कित 'अपास्य' 'वाद्धक' शब्दों में प्रकृति प्रत्यय बताइये।

(ख) 'वलयीकृताहिना' का विग्रह कीजिए और समास का नाम बताइए।

उत्तर

(क) श्लोक संख्या ४४ की संस्कृत टीका तथा टिप्पणी देखिए।

(ख) के लिए श्लोक संख्या ६६ संस्कृत टीका तथा टिप्पणी देखिए।

५—कालिदास कब हुए ? इस प्रश्न के उत्तर के लिए कुमार संभव की भूमिका देखिए।

—:o:—

मुद्रक—नरोत्तमदास अग्रवाल, नेशनल, प्रेस, प्रयाग।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

STANDARD SANSKRIT BOOKS

	Rs.	as.	p.
Bhasha-Pratima Natak, with exhaustive Notes, English and Hindi Translation, by Dr. K. D. Dwivedi, M. A., D. Phil. ...	3	8	0
Sanskrit Vyakaran Praveshika, (Higher Sanskrit-Grammar in Hindi), by Dr. Baburam Saksena, M. A., D. Litt. 3rd. Edition 1955... ...	5	0	0
Bhartiya Sanskriti, (Elements of Hindu Culture and Civilisation) by Dr. Baldeo Pd. Misra ...	2	8	0
Bhartiya Sanskriti Ka Utthan, by Dr. Ramji Upadhyaya	2	8	0
History of Sanskrit Literature, by V. Varadachari, M. A., in English ...	5	0	0
Do. do. in Hindi .	4	8	0
Sanskrit Shabdarth Kaustubh, (Sanskrit to Hindi Dictionary) Revised Edition. 1957 ...	15	0	0
Raghuvansham, Cantos I to VI, VIII and XIV with exhaustive Notes etc., by Ram Krishna Shukla, M. A., B. T., each Canto ...	1	8	0
Do. do. Canto XIII ...	1	12	0
Abhigyan Sakuntalam, Act IV, Edited with exhaustive Commentary, English and Hindi Translation by P. Bhatta, B. A., LL. B.	1	0	0
Bhasa : Swapnavasavaduttum—With Sanskrit Chhaya of the [illegible] Portion, Explanation, Hindi Translations, Sanskrit Commentary. Grammatical Notes, etc., by Prof. P. P. Sharma, M. A., (Gold-medallist) M. A., B., L. ...	2	4	0
Kumarsambhavam of Kalidas Canto V—With the Sanjivani of Mulli Nath, Prose Order, expounding of Samas and Hindi Translation by Prof. Mahendra Pratap Shastri, M. A., M. O. L. ...	2	0	0
Sanskrit Nibandh Path Pradarshak—A Hindi Translation of Student's Guide to Sanskrit Composition by V. S. Apte, 2nd. revised edition. ...	4	0	0

RAM NARAIN LAL, Bookseller & Publisher, Allahabad

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection